गद्य विविधा

सपादक
रघुवरदयाल

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली पटना

अनुक्रम

हिंदी गद्य साहित्य की परंपरा

यद्यपि हिंदी साहित्य का इतिहास बहुत प्राचीन है तथापि गद्य रचना का सूत्रपात आज से केवल सौ-सवा-सौ वर्ष पूर्व हुआ । हिंदी गद्य से हमारा तात्पर्य यहाँ खड़ीबोली में लिखे गये गद्य से है । राष्ट्रीय जागरण के समय विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक सबल और सशक्त माध्यम की आवश्यकता अनुभव की गयी । खड़ी बोली के गद्य ने इस आवश्यकता की पूर्ति की । १६वीं शताब्दी से पूर्व हिंदी गद्य के तीन रूप उपलब्ध होते हैं—राजस्थानी गद्य, ब्रजभाषा गद्य तथा खड़ीबोली गद्य ।

कुछ विद्वान् राजस्थानी गद्य का प्रारंभ १०वीं शती ईसवी से ही मानते हैं । इसका रूप दानपत्रों, धार्मिक उपदेशों, टीकाओं, अनुवाद-ग्रंथों आदि में सुरक्षित है ।

ब्रजभाषा गद्य का प्राचीनतम रूप सं० १४०० के लगभग गोरखपंथी साहित्य में प्रयुक्त गद्य के रूप में मिलता है । इस गद्य का विषय हठयोग और ब्रह्मज्ञान है । गोरखपंथ का यह ब्रजभाषा गद्य ही हिंदी गद्य का आदिरूप है, किंतु प्रक्षिप्त अंशों की अधिकता से उसके मौलिक रूप का उद्घाटन प्राय असंभव-सा हो गया है । १७वीं शताब्दी विक्रमी में गोसाईं गोकुलनाथ द्वारा प्रणीत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि में बोलचाल की ब्रजभाषा का रूप पाया जाता है । ये दोनों ग्रंथ ब्रजभाषा गद्य की विकास-यात्रा के महत्त्वपूर्ण मील के पत्थर हैं । इन वार्ताओं की शैली पूर्ण रूप से व्यावहारिक है और इनमें प्रयुक्त गद्य परिष्कृत व व्यवस्थित है । लेकिन यह गद्य धार्मिक उद्देश्य से लिखा गया है । अतः इसमें साहित्यिकता का अभाव है । इसके पश्चात् ब्रजभाषा गद्य में अनेक मौलिक एवं अनूदित ग्रंथों तथा टीकाओं की रचना हुई ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि विद्वानों ने खड़ीबोली गद्य का प्रारंभ अकबरी दरबार के कवि गंग से माना है । गंग की एक रचना है—'चंद छंद बरनन महिमा' । आगे चलकर संवत् १७९८ में रचित 'भाषा योग वासिष्ठ' खड़ीबोली गद्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है ।

आधुनिक हिंदी गद्य के प्रवर्तन का श्रेय चार महानुभावो को है। इन चारो मे से मुशी सदासुखलाल और इशा अल्ला खां ने स्वांत सुखाय तथा लल्लूलाल एव सदल मिश्र ने कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलिज की छत्रछाया मे अग्रेजो की प्रेरणा से खडीबोली गद्य का प्रणयन किया।

मुशी सदासुखलाल ने स्वतन्त्र प्रेरणा से 'सुखसागर' की रचना की। चारो लेखको मे इनकी भाषा-शैली सर्वोत्तम और परिष्कृत है। आपने रचना के लिए उन दिनो की हिंदुओ की भाषा को ही अपनाया। मुशीजी फारसी-अरबी के अच्छे विद्वान् होते हुए भी भाषा की शुद्धता के पक्षधर थे। सस्कृत के तत्सम शब्दो के प्रयोग द्वारा उन्होंने भविष्य की भाषा का एक सामान्य स्वरूप-निर्धारण कर दिया था।

इशा अल्ला खां द्वारा रचित 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' (स० १८५५ और १८६० के बीच) एक प्रसिद्ध पुस्तक है। न तो वे 'उर्दू-ए-मुल्ला' के पक्षपाती थे और न सस्कृतनिष्ठ हिंदी के। उक्त रचना की सबसे बडी विशेषता विषय की नवीनता और मौलिकता है। उनकी शैली मे चटक-मटक और मुहावरो की अधिकता है।

लल्लूलाल फोर्ट विलियम कॉलिज मे हिंदी-उर्दू के अध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता मे ईस्ट इडिया कम्पनी के कर्मचारियो को हिंदुस्तानी की शिक्षा देते थे। उपर्युक्त गिलक्राइस्ट साहब के आदेशानुसार लल्लूलाल ने भागवत के दशम स्कध की कथावस्तु लेकर 'प्रेमसागर' लिखा। 'प्रेमसागर' के अतिरिक्त भी उन्होंने अन्य कई पुस्तको की रचना की। उनकी भाषा ब्रज-मिश्रित खडीबोली है जिसमे अरबी, फारसी आदि विदेशी शब्दों के बहिष्कार की प्रवृत्ति है।

सदल मिश्र ने फोर्ट विलियम कॉलिज मे उसी समय 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। इस ग्रथ की भाषा खडीबोली होने पर भी ब्रजभाषा और पूर्वी बोली से प्रभावित है। किंतु इन दोनो समकालीन लेखको की भाषा मे पर्याप्त अतर है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा के विषय मे सदल मिश्र लल्लूलाल जी से अधिक सचेत थे।

इस प्रकार स० १८६० के लगभग उपर्युक्त चारो लेखक हिंदी गद्य के उस रूप को सजा-सँवार रहे थे जिसका भविष्य मे एक निश्चित स्थान होना था। इनमे भी मुशी सदासुखलाल की भाषा के आधार पर खडी-

बोली का विकास हुआ है। अत हिंदी गद्य के प्रवर्तक इन चारो महानुभावो मे मुशी सदासुखलाल का स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

हिंदी के विकास और प्रचार का बहुत कुछ श्रेय धार्मिक आदोलनो को है। ईसाई मिशनरियो ने व्यवहारोपयोगी भाषा मे अपने धर्म ग्रथो के अनुवाद हिंदी मे कराकर जनता मे वितरित किये। धर्म-प्रचार के जोश में मिशनरियों ने स्थान-स्थान पर स्कूल खोले, पुस्तकें लिखवायी और उनका प्रचार किया। सन् १८३५ मे श्रीरामपुर मे, जो इन ईसाई-धर्म-प्रचारको का केंद्र था, प्रेस की स्थापना की गयी और प्रचारक पत्रिकाएँ निकलनी प्रारभ हुई। यह साहित्य मुफ्त मे बाँटा जाता था। उनकी उत्कट धर्म-प्रचार भावना के कारण हिंदी की अनेक पुस्तकें घर-घर पहुँच गयी। इस प्रकार गद्य के विकास मे उनका योग कम महत्त्वपूर्ण नही है।

ईसाई धर्म-प्रचारको के इस क्रियात्मक योग के अलावा सबसे महत्त्वपूर्ण था उसका अप्रत्यक्ष लाभ। इन प्रचारको की धार्मिक खडन मडन की प्रवृत्ति ने हिंदू समाज मे जागृति की लहर पैदा कर दी। परिणाम यह हुआ कि अनेक धर्म-सुधारक समाज उठ खडे हुए। उनमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है राजा राममोहन राय का 'ब्रह्मसमाज'। राममोहन राय ने हिंदू धर्म का नवीन सस्कार कर अपने विचारों के प्रचार के लिए हिंदी को ही माध्यम बनाया। स्वामी दयानद सरस्वती ने हिंदी के द्वारा आर्य समाज के सिद्धातो का विवेचन और प्रचार किया। उन्होंने अपना सुप्रसिद्ध ग्रथ सत्यार्थप्रकाश' खडीबोली गद्य मे लिखा। आर्य समाज ने उत्तर भारत के घर-घर मे हिंदी का प्रचार किया।

यद्यपि खडीबोली गद्य का निश्चित आरभ १९वीं शती ईसवी के प्रारभ से ही हो गया था तथापि उसकी अखड परपरा सन् १८५७ के स्वतत्रता-आदोलन के पश्चात् ही चली। देश-प्रेम की भावना ने जन-मानस मे अपनेपन के भाव का प्रसार किया और इस प्रकार देश में अपनी भाषा के प्रति अभूतपूर्व आकर्षण उत्पन्न हुआ। उस समय गद्य-निर्माण के क्षेत्र मे काशी-निवासी राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' और आगरा-निवासी राजा लक्ष्मणसिंह का योग अविस्मरणीय है।

सस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने मे सक्षम होने पर भी सरकार को प्रसन्न करने, हिंदी का गँवारूपन दूर करने और भाषा मे एकरूपता लाने के

लिए राजा शिवप्रसाद ने उर्दू-मिश्रित हिंदी का समर्थन किया। इसके विपरीत राजा लक्ष्मणसिंह ने संस्कृतनिष्ठ किंतु बोधगम्य व्यावहारिक हिंदी का प्रयोग किया। उनकी भाषा का सर्वोत्तम निखरा रूप उनके द्वारा अनूदित 'शकुंतला' नाटक में है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इन दोनों शैलियों के मध्य का मार्ग अपनाकर सरल और सुगम हिंदी की प्राण-प्रतिष्ठा की। इस प्रकार भारतेंदु के समय से खड़ीबोली का गद्य राजमार्ग पर आ गया और उसकी विकास-यात्रा के तीन सोपान हैं—भारतेंदु-युग, द्विवेदी-युग और द्विवेदी-उत्तर युग। इन तीन युगों में हिंदी गद्य के विविध रूपों—कहानी, उपन्यास, नाटक, एकाकी, रेडियो-रूपक, आलोचना, निबंध, जीवनी, संस्मरण, आत्म-कथा, रिपोर्ताज आदि का स्वतंत्र रूप से विकास हुआ है।

अब हम एक-एक करके इस संग्रह में समाविष्ट गद्य-रूपों के स्वरूप एवं विकास पर दृष्टिपात करेंगे।

निबंध 'गद्य कवीनां निकषं वदंति' के अनुसार यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार निबंध गद्य की कसौटी है। वास्तव में गद्य का परिष्कृत रूप निबंध में ही परिलक्षित होता है। 'शैली ही व्यक्तित्व है' इस कथन का प्रमाण निबंध से बढ़कर साहित्य की अन्य कोई विधा नहीं हो सकती। अतः निबंध को गद्य की कसौटी मानना सर्वथा उपयुक्त है।

संस्कृत का शब्द 'निबंध' आधुनिक हिंदी साहित्य में अंग्रेजी 'एस्से' शब्द का पर्यायवाची बन गया है। अंग्रेजी का एस्से एक ऐसी संज्ञा है जिसका व्यवहार अनेक प्रकार की गद्य रचनाओं के लिए हुआ है। हिंदी में भी निबंध शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थों में होता है। निबंध और एस्से दोनों ही शब्द अपने प्राचीन अर्थ को छोड़कर अपने नये अर्थ में प्रयोग में आ रहे हैं। निबंध की परिभाषा के विषय में विद्वानों में विभिन्न मत हैं। उनका यहाँ सविस्तार उल्लेख करना न प्रासंगिक है, न अभीप्सित ही। हाँ, प्रायः सभी लोग आधुनिक निबंध के चार प्रधान तत्त्व स्वीकार करते हैं—प्रतिपाद्य विषय की एकतानता, लेखक के व्यक्तित्व की छाप, कलात्मकता अर्थात् रमणीय प्रतिपादन-शैली और अनौपचारिकता अथवा आत्मी-

मता का गुण । हिंदी के सुप्रसिद्ध निबधकार एव आलोचक गुलाबराय के शब्दो मे, "निबध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमे एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन अथवा प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छदता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक सगति और सबद्धता के साथ किया गया हो ।"

निबध की परिभाषा के समान ही विद्वानो मे निबध के वर्गीकरण या प्रकार पर मतैक्य नही है । यदि कुछ समीक्षक निबध के मुख्यत तीन प्रकार—वर्णनात्मक, भावात्मक और विचारात्मक ही मानते है और विवरणात्मक निबध को वर्णनात्मक के ही अतर्गत स्वीकार करते हैं तो कुछ 'वैयक्तिक निबध' के नाम से निबध का एक अलग प्रकार भी मानते हैं । कतिपय विद्वानो ने निरूपित विषय और शैली के आधार पर भी निबध के भेद किये हैं, यथा—साहित्यिक, सास्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, आलोचनात्मक, हास्य एव व्यग्यात्मक । आचार्य रामचद्र शुक्ल ने तो समस्त निबधो को विषय-प्रधान और विषयी-प्रधान नामक केवल दो भेदो मे ही समाविष्ट कर दिया है । कहने का तात्पर्य यह है कि निबध के प्रकारो की सख्या सुनिश्चित नही है । अतः यहाँ विविध प्रकार के निबधो का ऐसा विभाजन करना उपयुक्त जान पडता है जो जटिल तो कम से कम हो लेकिन सगत अधिक से अधिक हो । इस दृष्टि से निबध के केवल तीन भेदो का उल्लेख पर्याप्त होगा ।

(१) ललित निबध—इन निबधो मे विषयीगत विवेचन की प्रमुखता रहती है अर्थात् लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यजना इनकी आतरिक विशेषता है । ऐसे निबधो मे वस्तु का नही, लेखक का महत्त्व होता है । लेखक की स्वय की रुचियाँ, प्रतिक्रियाएँ, अनुभूतियाँ आदि इस प्रकार के निबधो मे निर्बाध अभिव्यक्ति पाती हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि ये निबध लेखक के व्यक्तित्व का पारदर्शी दर्पण होते है। ऐसे निबध लेखन के लिए आवश्यक गुण हैं—विद्वत्ता, फक्कडपन, यायावरी-वृत्ति, लोककथा-प्रेम, सूक्ष्म विचार-शक्ति और गद्यकाव्य की भावात्मक शैली । इस प्रकार के निबध-लेखको मे प्रमुख हैं—अध्यापक पूर्णसिंह, आचार्य रामचद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, सियारामशरण गुप्त, हरिशकर परसाई, विद्यानिवास मिश्र, धर्मवीर

भारती, कुबेरनाथराय, शिवप्रसाद सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह आदि। यदि अध्यापक पूर्णसिंह के निबंधो मे एक सदाचारपूर्ण सद्गृहस्थ के दर्शन होते है तो हरिशकर परसाई के चुभते हुए व्यग्य और विद्यानिवास मिश्र तथा शिवप्रसाद सिंह के *सास्कृतिक भावजगत् की रसमयता हमे आकृष्ट करती* है। उपर्युक्त सभी निबधकारो के निबधो मे इनका व्यक्तित्व अलग-अलग झलकता है।

(२) साहित्यिक निबंध—विद्वानों ने केवल ललित निबंध और साहित्यिक निबंध को ही साहित्य का अग स्वीकार किया है। यद्यपि तात्विक दृष्टि से दोनो मे कोई अतर नही है तथापि साहित्यिक निबंध का अलग उल्लेख करना इसलिए अनिवार्य है कि ललित निबंध का विषय कुछ भी हो सकता है, *लेकिन साहित्यिक निबंध का विषय साहित्य सबधी* ही होता है। व्यक्तित्व के सस्पर्श के रहते हुए भी साहित्यिक निबंधों मे वैचारिक प्रतिपादन के कारण सघन सूत्रबद्धता और तर्क-प्रमुखता होती है। *यदि परपरागत दृष्टि से देखें तो ये विचारात्मक निबंध ही हैं।* और चूँकि निबंध शब्द का व्यवहार साहित्यिक क्षेत्र से अलग भी पर्याप्त हो रहा है, इसलिए वर्णनात्मक, भावात्मक, विचारात्मक आदि भेद असगत हो गये हैं। *अत ललित और साहित्यिक नाम अधिक समीचीन हैं।* इस दृष्टि से निबंध रूप मे लिखित वर्णनात्मक व भावात्मक साहित्यिक रचनाएँ ललित निबंध के अतर्गत आयेंगी और विचारात्मक साहित्यिक रचनाएँ साहित्यिक निबंध के अतर्गत।

(३) उपयोगी अथवा शास्त्रीय वैज्ञानिक निबंध—इन निबंधो का उद्देश्य ज्ञानवर्द्धन या शास्त्रीय दृष्टिकोण का प्रतिपादन होता है। इनमे वस्तुगत विवेचन की प्रमुखता रहती है। वैसे इन्हें लेख कहना अधिक उपयुक्त होगा, *लेकिन हिंदी मे निबंध और लेख पर्यायवाची हो गये* है। इस प्रकार के निबंधो को सर्जनात्मक लेखन के अतर्गत नही माना जायगा। स्वतत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत मे विज्ञान और वाणिज्य *सबधी पर्याप्त साहित्य लिखा गया है और लिखा जा रहा है। अर्थशास्त्र,* वाणिज्य और विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकी विषयों पर पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। यह सब लेखन उपयोगी निबंधो के अतर्गत ही आयेगा।

निबंध का विकास हिंदी निबंध का प्रारभ भी अन्य विधाओ की

भांति भारतेंदु-युग मे ही हुआ। सामयिक साहित्य की उन्नति, अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्ययन तथा देश के तत्कालीन राजनीतिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक एव साहित्यिक आदोलन ने हिंदी लेखको को निबंध लिखने की प्रेरणा दी। प० बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, ठाकुर जगमोहनसिंह आदि ने हिंदी निबधो के प्रारभिक विकास में प्रशसनीय योग दिया। यह निबंध का शैशवकाल है। विषय और भाषा-शैली की दृष्टि से इन सब लेखको की कृतियां सुदृढ निबध-परपरा की आधार-शिला हैं। इन निबधो मे व्यक्तित्व की छाप है, शैली का सौष्ठव है और मुक्त प्रवाह है।

द्विवेदी-युग मे आकर निबंध वैचारिक प्रौढता और निबधता को प्राप्त हो गया। हिंदी गद्य भी परिष्कार के कारण व्यवस्थित और नियमित हो गया था। इसका श्रेय 'सरस्वती'-सपादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को है। इस युग के अधिकाश निबंधो का लेखन किसी पत्रिका, भाषा या ग्रथ-भूमिका के रूप मे हुआ। निबंध के तीनो प्रकार—वर्णनात्मक, भावात्मक, चिंतनात्मक— इस युग मे लिखे गये। वर्णनात्मक निबंध-लेखको मे महावीरप्रसाद द्विवेदी, काशीप्रसाद जायसवाल, पदुमलाल पुन्ना-लाल बख्शी का नाम उल्लेखनीय है। इन निबधो मे तटस्थ भाव से अभीष्ट विषय का वर्णन हुआ है। भावात्मक निबंधो मे निबंधकारो के हृदयोद्गारो का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। ऐसे निबंध लेखको मे अध्यापक सरदार पूर्णसिंह का नाम अविस्मरणीय है। चिंतन-प्रधान निबधो ने पाठको के बौद्धिक विकास मे पर्याप्त योग दिया। गौरीशकर हीराचद ओझा, आचार्य रामचद्र शुक्ल, श्यामसुदर दास और बाबू गुलाब-राय ने निबंध-रचना कर हिंदी साहित्य को सम्पन्न तथा प्रौढ बनाया।

द्विवेदीजी के बाद हिंदी निबंध ने विविध नये आयामो का स्पर्श किया। शैली और विषय दोनो दृष्टियो से इस युग मे निबंध उत्कृष्टता को प्राप्त हुए। आचार्य शुक्ल ने अपने अधिकाश निबंध द्विवेदी-युग मे ही लिखे। शुक्लजी न विचारात्मक निबंधो की परपरा को आगे बढ़ाया। श्यामसुदर दास, गुलाबराय एव पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने द्विवेदी-उत्तर युग मे श्रेष्ठ निबंधो की रचना की।

आधुनिक युग में निबंध विधा का कितना उत्कर्ष हुआ है इसका प्रमाण है प्रतिष्ठित निबंधकारों की बहुलता। इस युग में निबंध का जितना अधिक परिष्कार व विकास हुआ वह अभूतपूर्व है। प्रसिद्ध निबंध-लेखकों—गुलाबराय, सियारामशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, जैनेंद्रकुमार, राहुल सांकृत्यायन, शांतिप्रिय द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, रामविलास शर्मा, भागीरथ मिश्र, विजयेंद्र स्नातक, रामवृक्ष शुक्ल 'शिलीमुख', शिवदानसिंह चौहान, प्रभाकर माचवे, प्रकाशचंद्र गुप्त आदि ने अपने विचार प्रधान निबंधों के योग से हिंदी निबंध साहित्य को संपन्न बनाया है।

भावात्मक निबंध लिखनेवालों में रायकृष्णदास, वियोगी हरि, महाराजकुमार रघुवीरसिंह और चतुरसेन शास्त्री के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। इस युग में ललित निबंध पर्याप्त लिखे गये हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, डॉ० शिवप्रसाद सिंह इस विधा के महत्त्वपूर्ण लेखक हैं। व्यंग्यात्मक निबंध भी इस दौरान खूब सामने आये हैं। हरिशंकर परसाई, इंद्रनाथ मदान, केशवचंद्र वर्मा और श्रीलाल शुक्ल का योग इस दिशा में अविस्मरणीय है।

चरितात्मक और संस्मरणात्मक लेखन इस युग की विशिष्ट उपलब्धि माना जायेगा। महादेवी वर्मा, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, धर्मवीर भारती उक्त विधाओं के सफल लेखक हैं।

राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रसार प्रचार के साथ साथ देश में वाणिज्य एवं विज्ञान संबंधी लेख अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित कर रही हैं। वाणिज्य की 'संपदा', 'योजना' और विज्ञान की 'विज्ञान प्रगति', 'विज्ञान-लोक' आदि पत्रिकाएँ इस क्षेत्र में अच्छा कार्य कर उपयोगी निबंधों को पाठकों के समक्ष ला रही हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिंदी निबंध साहित्य ने विषय-वैविध्य और शैली की दृष्टि से बहुत उन्नति कर ली है। अनेक लेखकों ने साहित्य की इस विधा को पुष्ट एवं समर्थ बनाया है। लेकिन साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में देखें तो अभी निबंध के विकास की पूर्णता अपेक्षित ही है।

गद्य साहित्य के अन्य रूप

रिपोर्ताज रिपोर्ताज हिंदी गद्य की एक नवीन विधा है। रिपोर्ताज अग्रेजी शब्द 'रिपोट' का समानार्थी फ्रासीसी शब्द है। हिंदी साहित्य कोश भाग १ मे इसके सबध मे कहा गया है—'रिपोट किसी घटना के यथातथ्य वणन को कहत है। रिपोट सामान्यत किसी समाचार-पत्र के लिए लिखी जाती है और उसम साहित्यिकता नही होती। रिपोर्ट के साहित्यिक एव कलात्मक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं। वस्तुगत तथ्य को रेखाचित्र की शैली मे प्रभावोत्पादक ढग से अकित करने मे ही रिपोर्ताज की सफलता है। आँखो-देखी और कानो-सुनी घटनाओ पर रिपोर्ताज लिखा जा सकता है, कल्पना के आधार पर नही। लेकिन तथ्यो के वणन मात्र से रिपोर्ताज नही बना करता, रिपोट भले ही बन सके। घटना प्रधान होने के साथ ही रिपोर्ताज को कथातत्त्व से भी युक्त होना चाहिए। रिपोर्ताज-लेखक को पत्रकार तथा कथाकार की दोहरी भूमिका निभानी पडती है। साथ ही उसके लिए आवश्यक होता है कि वह जनसाधारण के जीवन की सच्ची और सही जानकारी रख और उसके उत्सवो, मेलो, बाढो, अकालो, युद्धो और महामारियो जैसे सुख-दु ख के क्षणो मे जनता को निकट से देखे। तभी वह अखबारी रिपोर्टर और साहित्यिक रचनाकार की हैसियत से जनजीवन का प्रभावोत्पादक इतिहास लिख सकेगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका ने इस नवीन कला-रूप को जन्म दिया। सोवियत सघ पर हिटलर द्वारा किये गये आक्रमण ने अनेक सोवियत लेखको को अपने देश की रक्षा के लिए युद्ध के मोर्चों पर जान की प्ररणा दी। उन्होने वहाँ के अनुभवो एव घटनाओ का साहित्यिक वर्णन रूस के पत्रो मे भेजा। रूस मे रिपोर्ताज-लेखक के रूप मे इलिया एहरेनवुर्ग को सर्वाधिक सफलता मिली।

हिंदी मे इस विधा का प्रारभ 'हस म प्रकाशित मौत के खिलाफ जिन्दगी की लडाई रिपोर्ताज के द्वारा होता है जिसके लेखक शिवदान-सिंह चौहान हैं। उनके ही दूसरे समकालीन डॉ० रागेय राघव ने सन् १९४३-४४ म बगाल के अकाल की हृदय-विदारक पैशाचिक लीला को प्रत्यक्ष देखकर अकाल की भयकरता के अनेक दृश्या को रिपोर्ताज के

रूप में प्रस्तुत किया। आपका 'तूफ़ानों के बीच' सग्रह इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। तीसरे महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज-लेखक हैं—प्रकाशचद्र गुप्त। इन्होंने घटना-प्रधान रिपोर्ताज ही अधिक लिखे हैं जिनमे 'बगाल का अकाल' और 'अलमोडे का बाज़ार' प्रसिद्ध हैं। रामकुमार ने 'यूरोप के स्केच' मे चित्रात्मकता के साथ विवरण भी दिया है। अत यहाँ स्केचो मे रेखाचित्र और रिपोर्ताज का सम्मिश्रण हो गया है। हिंदी के ख्याति-लब्ध आचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने बहुचर्चित उपन्यास 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' मे इस शैली का अभिनव एव सफल प्रयोग किया है। अन्य महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज-लेखक हैं—सर्वश्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', प्रभाकर माचवे, जगदीशचद्र जैन, अमृतलाल नागर, लक्ष्मीचद्र जैन, धर्मवीर भारती आदि।

यात्रावृत्त: मानव की जीवन-यात्रा मे यात्रा का महत्त्व अपरिमेय है। यदि कभी उसने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने अथवा जिज्ञासा को तृप्त करने के लिए सघन वन, ऊँचे गिरि-शिखरो तथा शुष्क रेगिस्तानो की यात्रा की है, तो कभी प्रकृति के पल-पल परिवर्तित रूप ने एव अन-जाने देशो के इतिहास, वहाँ की सस्कृति और समाज ने उसे अपनी ओर आकृष्ट किया है। आधुनिक युग में विकसित सचार-साधनो तथा दृढ होते हुए अतर्राष्ट्रीय सबधो ने मानव की घुमक्कडी वृत्ति को और भी अधिक बलवती बनाया है। इसका परिणाम सामने है—हिंदी में यात्रा सबधी विपुल साहित्य। इसमे कुछ तो विशुद्ध यात्रोपयोगी है, और ऐसे साहित्य का प्रयोजन केवल भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न स्थानो का परिचय मात्र देना है। लेकिन पर्याप्त साहित्य ऐसा भी है जहाँ लेखक यात्रा-विवरण के साथ-साथ अपने भावावेगो, प्रतिक्रियाओ और सवेद-नाओं को भी व्यक्त करता चला गया है।

यात्राओं का क्रम बहुत प्राचीन है। सुदूर पूर्व के देशो मे भारतीय सस्कृति और धर्म के सदेश इसके प्रमाण हैं। भारत के साहसी, सभ्य, शिल्पकला दक्ष, व्यापार निपुण और परिश्रमी लोग प्राचीन काल से ही विदेशो से अपना सबध रखते थे, इसका उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रथो मे उपलब्ध है। आधुनिक युग मे आकर न केवल यात्राओ का सिलसिला ही बढा है अपितु यात्रावृत्त-लेखन की गति भी और अधिक तीव्र हुई है।

भावाभिव्यजना एव रचना-परिमाण दोनो दृष्टियो से यह युग महत्त्वपूर्ण है। साहित्यिक स्तर पर भी यात्रा-साहित्य मे प्रौढता आयी है।

इस युग के प्रमुख यात्रा-ग्रथ और उनके लेखक इस प्रकार है—मेरी लद्दाख-यात्रा, मेरी जीवन-यात्रा, किन्नर देश मे, दार्जिलिंग-परिचय, रूस मे २५ मास तथा हिमालय-परिचय आदि—राहुल साकृत्यायन, रोमाचक रूस मे—डॉ० सत्यनारायण, कैलाश-दर्शन—शिवनदन सहाय ईराक की यात्रा—कन्हैयालाल मिश्र, काश्मीर—श्रीगोपाल नेवटिया, इग्लैंड-यात्रा—रामचद्र शर्मा, दुनिया की सैर—योगेंद्रनाथ सिन्हा, यूरोप के पत्र—डॉ० धीरेंद्र वर्मा, भारतवर्ष के कुछ दर्शनीय स्थान—चक्रधर हस, विश्वयात्री—डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, पैरो मे पख बांधकर—रामवृक्ष बेनीपुरी, लोहे की दीवारो के दोनो ओर—यशपाल; अरे यायावर रहेगा याद—अज्ञेय, आंखो-देखा रूस—पडित जवाहरलाल नेहरू, आखिरी चट्टान तक—मोहन राकेश, पृथ्वी-परिक्रमा—सेठ गोविंददास; चीडो पर चांदनी—निर्मल वर्मा, बदलते दृश्य—राजवल्लभ ओझा।

इन ग्रथो के अतिरिक्त कुछ स्फुट निबध भी पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहे हैं। भारती का 'ठेले पर हिमालय' उल्लेखनीय है। साप्ताहिक हिंदुस्तान और धर्मयुग के योग को भी इस दिशा मे भुलाया नही जा सकता। साप्ताहिक हिंदुस्तान ने तो एक सैलानी विशेषाक ही निकाल दिया है। श्री विराज का 'कर्णफूली के रगीन किनारे' और श्री हरिवश वेदालकार का 'मानसरोवर की लहरो मे' यात्रावृत्त इस अक की विशेष उपलब्धि माने जायेंगे।

सस्मरण · सस्मरण के स्वरूप को समझने के लिए महादेवी वर्मा का यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण है, "सस्मरण मे हम अपनी स्मृति के आधारो पर से समय की धूल पोछ पोछकर उन्हें अपने मनोजगत् के निभृत कक्ष मे बैठाकर उनके साथ जीवित रहते है और अपने आत्मीय सबधो को पुन जीवित करते हैं। इस स्मृति-मिलन मे मानो हमारा मन बार-बार दोहराता है, हमे आज भी तुम्हारा अभाव है।" (स्मृति-चित्र)

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि जब कोई लेखक किसी मनोरम दृश्य, अविस्मरणीय घटना या सपर्क में आये हुए व्यक्तियो के सबध मे अपनी अनुभूतियो एव सवेदनाओ के सस्पर्श से सजीव चित्र

अंकित करता है, उसे संस्मरण कहते हैं। वैसे संस्मरण का मुख्य उद्देश्य पात्र-विशेष की उस विशेषता का अंकन करना है जिसकी छवि हमारे मानस-पटल पर अमिट है। संस्मरण निबंध का ही एक प्रकार है। यह जीवनी और आत्मकथा का मूल आधार है। आत्मकथा में लेखक का स्वयं का जीवन एवं चरित्र ही उसका उद्देश्य होता है, संस्मरण में दूसरा व्यक्ति प्रमुख होता है, और लेखक अपना परिचय उसी के माध्यम से देता है। संस्मरण इतिहास के लिए भी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता है, क्योंकि समसामयिक जीवन एवं परिवेश का चित्रण संस्मरण के लिए अनिवार्य है। व्यक्तिगत संपर्क को संस्मरण का प्राण कहा गया है।

हिंदी में संस्मरण-लेखन का प्रारंभ पं० पद्मसिंह शर्मा द्वारा हुआ। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के 'संस्मरण' तथा 'हमारे आराध्य' भाषा-शैली के वैशिष्ट्य और आत्माभिव्यक्ति के कौशल की दृष्टि से संस्मरण विधा के उन्नायक हैं। छायावाद की श्रेष्ठ कवयित्री महादेवी वर्मा की संस्मरण-कृतियाँ—'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी' तथा सद्य:प्रकाशित 'स्मृति-चित्र' शिल्प की दृष्टि से उल्लेख्य हैं। बिहार के राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह व रामवृक्ष बेनीपुरी का योगदान भी इस क्षेत्र में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। बेनीपुरी जी की 'माटी की मूरतें' तो एक आदर्श कृति है। अन्य विख्यात संस्मरण-लेखक हैं श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' तथा रामनाथ 'सुमन'। नये लेखकों में प्रभाकर माचवे, विद्यानिवास मिश्र, डॉ० रघुवंश, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' तथा डॉ० शिवप्रसाद सिंह के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। इधर कुछ पत्रिकाओं में भी अच्छे संस्मरण प्रकाशित हुए हैं। इस दृष्टि से पंतजी, दिनकरजी और 'बच्चन' जी के योग को भुलाया नहीं जा सकता। पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी एवं गोपालदास के संस्मरण भी धर्मयुग में प्रकाशित हुए हैं। गोपालदास का 'एक जो चली गयी' संस्मरण हाल ही में प्रकाशित संस्मरणों में अपनी मौलिक शैली एवं संवेदना की सशक्तता के कारण अद्वितीय एवं सर्वाधिक चर्चित संस्मरण है।

आत्मकथा : व्यक्तिगत जीवन अथवा आत्मचरित के यथातथ्य किंतु रोचक एवं साहित्यिक रूपांतर को आत्मकथा कहते हैं। हिंदी में आत्मकथा के लिए 'आत्मचरित' या 'आत्मचरित्र' शब्द भी प्रयुक्त होते

रहे हैं। आत्मकथा के माध्यम से कोई भी लेखक अपने जीवन की उपलब्धियों एवं अनुभवों को इसलिए लिपिबद्ध करता है कि आनेवाली पीढ़ियाँ उनसे अपने लिए मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें और लाभान्वित हो सकें। एक अच्छा आत्मकथा-लेखक अपने जीवन मे घटित को पुन. स्मृतियों के सहारे काट-छाँटकर इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वह कृति इतिहास एव साहित्य की अमर निधि बन जाती है। इसीलिए तटस्थता को आत्मकथा का अनिवार्य गुण स्वीकार किया गया है। आत्मकथा-लेखक का दायित्व इतिहासकार और उपन्यासकार से भी अधिक गुरुतर एव दुष्कर है। इतिहास की घटनापरकता एव उपन्यास की कल्पना-बहुलता दोनों का परित्याग कर आत्मकथा-लेखक अपने जीवन का एक ऐसा दस्तावेज प्रस्तुत करता है जो सार्थक, सरस और अनुभूति से युक्त हो। आत्मीयता से परिपूर्ण एव अतिरंजना से मुक्त आत्मकथाएँ ही साहित्य मे गौरव की अधिकारिणी हो सकती हैं।

हिंदी मे लिखे गये संपूर्ण आत्मकथा साहित्य पर दृष्टिपात करें तो हमे तीन प्रकार की आत्मकथाओं के दर्शन होते हैं—(१) राजनेताओं द्वारा लिखी गयी आत्मकथाएँ, (२) सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा लिखी गयी आत्मकथाएँ और (३) साहित्यकर्मियों द्वारा लिखी गयी आत्मकथाएँ।

पहली प्रकार की आत्मकथाओं मे महात्मा गांधी, नेहरूजी, देशरत्न डॉ० राजेंद्रप्रसाद, सुभाषचद्र बोस और डॉ० राधाकृष्णन् की आत्मकथाएँ महत्त्वपूर्ण है। महात्माजी की आत्मकथा मूलत गुजराती मे थी, नेहरूजी की 'आत्मकहानी' अंग्रेजी मे थी, इन दोनों का हिंदी अनुवाद हरिभाऊ उपाध्याय ने किया। सुभाषचद्र बोस एव डॉ० राधाकृष्णन् की आत्मकथाएँ भी अनूदित होकर हिंदी मे आयी। केवल बाबू राजेंद्र-प्रसाद ने अपनी आत्मकथा हिंदी में लिखी है।

सामाजिक क्षेत्र के आत्मकथा-लेखकों मे दो नाम महत्त्वपूर्ण है—भवानीदयाल सन्यासी (प्रवासी की आत्मकथा) तथा वियोगी हरि (मेरा जीवन-प्रवाह)।

साहित्यकारों मे आत्मकथा-लेखक के रूप मे सर्वश्री बाबू श्याम-सुंदर दास, सियारामशरण गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, सेठ [illegible] दास, चतुरसेन शास्त्री, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बाबू [illegible]

बच्चनजी उल्लेखनीय हैं।

जिन आत्मकथाओं पर विशेष चर्चा हुई है वे हैं—'आत्मनिरीक्षण' (सेठ गोविंददास), 'मेरी अपनी कथा' (बख्शीजी), 'आत्मकहानी' (आचार्य चतुरसेन शास्त्री), 'अपनी खबर' (पांडेय बेचन शर्मा), 'मेरी असफलताएँ' (बाबू गुलाबराय) तथा बच्चनजी की आत्मकथा में प्रकाशित दो खण्ड—'क्या भूलूं क्या याद करूँ' एवं 'नीड़ का निर्माण फिर'।

एकांकी एकांकी आधुनिक युग की अपेक्षाकृत एक नयी विधा है जिसका विकास इंग्लैंड में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ। यद्यपि हमारे यहाँ भी संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठ नाटकों की अतुल संपत्ति के साथ रंगमंच, अभिनय तथा रूपकों के भेदोपभेदों की प्रशस्त परंपराएँ उपलब्ध हैं, तथापि आज के हिंदी एकांकी का संस्कृत के इन एक अंक वाले नाटकों से कोई संबंध नहीं है। आधुनिक एकांकियों का प्रारंभ भारतेंदु-युग में अंग्रेजी के प्रभाव के फलस्वरूप हुआ। बड़े नाटकों के स्थान पर एकांकी नाटकों का प्रचलन मनुष्य के समयाभाव के कारण ही हुआ। भारतेंदु का 'अंधेर नगरी' प्रारंभिक एकांकी का अच्छा उदाहरण है। भारतेंदु-युग में एकांकी का विकास राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, सामाजिक, यथार्थवादी, धार्मिक-पौराणिक एवं हास्य व्यंग्य-प्रधान धाराओं में हुआ। भारतेंदु के अतिरिक्त प० प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, बालकृष्ण भट्ट, रुद्रदत्त शर्मा आदि ने इस युग के एकांकी के स्वरूप-विकास में यत्किंचित् योग प्रदान किया। द्विवेदी-युग में नाट्य साहित्य की धारा मंद रही लेकिन एकांकी की तकनीक का विकास अवश्य हुआ। संस्कृत के प्रभाव के स्थान पर पाश्चात्य प्रभाव बढ़ने लगा था। लेकिन अभी तक हिंदी एकांकी पारसी प्रभाव से मुक्ति नहीं पा सका था। द्विवेदी-युग के प्रमुख एकांकीकारों में जी० पी० श्रीवास्तव, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और रामनरेश त्रिपाठी आदि हैं जिन्होंने एकांकी के उभार को तनिक और स्पष्ट आकृति प्रदान की।

सन् १९२९ में प्रसादजी के 'एक घूंट' का प्रकाशन हिंदी एकांकी के विकास में नवीन दिशा का संकेत देता है। प्रसादजी के बाद हिंदी एकांकी का विकास तीन धाराओं में स्पष्ट दिखायी देता है। प्रथम धारा में एकांकीकारों में प्रमुख हैं—जैनेंद्रकुमार, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, चतुरसेन

शास्त्री, प० गोविंद वल्लभ पंत आदि । इनके द्वारा लिखित नाटकों के कथानक ऐतिहासिक हैं और इनमें शिल्प की दृष्टि से कोई भी नया प्रयोग नहीं हुआ है। दूसरी धारा में भुवनेश्वर प्रसाद, कृश्नचंदर और वीरगांवकर के नाम उल्लेखनीय हैं। इस सभी ने अपने एकांकियों के लिए समस्याएँ, विचार और तकनीक सभी कुछ पाश्चात्य एकांकियों व समाज से ग्रहण किया। तीसरी धारा के एकांकीकार वे हैं जिन्होंने पाश्चात्य एकांकियों के शिल्प को आत्मसात् कर भारतीय समस्याओं को नये ढाँचे में उभारा। इस दृष्टि से सर्वाधिक सफल एकांकीकार डॉ० रामकुमार वर्मा हैं। अन्य लोगों में लक्ष्मीनारायण मिश्र गोविंददास, जगदीशचंद्र माथुर, उपेंद्रनाथ अश्क, सज्जाद जहीर एवं उदयशंकर भट्ट प्रमुख हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उक्त एकांकीकारों ने हिंदी एकांकी के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग किये।

सन् १९३८ से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक के संघर्ष काल को एकांकी नाटकों का तीसरा दौर कहा जा सकता है। इस युग में सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर सर्वाधिक एकांकी प्रकाशित हुए। सामाजिक और राजनैतिक चेतना को स्पष्ट करनेवाले प्रमुख नाट्यकार हैं—लक्ष्मीनारायण लाल, गिरिजाकुमार माथुर, करतारसिंह दुग्गल, भारतभूषण अग्रवाल, विष्णु प्रभाकर, डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, मोहन राकेश एवं सत्येंद्र शरत।

गांधीजी के जीवन और दर्शन को लेकर भी काफी एकांकी लिखे गये। विष्णु प्रभाकर और हरिकृष्ण 'प्रेमी' का नाम इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। प्रभाकर जी ने तो मानवतावादी एकांकी भी लिखे हैं। राजनीति प्रधान इस युग में ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकियों की धारा क्षीण हो गयी है।

आज के एकांकीकार आदर्श और समाज सुधार की बात छोड़ सामाजिक क्रांति, युग-संघर्ष और सामान्य मानव की अंत बाह्य मन स्थितियों के चित्रण पर ही अधिक ध्यान केंद्रित किये हुए हैं। मार्क्सवाद और फ्रायड का मनोविश्लेषण इस युग के साहित्यकर्मियों को अत्यधिक प्रभावित किये हुए है। व्यक्ति के आंतरिक जगत् के सूक्ष्म विश्लेषण, मानसिक प्रवृत्तियां, मनोवेगों और उत्तेजनाओं को लेकर लिखनेवाले एकांकीकारों में प्रो० अर्जुन चौबे काश्यप, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर एवं

डॉ० रामकुमार वर्मा के नाम उल्लेख्य हैं।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् एकांकी नाटकों को काफी प्रोत्साहन मिला। देश के विभाजन एवं गत वर्षों की उथल-पुथल ने आधुनिक एकांकियों में कथानक को पर्याप्त विविधता प्रदान की है और आज की लगभग प्रत्येक समस्या को एकांकीकारों ने वाणी दी है। नये-पुराने अनेक लेखक इस विधा को सजाने-सँवारने में लगे हुए हैं।

रेडियो-रूपक यह विधा हमारे साहित्य के नवीनतम स्वरूप-विधानों में से एक है। आचार्यों ने संस्कृत में नाटकों को 'दृश्य' कहा था, लेकिन आज रेडियो ने उसे 'श्रव्य' बना दिया है। साधनों एवं माध्यम के इस बदलाव ने नाटक को स्वयं दर्शकों के पास पहुँचा दिया है। इस परिवर्तन से नाटक का कला-विधान भी पूर्णतः परिवर्तित हो गया है। रेडियो-रूपक में संकलनत्रय का कोई बंधन नहीं। उसकी घटनाएँ कई युगों को अपनी परिधि में ले सकती हैं। इसके लिए तो प्रभाव की अन्विति ही आवश्यक है जिससे कि नाटक अपने समग्र रूप में श्रोताओं को प्रभावित कर सके। यद्यपि दृश्य-साधनों के अभाव में रेडियो-नाटक की अनेक सीमाएँ हैं, तथापि अपनी मात्र श्रव्यता के कारण वह उन गतिशील दृश्यों को भी प्रस्तुत कर सकता है जिन्हें रंगमंच पर नहीं दिखाया जा सकता। रेडियो रूपक में अभिनय को दिखाया नहीं जा सकता, अतः ध्वनि ही इसका आधार है। ध्वनि के द्वारा ही विभिन्न मनोभावों और दृश्यों को व्यक्त किया जाता है।

भारत में रेडियो-नाट्य शिल्प बहुत देर से विकसित हो पाया था, अतः रेडियो से नाटकों का प्रसारण कार्य भी देर से ही प्रारंभ हुआ। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'राधाकृष्ण' को हिंदी का पहला नाटक माना गया है जिसमें श्रव्य माध्यमों के उपयोग का प्रयत्न है तथा स्थान और समय की इकाइयों को भी स्वीकार नहीं किया गया।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व रेडियो नाटक के क्षेत्र में कुछ प्रयास तो किये गये, लेकिन हिंदी क्षेत्र में प्रसारण केंद्रों की कमी और उर्दू के अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान के कारण रेडियो-नाट्य कला का समुचित विकास नहीं हो पाया। वैसे नाटक रेडियो से प्रसारित तो होते रहे, लेकिन रेडियो-नाटक के विकास में इनका महत्त्व ऐतिहासिक ही है। इस संबंध

मे उपेंद्रनाथ अश्क, उदयशकर भट्ट व डॉ० रामकुमार वर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। जिन अन्य प्रसिद्ध एकाकीकारो के नाटक रेडियो से प्रसारित हुए उनमे जगदीशचद्र माथुर, गोविंददास और देवेंद्र शर्मा प्रमुख हैं। मुख्य रूप से इनके नाटक रगमच के लिए लिखे गये थे, लेकिन रचना-विधान मे रेडियो प्रसारण क भी ध्यान रखा गया था। आल इण्डिया रेडियो के लिए नाटक लिखनेवालों मे सआदत हसन मटो, राजेंद्रसिह बेदी और कृश्नचदर का योग अविस्मरणीय है। हिंदी के रेडियो-नाटककारो मे, जिन्होंने स्वाधीनतापूर्व सफल रेडियो नाटक लिखे, चद्रकिशोर जैन और श्री पहाडी हैं। श्री जैन का पहला रेडियो-नाटक 'रहनुमा' नववर १९४२ मे लखनऊ से प्रसारित हुआ। इस दौरान ऐतिहासिक एव रोमाटिक नाटक ही अधिक लिखे गये।

सन् १९४७ के बाद रेडियो-नाटक का विकास द्रुतगति से हुआ। श्री जगदीशचद्र माथुर आकाशवाणी के महानिदेशक बने और अनेक मूर्धन्य साहित्यकारों का सपर्क आकाशवाणी से हुआ। आकाशवाणी के लिए लिखनेवालो और प्रसारित नाटको की सख्या तो अवश्य ही बहुत बडी रही, लेकिन साहित्यिक महत्त्व की रचनाएँ अधिक नही लिखी गयी।

स्वतत्रता-प्राप्ति के पश्चात् रेडियो-नाटक के विकास मे लेखन द्वारा योग देनेवाले प्रमुख रेडियो-नाट्यकार हैं—सर्वश्री विष्णु प्रभाकर, रेवती सरन शर्मा, प्रभाकर माचवे, कर्तारसिंह दुग्गल, चिरजीत, भारतभूषण अग्रवाल विश्वभर मानव, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव भगवतशरण उपाध्याय, हसकुमार तिवारी, ब्रजकिशोर नारायण, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, लक्ष्मी-नारायण मिश्र, रामचद्र तिवारी आदि।

जिन लेखको ने न केवल रेडियो-नाटक ही लिखे, प्रत्युत् श्रव्य-शिल्प के गहन अध्ययन द्वारा रेडियो नाटक के शिल्प पर प्रामाणिक पुस्तकें भी लिखी, उनमे श्री हरिश्चद्र खन्ना, सिद्धनाथ कुमार, गिरिजाकुमार माथुर एव श्री प्रफुल्लचद्र ओझा 'मुक्त' के नाम विशेष महत्त्व रखत है।

उपर्युक्त लोगो के अतिरिक्त रेडियो से अन्य नाटककारो की कृतियाँ भी प्रसारित होती रही है। कुछ नाम इस प्रकार है—लक्ष्मीनारायण लाल, रामवृक्ष बेनीपुरी, जयनाथ नलिन, देवराज दिनेश, सत्येंद्र शरत,

धर्मवीर भारती एव विनोद रस्तोगी। और भी नयी प्रतिभाएँ इस क्षेत्र मे *नित्यप्रति आ रही हैं।*

यद्यपि इस अवधि मे लेखको ने राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न पहलुओ और समस्याओ को यथार्थवादी नाटको मे वाणी दी है, तथापि अभी तक रेडियो रूपक अपना अपेक्षित स्तर प्राप्त करने की प्रक्रिया मे ही है। *नाट्य शिल्प की दृष्टि से अवश्य कुछ प्रभावशाली* रचनाएँ *प्रकाश* मे आयी हैं, जो रेडियो-रूपक के उज्ज्वल भविष्य की आशा देती है।

शिरीष के फूल

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

जहाँ बैठकर यह लेख लिख रहा हूँ उसके आगे-पीछे, दायें-बायें, शिरीष के अनेक पेड हैं। जेठ की जलती धूप मे, जबकि धरित्री निर्धूम अग्नि-कुण्ड बनी हुई थी, शिरीष नीचे से ऊपर तक फूलो से लद गया था। कम फूल ही इस प्रकार की गर्मी मे फूल सकने की हिम्मत करते हैं। कर्णिकार (वनचपा) और आरग्वध (अमलतास) की बात मैं भूल नही रहा हूँ। वे भी आसपास बहुत हैं। लेकिन शिरीष के साथ आरग्वध की तुलना नही की जा सकती। वह पद्रह-बीस दिन के लिए फूलता है, बसत ऋतु के पलाश की भाँति। कबीरदास को इस तरह पद्रह दिन के लिए लहक उठना पसद नही था। यह भी क्या कि दस दिन फूले और फिर खखड के खखड—'दिन दस फूला फूलि के खखड भया पलास'! ऐसे दुमदारो से तो लडूरे भले। फूल है शिरीष। बसत के आगमन के साथ लहक उठता है, आषाढ तक तो निश्चित रूप से मस्त बना रहता है। मन रम गया तो भरे भादो मे भी निर्घात फूलता रहता है। जब उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भाँति जीवन की अजेयता का मत्र-प्रचार करता रहता है। यद्यपि कवियो की भाँति हर फूल-पत्ते को देखकर मुग्ध होने लायक हृदय विधाता ने नही दिया है, पर नितात ठूँठ भी नही हूँ। शिरीष के पुष्प मेरे मानस मे थोडी हिल्लोल जरूर पैदा करते हैं।

शिरीष के वृक्ष बडे और छायादार होते हैं। पुराने भारत का रईस जिन मगल-जनक वृक्षों को अपनी वृक्ष-वाटिका की चहारदीवारी के पास लगाया करता था, उनमे एक शिरीष भी है (वृहत्सहिता ५५।३)। अशोक, अरिष्ट (रीठा का वृक्ष), पुन्नाग और शिरीष की छायादार और घन-मसृण हरीतिमा से परिवेष्टित वृक्ष वाटिका जरूर बडी मनोहर होगी। वात्स्यायन ने (कामसूत्र मे) बताया है कि वाटिका के छायादार वृक्षो की छाया मे ही झूला (दोला) लगाया जाना चाहिए। यद्यपि पुराने कवि बकुल (मौलसिरी) के पेड में ऐसी दोलाओ

देखना चाहते थे, पर शिरीष भी क्या बुरा है। डाल इसकी अपेक्षाकृत कमजोर जरूर होती है, पर उसमे झूलनेवालियों का वजन भी तो बहुत ज्यादा नही होता। कवियों की यही तो बुरी आदत है कि वजन का एकदम ख्याल नही करते। मैं तुन्दिल नरपतियो की बात नही कह रहा हूँ, वे चाहे तो लोहे का पेड बनवा लें।

शिरीष का फूल सस्कृत-साहित्य मे बहुत कोमल माना गया है। मेरा अनुमान है कि कालिदास ने यह बात शुरू-शुरू मे प्रचारित की होगी। उनका कुछ इस पुष्प पर पक्षपात था (मेरा भी है)। कह गये हैं, शिरीष पुष्प केवल भौंरो के पदो का कोमल दबाव सहन कर सकता है—पक्षियो का बिलकुल नही। अब मैं इतने बडे कवि की बात का विरोध कैसे करूँ? सिर्फ विरोध करने की हिम्मत न होती तो भी कुछ कम बुरा नही था, यहाँ तो इच्छा भी नही है। खैर, मैं दूसरी बात कह रहा था। शिरीष के फूलो की कोमलता देखकर परवर्ती कवियो ने समझा कि उनका सब-कुछ कोमल है! यह भूल है। इसके फूल इतने मजबूत होते है कि नये फूलों के निकल आने पर भी स्थान नही छोड्ते। जब तक नये फूल-पत्ते मिलकर धकियाकर उन्हे बाहर नही कर देते तब तक वे डटे रहते हैं। वसत के आगमन के समय जब सारी वनस्थली पुष्प-पत्र से मर्मरित होती रहती है, शिरीष के पुराने फूल बुरी तरह खड-खडाते रहते हैं। मुझे इनको देखकर उन नेताओं की बात याद आती है जो किसी प्रकार जमाने का रुख नही पहचानते और जब तक नयी पौध के लोग उन्हे धक्का मारकर निकाल नही देते तब तक जमे रहते हैं।

मैं सोचता हूँ कि 'पुराने' की यह अधिकार-लिप्सा क्यो नही समय रहते सावधान हो जाती? जरा और मृत्यु—ये दोनों ही जगत् के अति परिचित और अति प्रामाणिक सत्य हैं। तुलसीदास ने अफसोस के साथ इनकी सचाई पर मुहर लगायी थी—'धरा को प्रमाण यही तुलसी, जो फरा सो झरा जो बरा सो बुताना!' मैं शिरीष के फूलों को देखकर कहता हूँ कि क्यो नही फलते ही समझ लेते बाबा, कि झडना निश्चित है। सुनता कौन है! महाकाल देवता सपासप कोडे चला रहे हैं, जीर्ण और दुर्बल झड रहे हैं, जिनमे प्राणकण थोडा भी ऊर्ध्वमुखी है, वे टिक जाते हैं। दुरत प्राणधारा और सर्वव्यापक कालाग्नि का सघर्ष निरतर

चल रहा है। मूर्ख समझते हैं कि जहाँ बने हैं, वहीं देर तक बने रहे तो काल-देवता की आँख बचा जायेंगे। भोले हैं वे। हिलते-डुलते रहो, स्थान बदलते रहो, आगे की ओर मुँह किये रहो तो कोडे की मार से बच भी सकते हो। जमे कि मरे।

कई-एक बार मुझे मालूम होता है कि यह शिरीष एक अद्भुत अवधूत है। दुख हो या सुख, वह हार नहीं मानता। न ऊधो का लेना, न माधो का देना। जब धरती और आसमान जलते रहते हैं तब भी यह हज़रत न जाने कहाँ से अपने लिए रस खींचते रहते हैं। मौज मे आठो याम मस्त रहते हैं। एक वनस्पति-शास्त्री ने मुझे बताया है कि यह उस श्रेणी का पेड है जो वायु-मडल से अपना रस खींचता है। ज़रूर खींचता होगा, नहीं तो भयकर लू के समय इतने कोमल ततुजाल और ऐसे सुकुमार केसर को कैसे उगा सकता था। अवधूतो के मुँह से ही ससार की सबसे सरस रचनाएँ निकली हैं। कबीर बहुत-कुछ इस शिरीष के समान ही थे, मस्त और बेपरवाह, पर सरस और मादक। कालिदास भी ज़रूर अनासक्त योगी रहे होंगे। शिरीष के फूल फक्कडाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और मेघदूत का काव्य उसी प्रकार के अनासक्त अनाविल उन्मुक्त हृदय मे उमड सकता है। जो कवि अनासक्त नही रह सका, जो फक्कड नही बन सका, जो किये-कराये का लेखा-जोखा मिलाने मे उलझ गया, वह भी क्या कवि है? कहते है कर्णाट-राज की प्रिया विज्जिकादेवी ने गर्वपूर्वक कहा था कि एक कवि ब्रह्मा थे, दूसरे वाल्मीकि और तीसरे व्यास। एक ने वेदो को दिया, दूसरे ने रामायण को और तीसरे ने महाभारत को। इनके अतिरिक्त और कोई यदि कवि होने का दावा करे तो मैं कर्णाट राज की प्यारी रानी उसके सिर पर अपना बायाँ चरण रखती हूँ ('तेषा मूर्ध्नि ददामि वामचरण कर्णाट-राजप्रिया')। मैं जानता हूँ कि इस उपालभ से दुनिया का कोई कवि हारा नही है पर इसका मतलब यह नही कि कोई लजाये नही तो उसे डाँटा भी न जाये। मैं कहता हूँ कि कवि बनना है मेरे दोस्तो, तो फक्कड बनो। शिरीष की मस्ती की ओर देखो। लेकिन अनुभव ने मुझे बताया है कि कोई किसी की सुनता नही, मरने दो।

मैं तो मुग्ध और विस्मय विमूढ होकर कालिदास के एक-एक श्लोक

को देखकर हैरान हो जाता हूँ। अब इस शिरीष के फूल का ही एक उदाहरण लीजिए। शकुतला बहुत सुदर थी। सुदर क्या होने से कोई हो जाता है? देखना चाहिए कि कितने सुदर हृदय से वह सौंदर्य डुबकी लगाकर निकला है। शकुतला कालिदास के हृदय से निकली थी। विधाता की ओर से कोई कार्पण्य नहीं था, कवि की ओर से भी नहीं। राजा दुष्यत भी अच्छे भले प्रेमी थे। उन्होंने शकुतला का एक चित्र बनाया था, लेकिन रह-रहकर उनका मन खीझ उठता था। उहूँ, कहीं-न-कहीं कुछ छूट गया है। बडी देर के बाद समझ मे आया कि शकुतला के कानो मे वे उस शिरीष-पुष्प को देना भूल गये है, जिसके केसर गडस्थल तक लटके हुए थे, और रह गया है शरच्चद्र की किरणो के समान कोमल और शुभ्र मृणाल का हार।

कालिदास सौंदर्य के बाह्य आवरण को भेदकर उसके भीतर तक पहुँच सकते थे, दु ख हो कि सुख, वे अपना भाव-रस उस अनासक्त कृषीवल की भाँति खीच लेते थे जो निर्दलित इक्षुदण्ड से रस निकाल लेता है। कालिदास महान् थे, क्योकि वे अनासक्त रह सके थे। कुछ इसी श्रेणी की अनासक्ति आधुनिक हिंदी के कवि सुमित्रानदन पत मे भी है। कविवर रवीद्रनाथ मे यह अनासक्ति थी। एक जगह उन्होंने लिखा है—"राजोद्यान का सिंहद्वार कितना ही अभ्रभेदी क्यो न हो, उसकी शिल्पकला कितनी ही सुदर क्यो न हो, वह यह नही कहता कि हममे आकर ही सारा रास्ता समाप्त हो गया। असल गतव्य स्थान उसे अतिक्रम करने के बाद ही है। यही बताना उसका कर्तव्य है।" फूल हो या पेड, वह अपने-आपमे समाप्त नही है। वह किसी अन्य वस्तु को दिखाने के लिए उठी हुई अँगुली है, एक इशारा है।

शिरीष-तरु सचमुच पक्के अवधूत की भाँति मेरे मन मे ऐसी तरगें जगा देता है जो ऊपर की ओर उठती रहती हैं। इस चिलकती धूप मे इतना सरस वह कैसे बना रहता है? क्या ये बाह्य परिवर्तन—धूप, वर्षा, आँधी, लू—अपने-आपमे सत्य नही हैं? हमारे देश के ऊपर से जो यह मार-काट, अग्नि-दाह, लूट-पाट, खून-खच्चर का बवडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है? शिरीष रह सका है। अपने देश का एक बूढा रह सका था। क्यो? मेरा मन पूछता है कि ऐसा

क्यों संभव हुआ ? क्योंकि शिरीष भी अवधूत है और अपने देश का वह बूढ़ा भी अवधूत था। शिरीष वायुमंडल से रस खींचकर ही इतना कोमल और इतना कठोर है। गांधी भी वायुमंडल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर हो सका था। मैं जब-जब शिरीष की ओर देखता हूँ तब-तब हूक उठती है—हाय, वह अवधूत आज कहाँ है ?

प्रभुत्व-ज्वर अस्पताल

विद्यानिवास मिश्र

सचमुच जिसे संयोग कहते हैं वह बड़ा विचित्र होता है। इसी संयोग के नाते सच कभी-कभी झूठ से भी अधिक अजनबी बनकर हमारे सामने आ जाता है। राजाजी ने जब अंग्रेजी के हिमायतियों की कॉन्फ्रेंस अंग्रेजों की पहली राजधानी कलकत्ता मे बुलायी तो उन्हें क्या पता था कि उसी समय उसी नगर मे उन्माद रोग के विशेषज्ञों की भी कॉन्फ्रेंस होगी और यदि होगी भी तो दोनों की रिपोर्टें एक साथ अखबारों में छपेंगी। एक में यह कहा जायेगा कि अंग्रेजी को भारत की राजभाषा माननेवाले लोग पागल हैं और दूसरे में इस पर दुःख प्रकट किया जायेगा कि देश की बढ़ती हुई नये पागलो की संख्या के अनुपात मे उनकी चिकित्सा की व्यवस्था नही है। इसी तरह, पता नहीं हैदराबाद मे पहले मिनिस्टरों के बँगले बने या उसी जगह पहले प्रभुत्व-ज्वर अस्पताल खुला, पर दोनों का सुखद संयोग सच होते हुए भी नानी की कहानी की तरह दिलचस्प है। मैंने जब यह साइनबोर्ड पढ़ा तो मुझे लगा कि भारत-भर मे यदि कहीं सूझ-बूझ के लोग मंत्रि-पद पर हैं तो आंध्र में, उन्हें अपने रोग की भी सही परख है और उस रोग से मुक्ति पाने के लिए उन्हें ऐसी चिंता है कि बिलकुल अपने ही मुहल्ले मे उन्होने रोग का अस्पताल खोल रखा है। वैसे उत्तर प्रदेश मे भी आध्यात्मिक स्तर पर इस ज्वर की चिकित्सा के लिए जो नयी बस्ती मंत्रियों के पड़ोस मे बसायी गयी है उसका नामकरण है गौतमपल्ली। गौतम बुद्ध, सुना जाता है, बहुत बड़े भिषग् हुए हैं, जिन्होंने अपना जीवन ही भव-रोग के रोगियों की परिचर्या मे बिताया है। उत्तर प्रदेश में शायद भौतिक स्तर के रोग नहीं होते—भगवान् के अवतारों का प्रदेश है, यहाँ रोग भी ऊँचे किस्म के होते हैं!

मैंने प्रभुत्व-ज्वर अस्पताल के भीतर जाकर पता लगाने की कोशिश की तो पता चला कि यहाँ संक्रामक ज्वरों की चिकित्सा की जाती है और रोग का प्रसार रोकने के लिए रोगी को चिकित्सालय मे एक तरह से रहने के लिए विवश कर दिया जाता है। सही बात है, प्रभुत्व का ज्वर बहुत संक्रामक होता है और संक्रमण में वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही

चला जाता है। मत्री से अधिक ज्वर उनके निजी सहायक को, उनके निजी सहायक से अधिक ज्वर उनके चपरासी को, उनके चपरासी से अधिक तीव्र ज्वर उनके फर्राश को। इसी तरह सीढी-दर-सीढी नीचे उतरते जाइए पहले साहब को अगर १० और ११ के बीच से ज्वर चढता है तो बडे बाबू को १० बजे से साढे ५ बजे तक ज्वर चढा रहता है। ऑफिस के मेरे एक मित्र को यह ज्वर कभी-कभी २४ घटे चढा रहता था और वे अपनी पत्नी को भी, जब वे एकाध दिन के लिए अपने मायके जाने के लिए कहती तो निर्दिष्ट प्रकार के आवेदन-पत्र पर छुट्टी के अधिकार के ठीक ठीक विवरण और प्रमाण के साथ प्रार्थना के लिए कहते। उनकी दफ्तरी भाषा को बेचारी पत्नी क्या समझ पाती, हाँ दो-तीन बार इस प्रकार के व्यवहार से आतकित होकर उन्होंने मुझ जैसे दो-चार अपने पति के हितैषियो से एकात मे सलाह जरूर ली कि कही कुछ हो तो नही गया है उन्हे, सुबह शाम ब्राह्मी देने की आवश्यकता तो नही है? मैंने उन्हें तब बताया था कि यह एक किस्म का प्रभुत्व ज्वर है जिसकी दवा सिवाय आपके प्रभुत्व के और कुछ नही हो सकती। मेरी नेक सलाह मानकर उन्होने एक दो बार ऑडिटर पति को कसा तो उनकी हेकडी भूल गयी और वे अपना खुमार अपने सहकारियो पर ही अधिक उतारने लगे।

हिंदुस्तान मे प्रभुत्व-ज्वर बडी तेजी से फैल रहा है। हो सकता है कुछ दक्षिण पवन का प्रभाव हो, या जर्सी सस्कृति के स्तन्यपान का स्वाभाविक परिणाम हो, या नयी स्वाधीनता के साथ 'क्रॉस' करके तैयार की गयी पुरानी नौकरशाही की कलम के मदमाते फलो का आलस लानेवाला नशा हो। जो कुछ भी कारण हो, प्रभुत्व-ज्वर बढ़ती पर है। बडी मुश्किल तो यह है कि जिसे एक बार यह ज्वर हो जाये, फिर वह बिलकुल बेकार-सा हो जाता है। न केवल वह जिंदगी के भाति-भाँति के रगो के प्रति अधा और सरगम के विविध स्वरो के प्रति बहरा हो जाता है बल्कि हरएक माने म वह गतिहीन, भावहीन और प्राणहीन हो जाता है, सिवाय इसके कि उसकी चेतना ज्वर के प्रभाव मे जिस नये ससार की रचना कर लेती है उस ससार को और विस्तार देने म वह और जागरूक हो जाता है। उस ससार मे केवल एक ही सीमित

सत्य है शक्ति को आत्म-समर्पण से पाना; उस ससार की एक ही क्रिया है : क्रिया का निषेध । जितना ही जो क्रिया से बचता है उतना ही वह अधिक सक्रिय कहा जाता है, और जितना ही जो काम बढ़ाता जाता है उतना ही अधिक कामचोर वह गिना जाता है। उस ससार मे एक ही सुख है : अपने अधीनस्थ लोगो के प्राणसूत्र उँगलियो मे बाँध रखने की तृप्ति । उस ससार मे एक ही स्थिति है : कुरसी, और एक ही गति है : मेज । कुरसी की सलामती और मेज पर से कागजो का हटाना, इसी मर्नोर्ती मे प्रभुत्व-ज्वर के रोगी की उम्र सिरा जाती है । उस ससार मे मजिलें तो अनेक हैं, पर रास्ता एक भी नही । कैसे लोग इन मजिलो पर पहुँचते हैं, यही एक रहस्य है । कौन-सी कमान, कौन-सी रेशम डोरी, कौन-सा रज्जुसर्प, कौन-सी बल्लावुदान, एकदम मजिल पर पहुँचा देती है—इसका पता न तो मजिल पर पहुँचनेवालो को होता है और न मजिल के लिए कोशिश करनेवालो को । यहाँ की भाषा मे केवल एक ही पुरुष है, एक ही वचन है, और एक ही लिंग । पुरुष केवल अन्य; लिंग केवल, न स्त्री न पुरुष, सामान्य, और वचन, न एक न द्वि, केवल बहु । इस ससार मे उत्तम पुरुष, एक वचन और पुल्लिंग के व्यवहार के ऊपर प्रतिबध है, इसीलिए दर्द कही होता है, पीर कही और होती है, गलती कोई करता है, सजा कोई और पाता है । काम कोई करता है, श्रेय कोई और पाता है । इस ससार मे सबसे महँगा है अहकार और सबसे सस्ती सद्भावना । एक तरह से कहा जाये तो इस ससार का हरएक रास्ता सद्भावनाओ की ककरीट की कुटाई से बना है । इस ससार मे आदमी अपना सब-कुछ देकर केवल भार लेता है, पर इस भार से उसे ऐसा मोह होता है कि इसे उतारने मे जब तक कि और भी वजनदार भार उसके कधे पर पहले से रख न दिया जाये, उसे प्राणातक कष्ट होता है। ऐसे विचित्र ससार मे रहते-रहते मनुष्य पराया हो ही जाता है । कहने को उसकी दृष्टि वस्तुनिष्ठ हो जाती है पर सही बात है कि उसमे आत्मा ही नहीं रहती, आत्मनिष्ठता कहाँ से आयेगी ? जितना ही अधिक जो पराया होता है उतना ही अधिक उसके दूसरे साथियो को उसके भाग्य से स्पृहा होती है । यह जरूर है कि कवि की दुनिया, प्रेमी की दुनिया, साधक की दुनिया और पागल की दुनिया से इस दुनिया का फैलाव अधिक जीवन-

व्यापी होता है, इसीलिए वे सभी आणिक मूल्य रखती हैं, जब कि इस दुनिया का शाश्वत मूल्य है। साहित्य-शास्त्र की भाषा में कहें तो 'क्लासिक' मूल्य है।

पर केवल संसार-रचना ही इस ज्वर का कार्य नहीं है। यह ज्वर मन में सक्रिय होने के पहले तन और वचन में सक्रिय होता है। सबसे पहले बोली बदलती है। जब मरहठों ने उत्तर भारत पर आधिपत्य जमाया तो उत्तर भारत के प्रभुताग्रस्तों की बोली बदली और तभी शायद यह मुहावरा हिंदी में आया कि 'देशी कौआ मरहठी बोल'। हिंदुस्तान में तो यह बोली बिलकुल बदल गयी है और प्रभुता का ज्वर जिनके ऊपर बहुत अधिक चढ़ा हुआ है वे यह भूल गये हैं कि उनकी बोली कभी कुछ दूसरी थी और अभी भी ज्वरमुक्तों की बोली दूसरी ही है। उन्हें यह आशंका हो गयी है कि बोली तजते ही उनकी रोगी की सत्ता समाप्त हो जायेगी। देशी बोली में चाय पीना भी उनके लिए दुश्वार है। उनके लड़के देशी बोली के मुक्त वातावरण से दूर रखे जाते हैं, ताकि घर में विरस वातावरण न उपस्थित हो। मेरे एक रोगी मित्र को हिंदी से सबसे बड़ी शिकायत यही थी कि और तो ठीक है पर 'ऐट-होम' का निमंत्रण हिंदी में कैसे छपवाया जा सकता है। अंग्रेजी मुहावरे के बिना थोड़ी देर के लिए आप चाय भी पी लें, पर डिनर तो बिलकुल बदमजा हो जाता है। मैं ऐसे लोगों को क्या जवाब दूं। हां, मन में यह जरूर समझता हूं कि यदि हमें इन रोगियों से अधिक इनके रोगों की रक्षा करनी है तो इनके 'डिनर' को बदमजा नहीं होने देना है। डिनर का मजा बरक़रार रहे, बोलियां तो बनती-बिगड़ती रहती ही हैं! नये भाषा-विज्ञान का तो यह पहला उसूल है कि भाषा मनुष्य के वाग्यंत्र पर आरोपित व्यापार है, उसका सहजात व्यापार नहीं। इसीलिए इस ज्वर का रोगी चूंकि एक बहुत सीमित दायरे में रहता है और उसके आंख-कान धीरे-धीरे एक ऐसी अजनबी भाषा में सधते चले जाते हैं कि इस भाषा के बाहर से संसार का भी अस्तित्व नहीं दिखाई देता, वह धीरे-धीरे इस आत्म-सम्मोहन का शिकार हो जाता है कि यदि सचमुच प्रभुता या अपना अस्तित्व कायम रखना है तो उसे प्रभुता के लपेटवाली भाषा भी क़ायम रखनी होगी। इसीलिए बाहरी दबाव के कारण जब स्वस्थ लोगों की

भाषा को अपनाने पर बल दिया गया तो इन रोगियों के सामने समस्या खड़ी हो गयी कि इसका मुकाबिला कैसे किया जाये। इन्होंने खूब सोच-समझकर यह चाल सामने रखी कि प्रभुता की भाषा के जितने भी छल हो सकते हैं उनके लिए आप तथाकथित जनभाषा के प्रतिशब्द दें, और यह चाल काम कर गयी। लोग हिंदी में अंग्रेजी की वाक्य-रचना करने लगे, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह हिंदी भी अंग्रेजी पढ़े-लिखों की भाषा हो गयी। कौन समझाये कि एक भाषा दूसरी भाषा की नजर से जब देखने लगती है तो उसकी सूरत ही बिगड़ जाती है। शायद जनता की भाषा में सोचने-समझने की प्रवृत्ति प्रभुता के बहुत-से विकारों को अपने-आप समाप्त कर देती या दुराव के बहुत-से छल-छंदों को अपनी सिधाई में बिलकुल भूल जाती। बहुत-से नियम जो सिर्फ किसी भी काम को घुमावदार बनाने के लिए बनाये जाते हैं, अपने-आप बेकार हो जाते यदि उन नियमों के अनुरूप पेचीदी भाषा नहीं रखी जाती।

बोली से अधिक लिखी जानेवाली भाषा का महत्त्व है, और इन दोनों में सामंजस्य न रखना ही प्रभुता की खास निशानी है। बोलते समय जनतांत्रिक, पर लिखते समय सामंतशाही हो जाना बहुत जरूरी हो जाता है। इस असामंजस्य का प्रभाव बहुत जल्दी ही शरीर पर पड़ने लगता है। अपने से ऊँचे अधिकारी के सामने शरीर का ऊपरी हिस्सा नीचे के हिस्से से ४५ अंश का कोण बना लेगा और अपने से नीचे के अधिकारी के सामने कुरसी पर १३५ का। वही लोग जो कि जाति-बिरादरी, पारिवारिक संबंध, गुरु शिष्य संबंध के आधार पर छोटे बड़े के भेद की आलोचना करते हैं, वे ही नौकरी के स्तर पर छोटे-बड़े के भेद पर विशेष बल देते हैं। जिन्हें अपने बाप का पैर छूने में हिचक होती है वे अपने अफसर के या मंत्री के पैर छूने का अवसर पाने में ही अपने को बहुत गौरवान्वित मानते हैं — यहाँ तक कि होली-जैसे त्योहार के दिन, जब कि रूढ़िवादी से रूढ़िवादी भी छोटे-बड़े का भेद भूलकर बराबरी की सतह पर एक-दूसरे से गले मिलता है, हमारे ये प्रभुताग्रस्त बंधु अपने बड़े अफसरों के पैर छूने की होड़ लगा देते हैं। मजा तो यह है कि जो झुकता है और जिसके सामने झुका जाता है, दोनों ही इस झुकाव का असली मर्म समझते हैं, पर दोनों की आदतें धीरे-धीरे ऐसी बन गयी हैं कि बिना

झुके और बिना झुकवाये उन्हे रस मे कुछ कमी-सी महसूस होती है।

लेकिन इस नमनशीलता से किसी को यह धोखा नही होना चाहिए कि प्रभुता का ज्वर सचमुच ही देह मे लचीलापन लानेवाला होता है। वस्तुत नमनशीलता भी स्नायु-ग्रंथियो का एक विशिष्ट प्रकार का तनाव है, जो अपने से अधिक तनाववाले शरीर के समुख यदि ढीली न पडें तो टूट जायें। वैसे हाथ-पैर इस ज्वर मे ऐसे कडे हो जाते है कि एक हाथ के फासले पर भी रखी हुई चीज़ हटाने की सामर्थ्य नही रह जाती है और १० गज की दूरी भी सवारी के लिए विवश कर देती है। निश्चेष्टता की यह स्थिति जब पराकाष्ठा को पहुँच जाये तो समझना चाहिए, रोग असाध्य है। मुझे एक घटना मालूम है कि एक जेल के अधिकारी ने उस जेल से एक डाकू के भाग जाने के बाद यह रिपोर्ट लिखी थी कि मेरे पास इसके सिवा कोई चारा नही था कि मैं दवात मे कलम बोरूँ और मुख्य कार्यालय को पत्र लिखूँ कि कैदी फरार हो गया और मैंने अपना कर्तव्य निभाया। सो कलम-नवीसी कर्तव्य-निर्वाह की जहाँ एकमात्र साधन हो वहाँ शारीरिक चेष्टा पगु न हो जाये तो क्या हो ? हाँ, रसना की चेष्टा जरूर बहुत बढ जाती है। चाय, लच, डिनर, बुफे (वृषभ-शैली का भोज), प्रीतिभोज आदि विविध प्रकार के आयोजनो मे प्रतिदिन विविध प्रकार के रसो के प्रति ग्रहणशील होने के कारण रसना बडी तेज हो जाती है। यही नही, कभी-कभी इन भोजो से अधिक मधुर और सभी प्रकार के पेयो से अधिक मदिर स्वाद वाले प्रभुपद-पल्लवो के रसास्वादन मे जो तृप्ति मिलती है वह रसना को सबसे अधिक स्फूर्ति प्रदान करती है। यह तो रसना के द्वारा आदान का विस्तार हुआ। प्रदान मे वह कम विशद नही होती। रीति-नीति की भीतरी से भीतरी सिलवटो को उधेडने से लेकर अभिधा की स्थूल से स्थूल मात्रा देने मे रसना उदार हो जाती है। लगता यह है कि इस ज्वर का प्रभाव सबसे अधिक दायें हाथ की उँगलियो पर और रसना पर होता है।

यह तो रोग के सामान्य लक्षण की बात हुई। जब मैंने अस्पताल मे जाँचा इस रोग का उपचार क्या है, तो मुझे पता चला कि यह रोग दो प्रकार का है : एक स्थायी, एक अस्थायी। लोकसेवा आयोग के द्वारा चाहे गये रोगी स्थायी रोग के शिकार होते हैं और लोकमतायोग के

द्वारा चुने गये अस्थायी रोग के शिकार होते हैं। अस्पताल मे चिकित्सा केवल अस्थायी रोगियो की होती है, स्थायी रोगी तो अपने रोग के प्रति इतने अधिक आसक्त हो जाते हैं कि इलाज कराने से ही वे विद्रोह करते हैं और कोशिश यह करते हैं कि उनकी बदकिस्मती से जो उनके सिर पर अस्थायी रोगी आ गये हैं वे उनको भी अपनी छूत से स्थायी बना डालें। अस्थायी रोगियो की मुसीबत यह है कि उन्हे अपने मरीज परिचारकों की सावधानी के बावजूद भी कभी न कभी चगे लोगो के बीच गुजरना हो पडता है, उस समय उनका बुखार एक-दो स्वस्थ हवा के झोंको से अपने आप उतर जाता है। कभी कभी लोकसभाओ मे, लोकसभाओ के शानदार भवनो मे, देहाती वैद्यो की अजवाइन की धुकनी से उन्हे जब स्वेदन कराया जाता है तो बुखार कुछ हल्का हो जाता है। कभी-कभी हजार-हजार ज्वरोत्तेजक पदार्थों के सेवन के बीच मजलिसो मे एकाध बोहम प्राकृतिक चिकित्सक ऐसे भी पहुँच जाते हैं जो जबरदस्ती उनके सिर और छाती पर मिट्टी का लेप कर देते हैं। उससे भी उनको क्षणिक राहत मिल जाती है, पर यह राहत तभी मिलती है जब कि उनके दायें बायें कोई स्थायी रोगी न हो। स्थायी रोगी न हो यह तभी सभव होता है जब कि वे बिलकुल ही असावधान हो जायें। चाहे सारी दुनिया असावधान क्यो न हो, वे अपने रोग के पालने से कभी भी असावधान नही होते। इसीलिए बिरले ही ऐसे स्थायी रोगी मिलेंगे जो रोग की अवधि के बीच म स्वास्थ्य के क्षण प्राप्त कर सकें। तब सवाल यह है कि अस्पताल क्यो खुला ? और हैदराबाद म क्यो खुला ? दक्षिण की दिल्ली मे क्यो खुला ? समूचे भारत की दिल्ली में क्यो नही खुला ? अस्थायी रोगियो के लिए क्यो खुला ? स्थायी रोगियो के लिए क्यो नही खुला ?—इन सवालो का जवाब देना बडा मुश्किल है। अस्पताल खुला, यही बहुत है। पुराने रोगी अच्छे हो न हों, नये रोगियो के लिए उनके अभिभावक को एक छुटकारे का भरोसा तो हो गया। रोग के कीटाणुओ से जब हवा के भी हवास गुम हो तो छोटी-सी चदन की पखी से की गयी हवा भी बहुत बडा त्राण देती है। यह अस्पताल चाहे सरकार की गलती से ही क्यो न खुला हो और चाहे गलती से ही इसका सही नाम दे दिया गया हो, चाहे इस नाम के बावजूद भी यहाँ चिकित्सा

की कोई भी व्यवस्था न हो, पर यह सही है कि मात्र यह नाम जन-मन को बहुत दिलासा देता है, क्योंकि रोग से अधिक लोग रोगियो से परेशान हो रहे हैं क्योंकि ये रोगी हरएक खिडकी से झांकने की कोशिश कर रहे हैं हरएक हँसी खुशी की चाँदनी मे बादलो की घटा बनकर छाने लगे हैं, और हरएक शिल्प और हर एक रचना पर अपनी मोहर लगाने के लिए व्याकुल हैं। यह अस्पताल खुला इससे बदी पवन को मुक्ति की आशा बँधी, अवगुठन मे कुण्ठित प्रतिभाओ को सूयम्पश्या होने का सपना दिखा राजमाग पर मोटरो की दौड धूप के बीच पैदल चलनेवाले सत्य को निबाध गति से आगे बढने का साहस मिला, अपने ही नारे से बहरी स्वाधीनता को अपने पास ही बहनेवाली जीवन-स्रोतस्विनी के कलकल निनाद की झनक मिली और सूतो तथा मागधो की जय जय-कार से सहमी हुई कल कूकिनी को कठ खोलने की उत्कठा मिली। इस प्रभुत्व ज्वर अस्पताल के पीछे भारत की जन भावना है और इसकी सफलता के लिए हमारी शुभकामनाएँ।

हिप्पियो का 'हैवन'—वाराणसी

शिवप्रसाद सिंह

उलझे हुए बये के खोंते की तरह बाल, कमर के नीचे तक बिलकुल नग्न, ऊपरी भाग मे बेडब मिनी ब्लाउज या लबा फीता जो स्तनो को बाँध सके, काशी की सडको पर चलनेवाली इस नयी तीर्थ यात्री का नाम है 'हिप्पिन'। बनारसवाले पाषाण सभ्यता के दिनो से या यो कहे कैम्ब्रियन युग से यानी जब से त्रिभगी आकार का जानवर जो बाद मे मनुष्य बना, समुद्री दलदल मे रहता था, तब से कभी भी आधुनिक या प्राचीन सभ्यता के आवरण के पूजक नही बने। लाल गाउटी कमर के ऊपर, लाल गाउटी कमर के नीचे, एक पक्क का पान मुँह मे दबाये सारे विश्व को अपनी 'बब-बब' आवाज से धक्का देने के अभिमानी ये बनारसी भी अब हिप्पी या हिप्पिन की पोशाक या पोशाकहीनता से परेशान होने लगे तो सोचना पडा कि कही बनारस बदल तो नही रहा है।

'काशी मे साले हिप्पी-हिप्पिन भर गये हैं, सामान उठाकर देखत हैं, धीरे से पाकेट मे रखकर चल देत हैं।" विश्वनाथ गली के लाला जेठामल गमगीन भाव से कहते हैं।

"काहे को इस कदर बिफरते हो लाला!" बगल से नवयुवक दुकानदार बोलता है—' चार आने की माला गयी। नकली रुद्राक्ष की ही तो थी, बदले मे कितना बडा सतोष मिला।"

' सतोष किस बात का रे, तू सखा हिप्पिन पर आँख लगाये त्राटक साध रहा था। तुझे मिला होगा सतोष वतोष। अपनी तो नाक मे अब भी गाँजे की दुर्गंध भरी है।'

"सतोष का कारण पूछ रहे हो लाला, तो सुनो" नवयुवक बोला—"सबसे बडा कारण यह है कि गोरे भी भिखारी होते हैं। सारी दुनिया मे हिंदुस्तान की जहालत और गरीबी के ये ढँढोरची निक्सन साहब अपने देश के इन लाखो भिखमगो का इतजाम क्यो नही करते? जहाँ जाओ एक-न-एक जोडा फटेहाल घूम रहा है। आखिर अमरीका तो ससार का सबसे बडका देश है, लोग कहते हैं, वहाँ घी-दूध की नदियाँ बहती हैं, फिर वहाँ के ये तलछँट हिंदुस्तान मे क्या करने आ रहे हैं?"

—

"हाँ, हो सकता है कि इसमे थोडा-सा सतोष मिल जायेगा कि हम से भी दरिद्र और लोग हैं, पर भाई, इन सबो की बेहयाई बडी बुरी चीज है। इनकी देखा-देखी, अपने शहर या मुल्क के कहो, लौंडे बुरी तरह शोहदे होते जा रहे हैं।"

उपर्युक्त किस्म की बातचीत आप विश्वनाथ गली के अलावा और भी जगहो म, चायघरो मे, मुहल्लो के नुक्कड पर, पान की दुकानो के सामने सुन सकते है।

लोग-बाग इन विदेशियो को सिर्फ एक नाम से पुकारते हैं, वह है हिप्पी। पर इन लोगो के रहन-सहन के तौर-तरीके, रस्म रिवाज, ध्यान-धारणा और मत-मान्यता का यदि लेखा-जोखा किया जाये तो पता चलेगा कि इसमे अनेक दल हैं, अनेक गुट हैं। प्राचीन भाषा मे कहे तो अनेक सप्रदाय हैं।

हम जिन्हे हिप्पी कहते हैं, वे वस्तुत नाना प्रकार की परिस्थितियो और मान्यताओ के विरोध मे लडते लडते टूटे हुए लोगो के अतर्राष्ट्रीय समुदाय हैं। इन्होने कभी अपनी परिस्थितियो का खुलेआम इजहार नही किया जिनके कारण इन्ह अपना घरबार छोडकर इस तरह उखडे हुए लोगो का जीवन स्वीकार करना पडा। इनमें बहुतेरे अमरीकन हैं जो वियतनाम युद्ध म जबर्दस्ती भरती किये जाने के डर से भागे। अनेक पश्चिमी सभ्यता के दिखावटीपन और व्यक्ति की स्वतत्रता को कुचलने वाली व्यवस्था से विरोध करके भागे हैं। अनेक वहाँ के समाज मे अपने को फिट न कर सकने की मजबूरी के कारण गृह-त्यागी बने।

ये जैसे भी, जिन कारणो से निर्वासित हुए या यो कहिए स्वयकृत निर्वासन को स्वीकार किया, इनके अदर एक विचित्र प्रकार की रहस्यात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता दिखायी देती है। हम हिंदुस्तानियो के लिए 'रहस्य' की बात करना पोगापथी लगता है क्योकि हम परपरा से ईश्वर और उसके इर्द गिर्द विशाल कूडे की तरह जमा सिद्धांतो से इतने आक्रांत रहे हैं कि उस मलबे की चर्चा मात्र ही हमे परेशान करने लगती है। वस्तुत हम आधुनिकता के ढोग से, पश्चिमी सस्कृति के आत्मविश्वास से इतने आक्रात हैं कि विशाल ब्रह्माड को देखने और उसके भीतर विद्यमान अद्भुत रहस्यात्मकता के प्रति सचेत होने को ही अवगुण

मानने लगे हैं। यह एक दूसरे तरह की प्रतिक्रिया है, पर है और इसे जीवन का लक्षण नहीं माना जा सकता। एक बार सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंसटाइन ने कहा था—"जो सर्वाधिक सुंदर और गंभीर भावना हम अनुभव कर सकते हैं वह रहस्य की अनुभूति है। यही सभी यथार्थ विज्ञानों का मूल है। वह व्यक्ति जो इस भावना से अनभिज्ञ है और जो इसके कारण विस्मय और कौतूहल में नहीं पड़ता, मृतक के समान है। वह चीज़ वस्तुतः क्या है, जिसकी थाह हम नहीं पाते और जो अपने में उच्चतम बुद्धिमत्ता और परम सुंदरता को जिसे हमारी इंद्रियाँ उसके मूल स्वरूप में ही ग्रहण कर सकती हैं, समाहित किये हुए है वह ज्ञान, वह अनुभूति ही सच्ची धार्मिकता का केंद्र-बिंदु है। मेरा धर्म इस अनंत शक्ति के प्रति श्रद्धा है।"

आपको आइंसटाइन के इन कथनों की सत्यता पर विश्वास न हो तो कृपा करके लिंकन बार्नेट की पुस्तक 'द यूनिवर्स एंड डॉक्टर आइंसटाइन' का अंतिम अध्याय अवश्य देख लें। आँख नहीं भी खुले तो कोई हर्ज नहीं, आँख खोलकर उसे पढ़ जाने से कोई नुकसान नहीं होगा।

मैं इन हिप्पियों की जिस वृत्ति से सर्वाधिक प्रभावित हुआ, वह है इनकी रहस्य को जानने की अदम्य इच्छा। यह कभी-कभी बड़ा मार्बिड रूप ले लेती है, यह सही है, पर वहाँ विराट् अभीप्सा है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

अस्सी मुहल्ले में एक हिप्पी परिवार है जो रामनामी चादर पहनता-ओढ़ता है। उनका एक चार साल का किशोर बालक है, खूब गुदगुदा, गोलमटोल, आकर्षक। वह पीले रंग की कछनी पहने था। और सिर पर पीले रंग के फीते से मयूरपंख बाँधे था। गोरे चेहरे पर ललाट के बीचोंबीच लगा चंदन का तिलक खूब फब रहा था। वह अपनी हिप्पिन माँ के साथ पान की दुकान पर आया। माँ ने चार पान लगवाये। बड़े-बड़े जगन्नाथी पत्ते, मीठे। लड़के ने दो बीड़े, जो एक छोटे मुँह के लिए काफी भारी थे, होंठों में दबा लिये। उसकी माँ मुसकरायी। लड़के ने हँसने की कोशिश की तो पीली कछनी को दागदार बना लिया। अस्सी के दो-चार हमउम्र लड़कों ने उसे खुदक्का मारा। वह भाग चला।

उसकी माँ उसका हाथ पकड़े सड़क पर चल दी। लड़के हो-हो करके

हँसते रहे। मैं उन माँ-बेटे को उसी तरह मुसकराते हुए सडक पर जाते देखता रहा। 'स्वाँग'—कोई बोला। पर मुझे वहाँ स्वाँग नहीं नजर आया। मुझे सूरदास बुरी तरह झिंझोड रहे थे और मैं मन ही मन दुहरा रहा था :

नटवर रूप अनूप छबीलो सबहिनि के मन भावत।
बदन खोरि काछनी काछे बेनु रसाल बजावत।।

बाँसुरी की बात आ गयी तो काशी हिंदू विश्वविद्यालय के मुख्य तोरण के सम्मुख घटित एक घटना याद आ गयी। वह भी हिप्पी था। खूब स्वस्थ, नौजवान। गले मे नाना रगो के गुरियों की सस्ती मालाएँ पहने था। सफेद खादी का पायजामा और कुरता उसके भरे-भरे गोरे बदन पर खूब सोहते थे। वह हाथ मे बाँस की बाँसुरी लिये था जिसे बेसुरे ढग से बजा रहा था। पीछे-पीछे एक कोडी देशी बच्चे तालियाँ बजा-बजाकर उसे चिढा रहे थे। बच्चे जब बहुत पास आ जाते तो वह बाँसुरी हाथ मे लेकर खडा हो जाता और उनकी ओर मुडकर बदर की तरह खो-खो करता। लडके भागकर पीछे हट जाते। पर उनकी कर-तालिका वैसे ही खनखनाती रहती।

अस्सी के ही एक मित्र ने मुझसे कहा, "आइए, आपसे परिचय कराऊँ।" सामने एक हिप्पी दम्पति खडे थे। उन्हे देखकर हिप्पी ने पैर छुए। मित्र बोले—"ये हैं गार्टन शैव और ये हैं उनकी भैरवी।" लडकी मुसकरायी। मैंने गार्टन को देखा, तो देखता रहा। सुनहले लबे बालो को उसने शिव के जटाजूट की तरह बाँध रखा था। उसके साथ की हिप्पिन लाल रग की साडी पहने थी। मैंने मित्र से पूछा आपसे इनका परिचय कैसे हुआ। बोले—"ये मेरे यहाँ प्रतिदिन सस्कृत पढ़ने आते हैं।"

मुझे तभी गिंसबर्ग की याद आयी जिन्होंने अमरीकी कचहरी मे गाँजे पर से प्रतिबध हटाने की माँग की थी क्योंकि शैव होने के कारण गाँजा पीना उनके धार्मिक जीवन का अग है। हर-हर-बब-बब शकर! क्या बात है! गिंसबर्ग और पीटर बीटनिक हैं, हिप्पी नही। गार्टन हिप्पी हैं, बीटनिक नही, पर दोनो शैव हैं इसमे सदेह नही। कही रामनामी चादर है, मयूरपख है, कही गाँजे की चिलम है, जटाजूट है, कही बाँसुरी है, गले मे मनियाँ हैं, कही हरे रामा हरे कृष्णा दल है, कही

कही कुछ।

मैं इन हिप्पियो पर सोचता हूँ तो एक अजीब किस्म के चक्कर में फँस जाता हूँ। मैंने सोचा कि ये सबके सब दिखावटी व्यवहार मे पटु, चालू किस्म के चट हैं, जो गाँजा पीते हैं, नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं, स्वतत्र कामाचार और यौन-सबध इनके लिए दिनचर्या है, ये सब प्रकार से उठाईगीर, निकम्मे और उरफटू लोग है जो यहाँ आकर हमारी सस्कृति और सभ्यता को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। बनारस विश्व का सबसे पुराना शहर है न, इसीलिए इसके कुछ मुहल्लो मे ऐसी गली-दर-गलियाँ हैं कि वहाँ पुलिस भी नही पहुँच सकती। ऐसी ही गलियो मे पुराने मदिर की सीढियो पर, टूटी हुई दीवालोवाले खडहरो मे, गगाघाट के पास सीढियो की आड मे बने गुदघरो मे ये छिपे रहते हैं। लबा, गदा, दाढीवाला हिप्पी और उसकी बगल मे अधनगी, गोरी पिडलियाँ झलकाती मचक-मचककर चलती हिप्पिन युगल-यात्रा ऐसे ही चलती रहती है कि एक दिन लोग देखते हैं कि हिप्पिन की गोद मे एक बालक आ गया है। मैं पूछता हूँ और जानना चाहता हूँ कि बालक आने के बाद ये वैष्णव होते हैं या पहले। कही ऐसा तो नही कि शैव और वैष्णव के बीच मे बालक ही विभाजक रेखा बन जाता है?

हरे कृष्णा, बब-बब शकर, रविशकर के सितारिये, तत्र के प्रेमी, औघड और महेश योगी के चेले बीटल्स और बीटनिक्स और स्मगलर्स और स्पाईज जाने कितने गिरोह हैं, कितने सप्रदाय हैं, कितने टैबूज हैं, कितने टोटके हैं, कितने चोले हैं, कितने टोले हैं। कोई कहता है कि हिप्पिनें पढनेवाले नौजवान छोकरो को फुसलाती हैं और पैसे लूटती हैं, कोई कहता है कि मरभुखे हैं, सडी-गली चीजो पर भी टूट पडते हैं और कितनी बार तो बिना पैसे दिये भाग खडे होते हैं।

प्रधानमत्री ने इनकी प्रशसा मे दो वाक्य कह दिये तो कुहराम मच गया।

अस्सी चौराहे पर एक हिप्पी प्रधानमत्री को भला-बुरा कह रहा था। दो-चार नौजवानों ने टोका तो और गर्माया और अमरीका के गेहूँ पर पलनेवाले हिंदुस्तानियो को ललकार उठा। नतीजा यह हुआ कि भीड बढ गयी। खासी भीड। उन दो-चार नौजवानो और हिप्पी को घेर

कर भीड यों खडी थी कि जैसे आज ही क्ले (मुहम्मद अली) और फ्रेजर की मुक्केबाजी की चैंपियनशिप का फैसला होने को है। हिप्पी तना हुआ था, नौजवान भी अकडे थे कि दोनों ओर से घूंसेबाजी शुरू हो गयी। मानना पडेगा कि हिप्पी ज्यादा सधा मुक्केबाज था। भीड में से दो-चार और आ गये तब कहीं वह जमीन पर गिरा। गिरते ही चिल्लाया, 'पुलिस, पुलिस।' उसको गिरा देख भीड छँटने लगी। चौराहे पर एक पुलिसवाला खडा था। हिप्पी चिल्लाये जा रहा था—'पुलिस, पुलिस।'

पुलिसवाले को याद पडा कि कहीं से गद्दारी हुई है। वह सीधे पट्ट पडे हिप्पी के पास पहुँचा, उसे देखकर हिप्पी ने साहस के साथ कहा—'पुलिस' और उठने की कोशिश की। पुलिसवाले ने दो डडे उसकी जाँघों पर जड दिये। "साले, गाली दो प्राइम मिनिस्टर को—चलो थाने।" हिप्पी पुलिसवाले की यह न्यायप्रिय मुद्रा देखकर झटके से उठा और गगा नदी की ओर भाग चला। लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये।

दुर्गा मदिर के सामने पानवाले ने मेरे सामने एक मोटा-सा लिफाफा रख दिया। मैंने उलट-पुलटकर देखा। लिफाफा अमरीका से आया था। उस पर कैलिफोर्निया की मुहर भी थी। लिफाफा खुला था। बुकपोस्ट। भीतर एक पुलिंदा था। काफी बारीक साइक्लोस्टाइल लिखावट में ढेर-सी इबारत थी। पता लिखा था—दुर्गा टेंपल, वाराणसी, इंडिया। मैंने पढ़ना शुरू किया। आरंभिक अंश का हिंदी तर्जुमा कुछ इस कदर होगा—"नमस्ते देवि दुर्गे, तू सकल पृथिवी की नियता है, माँ है, सहारिणी है, काली है, तू चडी है, चडमुड का वध करने वाली है, असुर-विनाशिनी है, तू आईसिस है, मिस्र की देवी है तू देमेतेर और मेडोना है, तू रास सामरा है, तू ईस्तर है, तू सेरेस है जिसके हाथों में जीवों के जीवन के लिए जौ की बालियाँ हैं, माँ दुर्गे, तू तारा है, बुद्ध शासन की देवी है, तू जैन देवी पद्मावती है, तू फारचूना है ....।"

मैं चकरा गया, अभी तक शैव, वैष्णव, औघड, अवधूत यहीं दिखायी पडे थे। यह शाक्त भी आ गया। मैंने वह लिफ़ाफ़ा ले लिया और मैं सुनिश्चित भाव से पढ़ने लगा। मुझे लगा कि यह कोई ... है जो मदाम ब्लेवातस्की के 'आइसिस अन्वेल्ड' से लेकर

एरिक न्यूमन के 'गॉड-मदर आर्केटाइप' तक की विकास परंपरा का पूरा हिसाब जानता है, जिसके कानों में निवेदिता की 'काली : द मदर' की पंक्तियाँ गूँजती रहती हैं। कितनी मेहनत के साथ उसने आद्या जीवनी शक्ति के रहस्यों को जानने की इतनी विशाल कोशिश की है। मेरा मन सुदूर कैलिफ़ोर्निया में बैठे उस अमरीकी के प्रति श्रद्धा से भर गया, जिसने अपनी महीनों की मेहनत से लिखी इस 'नूतन शक्ति स्तोत्र-रत्नावली' को विश्व के मातृ मंदिरों के नाम अर्पित किया। नीचे कहीं कोई नाम नहीं था। मुझे नहीं मालूम कि वह अमरीकी 'फ्लावर जेनरेशन' से संबद्ध है या 'पॉप जेनरेशन' से। मुझे नहीं मालूम वह हिप्पी है कि बीटनिक, पर मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि उसके इस प्रयत्न को स्वाँग नहीं कहा जा सकता। उसके पास साधनों का अभाव हो सकता है, वह जॉन वुडरफ नहीं बन सकता, परंतु उसकी निष्ठा में संदेह करना अनुचित ही नहीं, अपराध होगा।

मुझे हिप्पियों से सहानुभूति नहीं है। क्यों ? यह पूछने की जरूरत नहीं। नहीं है बस। पर मैं उनके भीतर विद्यमान रहस्य को जानने की अबाध अभीप्सा से बहुत प्रभावित हूँ। कितने हैं हमारे यहाँ ऐसे लोग जो घर-परिवार की सुख-सुविधा छोड़कर अपने को निर्वासित कर लें ? कितने हैं ऐसे लोग जो अपने शरीर की अदरूनी शक्तियों का अनुभव करने के लिए मारक नशीली दवाओं का अपने ऊपर ही प्रयोग करें ? कितने हैं ऐसे लोग जो अपनी सभ्यता और संस्कृति को मुमूर्षु देखकर एक नयी जीवंत संस्कृति की खोज में इस तरह दर-दर की ठोकरें खाते फिरें?

आप कहेंगे कि यह गलीज़ को महान् बनाने की मिथ्या कोशिश है। जो हो, बुराई के भीतर छिपी अच्छाई से आँख मूँद लेना भविष्यत् मानवता की आचार संहिता को स्वीकार्य नहीं होगा। आप इस पर खुले मन से सोचें, बस।

ठिठुरता हुआ गणतंत्र
हरिशंकर परसाई

चार बार मैं गणतन्त्र दिवस का जलसा दिल्ली मे देख चुका हूँ। पाँचवीं बार देखने का साहस नही। आखिर यह क्या बात है कि हर बार जब मैं गणतन्त्र समारोह देखता, तब मौसम बडा क्रूर रहता। २६ जनवरी के पहले ऊपर बर्फ पड जाती है। शीत-लहर आती है, बादल छा जाते हैं, बूंदाबांदी होती है और सूर्य छिप जाता है। जैसे दिल्ली की अपनी अर्थनीति नही है, वैसे ही अपना मौसम भी नही है। अर्थनीति जैसे डालर, पौंड, रुपया, अतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष या भारत सहायता क्लब से तय होती है, वैसे ही दिल्ली का मौसम कश्मीर, सिक्किम, राजस्थान आदि तय करते हैं।

इतना बेवकूफ भी नही हूँ कि मान लूं, जिस साल मैं समारोह देखता हूँ, उसी साल ऐसा मौसम रहता है। हर साल देखनेवाले बताते हैं कि हर गणतन्त्र दिवस पर मौसम ऐसा ही धूपहीन ठिठुरनवाला होता है।

आखिर बात क्या है? रहस्य क्या है?

जब काग्रेस टूटी नही थी, तब मैंने एक कांग्रेसी मन्त्री से पूछा था कि यह क्या बात है कि हर गणतन्त्र दिवस को सूर्य छिपा रहता है? सूर्य की किरणो के तले हम उत्सव क्यो नही मना सकते? उन्होंने कहा—"ज़रा धीरज रखिए। हम कोशिश मे लगे हैं कि सूर्य बाहर आ जाये। पर इतने बड़े सूर्य को बाहर निकालना आसान नही है। वक्त लगेगा। हमे सत्ता के कम-से-कम सौ वर्ष तो दीजिए!"

दिये। सूर्य को बाहर निकालने के लिए सौ वर्ष दिये, मगर हर साल उसका कोई छोटा कोना निकलता तो दिखना चाहिए। सूर्य कोई बच्चा तो है नहीं जो अतरिक्ष की कोख मे अटका है, जिसे आप एक दिन ऑपरेशन करके निकाल देंगे।

इधर जब काग्रेस के दो हिस्से हो गये तब मैंने एक इंडिकेटी कांग्रेसी से पूछा। उसने कहा—"हम हर बार सूर्य को बादलो से बाहर निकालने की कोशिश करते थे, पर हर बार सिंडिकेटवाले अड़गा डाल देते थे। अब हम वादा करते हैं कि अगले गणतन्त्र दिवस पर सूर्य को निक

दिखायेंगे।"

एक सिंडिकेटी पास खड़ा सुन रहा था। वह बोल पड़ा—"यह लेडी (प्रधानमंत्री) कम्युनिस्टों के चक्कर में आ गयी है। वही उसे उकसा रहे हैं कि सूर्य को निकालो। उन्हें उम्मीद है, बादलों के पीछे से उनका प्यारा 'लाल सूरज' निकलेगा। हम कहते हैं कि सूर्य को निकालने की क्या जरूरत है? क्या बादलों को हटाने से काम नहीं चल सकता?"

मैं ससोपाई भाई से पूछता हूँ। वह कहता है—"सूर्य गैर-कांग्रेसवाद पर अमल कर रहा है। उसने डॉक्टर लोहिया के कहने से हमारी पार्टी का फार्म भर दिया था। कांग्रेसी प्रधानमंत्री को सलामी लेते वह कैसे देख सकता है! किसी गैर-कांग्रेसी को प्रधानमंत्री बना दो, तो सूर्य क्या, उसके बच्चे भी निकल पड़ेंगे।"

जनसंघी भाई से भी मैंने पूछा। उसने साफ कहा—"सूर्य सेक्युलर होता तो इस सरकार की परेड में निकल आता। इस सरकार से आशा मत करो कि वह भगवान् अंशुमाली को निकाल सकेगी। हमारे राज्य में ही सूर्य निकलेगा।"

साम्यवादी ने मुझसे साफ कहा—"यह सब सी० आई० ए० का षड्यंत्र है। सातवें बेड़े से बादल दिल्ली भेजे जाते हैं।"

स्वतंत्र पार्टी के नेता ने कहा—"रूस का पिछलग्गू बनने का और क्या नतीजा होगा!"

प्रसोपा के भाई ने अनमने ढंग से कहा—"सवाल पेचीदा है। नेशनल कौंसिल की अगली बैठक में इसका फैसला होगा, तब बताऊँगा।"

राजाजी से मैं मिल नहीं सका। मिलता, तो वह इसके सिवा क्या कहते कि इस राज में तारे निकलते हैं, यही ग़नीमत है।

मैं इंतजार करूँगा, जब भी सूर्य निकले।

स्वतंत्रता-दिवस भी तो भरी बरसात में होता है। अंग्रेज बहुत चालाक हैं। भरी बरसात में स्वतंत्र करके चले गये। उस कपटी प्रेमी की तरह भागे, जो प्रेमिका का छाता भी ले जाये। वह बेचारी भीगती बस-स्टैंड जाती है, तो उसे प्रेमी की नहीं, छाता-चोर की याद सताती है।

स्वतंत्रता-दिवस भीगता है और गणतंत्र-दिवस ठिठुरता है।

मैं ओवरकोट में हाथ डाले परेड देखता हूँ। प्रधानमंत्री किसी

विदेशी मेहमान के साथ खुली गाडी मे निकलती हैं। रेडियो टिप्पणीकार कहता है—'घोर करतल-ध्वनि हो रही है।" मैं देख रहा हूँ, नही हो रही है। हम सब तो कोट में हाथ डाले बैठे हैं। बाहर निकालने का जी नही होता। हाथ अकड जायेंगे।

लेकिन हम नही बजा रहे हैं, फिर भी तालियाँ बज रही हैं। मैदान मे जमीन पर बैठे वे लोग बजा रहे हैं, जिनके पास हाथ गरमाने के लिए कोट नही है। लगता है, गणतंत्र ठिठुरते हुए हाथो की तालियो पर टिका है। गणतंत्र को उन्ही हाथो की ताली मिलती है, जिनके मालिक के पास हाथ छिपाने के लिए गर्म कपडा नही है।

पर कुछ लोग कहते हैं—"गरीबी मिटनी चाहिए।" तभी दूसरे कहते हैं—"ऐसा कहनेवाले प्रजातंत्र के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं।'

गणतंत्र समारोह मे हर राज्य की झाँकी निकलती है। ये अपने राज्य का सही प्रतिनिधित्व नही करती। 'सत्यमेव जयते' हमारा मोटो है। मगर झाँकियाँ झूठ बोलती हैं। इनमे विकास-कार्य, जनजीवन, इतिहास आदि रहते हैं। असल मे हर राज्य को उस विशिष्ट बात को यहाँ प्रदर्शित करना चाहिए जिसके कारण पिछले साल वह राज्य मशहूर हुआ। गुजरात की झाँकी मे इस साल दंगे का दृश्य होना चाहिए, जलता हुआ घर और आग मे झोंके जाते बच्चे। पिछले साल मैंने उम्मीद की थी कि आंध्र की झाँकी में हरिजन जलाते हुए दिखाये जायेंगे। मगर ऐसा नही दिखा। यह कितना बडा झूठ है कि कोई राज्य दंगे के कारण अंतराष्ट्रीय ख्याति पाये, लेकिन झाँकी सजाये लघु उद्योगो की। दंगे से अच्छा गृह-उद्योग तो इस देश में दूसरा है नही। मेरे मध्यप्रदेश ने दो साल पहले सत्य के नजदीक पहुँचने की कोशिश की थी। झाँकी मे अकाल-राहत कार्य बतलाये गये थे। पर सत्य अधूरा रह गया था। मध्यप्रदेश उस साल राहत कार्यों के कारण नही, राहत कार्यों मे घपले के कारण मशहूर हुआ था। मेरा सुझाव माना जाता तो मैं झाँकी में झूठे मस्टर-रोल भरते दिखाता, चुकारा करने वाले का अँगूठा हजारो मूर्खों के नाम के आगे लगवाता, नेता, अफसर, ठेकेदार के बीच लेन-देन का दृश्य दिखाता। उस झाँकी मे वह बात नही आयी। पिछले साल स्कूलो की 'टाट-पट्टी काड' से हमारा राज्य मशहूर हुआ। मैं पिछले साल की झाँकी मे यह

दृश्य दिखाता—मत्री, अफसर वगैरह खडे हैं और टाटपट्टी खा रहे हैं।

जो हाल झाँकियो का, वही घोषणाओ का। हर साल घोषणा की जाती है कि समाजवाद आ रहा है। पर अभी तक नही आया। कहाँ अटक गया ? लगभग सभी दल समाजवाद लाने का वादा करते हैं, लेकिन वह नही आ रहा।

मैं एक सपना देखता हूँ। समाजवाद आ गया है और बस्ती के बाहर टीले पर खडा है। बस्ती के लोग आरती सजाकर उसका स्वागत करने को तैयार खडे है। पर टीले को घेरे खडे हैं कई तरह के समाजवादी। उनमे से हरेक लोगो से कहकर आया है कि समाजवाद को हाथ पकडकर मैं ही लाऊँगा।

समाजवाद टीले से चिल्लाता है—"मुझे बस्ती मे ले चलो।"

मगर टीले को घेरे समाजवादी कहते हैं—"पहले यह तय होगा कि कौन तेरा हाथ पकडकर ले जायेगा।"

समाजवाद की घेराबदी कर रखी है। ससोपा-प्रसोपा वाले जनतान्त्रिक समाजवादी हैं, पीपुल्स डेमोक्रेसी और नेशनल डेमोक्रेसी वाले साम्यवादी हैं, दोनो तरह के कांग्रेसी हैं, सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर वाले हैं। क्रातिकारी समाजवादी हैं। हरेक समाजवाद का हाथ पकडकर उसे बस्ती मे ले जाकर लोगो से कहना चाहता है—"लो, मैं समाजवाद ले आया।"

समाजवाद परेशान है। उधर जनता भी परेशान है। समाजवाद आने को तैयार खडा है, मगर समाजवादियो मे आपस मे धौल-धप्पा हो रहा है। समाजवाद एक तरफ उतरना चाहता है कि उस पर पत्थर पडने लगते हैं। "खबरदार, उधर से मत जाना!" एक समाजवादी उसका एक हाथ पकडता है, तो दूसरा, दूसरा हाथ पकडकर उसे खीचता है। तब बाकी समाजवादी छीना-झपटी करके हाथ छुडा देते हैं। लहू-लुहान समाजवाद टीले पर खडा है।

इस देश मे जो जिसके लिए प्रतिबद्ध है, वही उसे नष्ट कर रहा है। लेखकीय स्वतत्रता के लिए प्रतिबद्ध लोग ही लेखक की स्वतत्रता छीन रहे हैं। सहकारिता के लिए प्रतिबद्ध इस आदोलन के लोग ही सहकारिता को नष्ट कर रहे हैं। सहकारिता तो एक स्पिरिट है। सब मिलकर

सहकारितापूर्वक खाने लगते हैं और आंदोलन को नष्ट कर देते हैं। समाजवाद को समाजवादी ही रोके हुए हैं।

यों प्रधानमंत्री ने घोषणा कर दी है कि अब समाजवाद आ ही रहा है।

मैं एक कल्पना कर रहा हूँ।

दिल्ली मे फरमान जारी हो जायेगा—"समाजवाद सारे देश के दौरे पर निकल रहा है। उसे सब जगह पहुँचाया जाये। उसके स्वागत और सुरक्षा का पूरा बंदोबस्त किया जाये।"

एक सचिव दूसरे सचिव से कहेगा—'लो, ये एक और वी०आई०पी० *आ रहे हैं। अब इनका इतजाम करो। नाक मे दम है।*'

कलेक्टरों को हुक्म चला जायेगा। कलेक्टर एस० डी० ओ० को लिखेगा, एस० डी० ओ० तहसीलदार को।

पुलिस दफ्तरो मे फरमान पहुँचेंगे—'समाजवाद की सुरक्षा की तैयारी करो।'

दफ्तरों मे बड़े बाबू छोटे बाबू से कहेंगे—'काहे हो तिवारी बाबू, एक कोई समाजवाद वाला कागज आया था न! जरा निकालो!'

तिवारी बाबू कागज निकालकर देंगे। बड़े बाबू फिर से कहेंगे—"अरे वह समाजवाद तो परसों ही निकल गया। कोई लेने नही गया स्टेशन? तिवारी बाबू, तुम कागज दबाकर रख लेते हो। बड़ी खराब आदत है तुम्हारी।'

तमाम अफसर लोग चीफ सेक्रेटरी से कहेंगे—'सर, समाजवाद बाद मे नही आ सकता? बात यह है कि हम उसकी सुरक्षा का इतजाम नही कर सकेंगे। दशहरा आ रहा है। दंगे के आसार हैं। पूरा फोर्स दंगे से निपटने मे लगा है।'

मुख्य सचिव दिल्ली लिख देगा—'हम समाजवाद की सुरक्षा का इतजाम करने मे असमर्थ हैं। उसका आना अभी मुलतवी किया जाये।'

जिस शासन-व्यवस्था मे समाजवाद के आगमन के कागज दब जायें और जो उसकी सुरक्षा की व्यवस्था न करे, उसके भरोसे समाजवाद लाना है तो ले आओ। मुझे खास ऐतराज भी नहीं है। जनता के न आकर अगर समाजवाद दफ्तरों के द्वारा आ गया तो एक ऐ[illegible] घटना हो जाएगी।

दक्षिणी सबलगढ़ का घायल शेर

भगवतीशरण सिंह

उस दिन दक्षिणी सबलगढ में शिकार खेलने का इतजाम हुआ था। राजा राजा साहब साहनपुर और उनके दोनो भाई भी आये थे। राजा जसजीतसिंह भी साथ मे थे और हम सब एक खुली जीप मे शाम का इतजाम देखकर गश्त लगाते हुए चिडियाघर विश्रामगृह की ओर लौट रहे थे। हल्का-सा झुटपुटा हो चला था किंतु अभी जीप की रोशनी जलाने का वक्त नही हुआ था। हम धीरे-धीरे बातें करते हुए चल रहे थे। हमारी आवाज इतनी धीमी थी कि जीप की घर्राहट मे डूबी रहती थी। आसपास वालो के लिए केवल जीप के चलने की आवाज ही सुनायी देती थी।

लड्डन खाँ जीप पर पीछे बैठे हुए बराबर इस बात की ताकीद करते जा रहे थे कि 'गुलदार के निकलने का ऐन वक्त हो रहा है, जीप जरा धीरे चलायी जाये।' हम उनका मजाक उडाने मे लगे थे। पर यह मजाक उस दिन महँगा पड गया। लड्डन खाँ ने सहसा थोडी दूर पर पडी एक काली चीज को दिखाते हुए कहा, 'तीतर'। जसजीतसिंह की दुनाली 'चर्चिल' यंत्रवत् जैसे घूमी और उससे निकले हुए कारतूस के छर्रों ने उस काली चीज के फाहे उडा दिये। मालूम हुआ वह गोबर था। फिर क्या था, हम सब जसजीतसिंह साहब का मजाक बनाने मे खिल पडे और लड्डन खाँ अपने रसवाद पर मन-ही-मन गर्व करने लगे।

हम सब विश्रामगृह से लगभग दो मील रह गये थे कि दाहिनी ओर से गुजरता हुआ एक गुल्दार दिखायी पडा। वह इतने करीब से और धीरे-धीरे गुजर रहा था कि मेरी २६५ मैनलिकर शूनर अपने-आप उसकी तरफ सीधी हो गयी। गोली उसके अगले हिस्से मे लगी और वह साफ चित्त होता हुआ बडी-बडी घास मे डूब गया। हमने जीप रोक दी और थोडी देर उसी मे बैठे रहे। फिर दुनाली बदूक से एक झूठा फायर करके उस टुकडे की ओर बढे जिसमे वह गिरा था। हल्की-सी छानबीन की। इतने मे अँधेरा हो चला था। घायल गुलदार बडा खतरनाक होता है, अत वहीं एक निशान बनाकर हम खुशी-खुशी विश्रामगृह

लौट आये। ख्याल यह था कि दूसरे दिन सवेरे हाथी से उसे ढूंढ लेंगे। चुनांचे सवेरे की प्रतीक्षा बडी बेसब्री के साथ होने लगी। लड्डन खां को दुहरी कामयाबी मिली थी। एक तो राजा जसजीतसिंह को बेवकूफ बनाने मे और दूसरी गुलदार के निकलने का 'ऐन वक्त' बताकर गुलदार पर गोली चलवा देने मे। अत वह दूर की लेने लगे थे। किसी तरह सवेरा हुआ और हम झटपट नाश्ता करके हाथियों पर बैठ उस टुकडे की ओर रवाना हो गये। सारा टुकडा रौद डाला। घने पेडो के नीचे कुछ झाडियाँ भी थी। खून के दाग उस ओर गये थे। अदाज यह हुआ कि गुलदार इन्ही झाडियो मे मरा पडा होगा। फिर भी उनमे बरोक-टोक जाना न मुमकिन था और न उचित। हमने वह स्थान दो तरफ से हाथियो से घेर लिया और एक तरफ दूसरे पेड पर अपने शिकारी लड्डन खाँ को बैठा दिया। पेड पर चढते ही लड्डन खां को गुलदार दिखायी दे गया और वह एक पेड की जड की ओर इशारा करने लगे। उनके इस इशारे से यकीन हो गया था कि गुलदार जरूर वहाँ दबा हुआ है। यह निश्चय नही हो रहा था कि वह मर गया है अथवा अधमरा है। अत बदूको से फायर करते हुए हम धीरे धीरे उन झाडियो की तरफ बढ रहे थे। जब हम बिल्कुल करीब आ गये और हमारी बदूको की आवाज के बावजूद गुलदार नही निकला, तो यह विश्वास होने लगा कि वह मर गया है। कोई हादसा न हो, अत हम बडी सावधानी बरत रहे थे। पर इतनी सावधानी के बावजूद एक हादसा हो ही गया। इस रौंदा रौंदी मे एक हाथी का अगला पाँव, जिस पर राजा साहब के छोटे भाई कुँवर गिरिराजसिह बैठे थे, एक ऐसे गड्ढे मे चला गया जो ऊपर से भरा-भरा मालूम होता था किंतु था गहरा। खैर यह हुई कि हाथी गिरा नही, लटककर रह गया। फिर भी इससे उस पर बैठे हुए लोगो का आसन ढीला हो गया। यहाँ तक कि कुँवर गिरिराजसिह अपनी राइफल लिए हुए नीचे आ गिरे। उन्हे हल्की-सी चोट जरूर आयी लेकिन उनकी बदूक से गोली नही छूटी, वरना जाने कहाँ लगती और क्या होता। हम फिर सँभलकर उन झाडियो को रौंदते हुए उस पेड तक पहुँच गये लेकिन गुलदार तो क्या उसका प्रेत तक भी वहाँ दिखायी नही पडा। हमने अपना सारा गुस्सा लड्डन खाँ पर उतारा, जिन्हे दूर से पेड पर

बैठते ही गुलदार दिखायी पडने लगा था। जब गुस्सा शात हुआ तो खाँ साहब का फिर मजाक बनाया जाने लगा। खाँ साहब बुजुर्ग आदमी थे और जैसा बार-बार कह चुका हूँ कि बडे ही अनुभवी शिकारी थे। उनके अनुभव की साख दूर-दूर तक थी। वह केवल हम लोगो के शिकारी ही नही थे बल्कि एक घर के जैसे आदमी भी थे और बडा दोस्ताना था। इसलिए हम लोग गुस्सा या मजाक एक हद तक ही करते थे और वह भी हर चीज को खुशी-खुशी पी जाते थे। बराबर हँसते रहना और हर चीज का अपनी तरफ से माकूल जवाब देना उनका फर्ज था। तो कुछ भी हो, उस दिन सारा दिन इसी शोर-गुल मे तबाह हो गया। कोई काम की बात नही हुई और न ही कोई शिकार।

नियमानुसार दूसरे दिन के शिकार का इतजाम तो होना ही था। अत उस शाम भी कटरे बाँधे गये और दूसरे दिन की प्रतीक्षा होने लगी। दूसरा दिन हुआ। जहाँ-जहाँ कटरे बँधे थे, वहाँ से धीरे-धीरे एक-एक कर खबरें आने लगी। उस दिन छ कटरे बँधे थे। लेकिन पाँच जगहो से यह खबर आयी कि कोई कटरा नही मारा गया। अब सारी उम्मीदें सिमटकर छठे कटरे पर लग गयी। जहाँ देर हुई, आशा और निराशा के झूले तेज होने लगे। लगभग ग्यारह बजे यह खबर मिली कि छठा कटरा मारा गया। फिर क्या था, खुशी का कोई ठिकाना नही रहा। सब जल्दी से खाना खाकर तीसरे पहर चल पडे। हाथियो को पहले से ही रवाना कर दिया गया था। दो बजे दिन हम उस जगह पहुँचे जहाँ से जीप छोडकर मरे हुए कटरे की खोज करनी थी। आगे आगे मचान, रस्से और दराँती लिये हुए बजर और शिकारी मगन और पीछे हाथियो पर हम लोग भैंसे की घसीट देखते हुए चले जा रहे थे। आमतौर पर शेर भैंसा मारने के बाद बहुत दूर तक उसे नही घसीटता। मार की जगह के पास जहाँ भी उसे सुरक्षित स्थान मिलता है, छिपाकर रख लेता है और प्राय कुछ हिस्सा खाने के बाद खुद भी बहुत दूर नही जाता। पर शेर के आचरण के बारे मे इदमित्थम् बात आज तक नही कही गयी। हमे आश्चर्य हो रहा था कि कटरे की घसीट एक फर्लांग से भी ज्यादा चली गयी और फिर भी भैंसे का पता नही चला। चूँकि यह कटरा बडा था और जितनी दूर ले जाया जा रहा था उससे यह अनुमान

हो रहा था कि यह शेर बहुत बडा और भयानक होगा। हम धीरे धीरे उसे देखते हुए एक सूखे नाले के किनारे जा पहुँचे। किंतु अभी हैरानी और परेशानियो का अत नही होने वाला था। हमने नाले के किनारे तक घसीट देखी और देखा कि सूखे नाल मे बालू होने के बावजूद उस घसीट का आगे कोई पता नही था। हाथियो पर बैठे हम लोग स्तभित थे। चुपचाप सोच रहे थे कि हो क्या सकता है। एक ही बात बार-बार दिल मे आती कि कही ऐसा तो नही कि शेर फिर उसे घसीटकर वापस ले गया हो। इतने म यकायक नाले की दूसरी ओर दीवार से कुछ मिट्टी खिसकी हुई दिखायी दी। यह मानने को जी नही चाहता था कि शेर इस भैंसे को लिए छलाँग मारकर उस पार गया होगा। कितना भी ताकत-वर शेर क्यों न हो, कटरे को लेकर उस नाले को पार करना आसान बात मालूम नही होती। चूकि मिट्टी खिसकी हुई थी इसलिए ऐसा भी लगता था कि शेर कटरे को लेकर उस पार पहुँच गया है। जब देर तक हम नाले के इसी पार खोज करते रहे और फिर भी कोई उम्मीद नजर नही आयी तो हार थककर नाले मे उतर आये। नाले के उस पार का किनारा ऊँचा और खडा था। इसलिए हाथी उस पार चढ नही सकता था। हम लोग धीरे धीरे ऐसी जगह खोजने लगे जहाँ से हाथी को आसानी से नाले की दूसरी ओर चढा लिया जाये। थोडी दूर जाने पर नाले की दीवार नीची होने लगी और एक जगह से हाथी को चढाना सभव हो गया। हम फिर ऊपर आकर उसी ओर चलने लगे जहाँ से दीवार की मिट्टी खिसकी हुई थी। तीसरे पहर की धूप अटक रही थी। जगल मे मौत का-सा सन्नाटा हो रहा था। पेडो से छनकर आती हुई हवा के अलावा केवल साँस चल रही थी बाकी सब चुप। हाथी दबे पाँव महावत के इशारे पर आगे बढता जा रहा था। शेर की उप-स्थिति बताने वाले जानवर भी दम रोके हुए थे। कही कुछ पता नही चल रहा था। हम प्राय उस स्थान पर पहुँच चुके थे जहाँ से शेर के ऊपर आने का अदाज लगाया था। हाथी रुक गया था। हम अपनी नजर इधर दौडा रहे थे कि यकायक मेरे आगे एक बहुत बडा शेर उठ खडा हुआ। उसने बिना आवाज किये ही क्रोध से मुँह खोला था कि मेरी ३७५ मेगनम और राजा साहब की ४७६ चल पडी। दोनो गोलियाँ

साथ चली थी और शायद उसके अगले दाहिने कंधे पर लगी थी। गुर्राहट के साथ 'धब' की आवाज आयी और फिर सब शांत। हम कुछ देर तो चुप खडे रहे, पर उससे क्या होता। आगे बढकर देखना तो था ही। हम दो-चार कदम ही आगे गये थे कि मँझले भाई साहब ने, जो हाथी पर पीछे बैठे थे, पूछा कि हम लोगो ने भी किसी आदमी की चीत्कार सुनी ? मैंने नही सुनी थी। राजा साहब ने भी नहीं सुनी थी। पर यदि चीत्कार हुई भी होती तो हम फिर से तो चीत्कार सुन नही सकते थे। अटकल जरूर लगाने लगे।

अब मेरे मन मे एक अजीब किस्म का भय समा गया था। मुझे बार-बार ऐसा लगता था जैसे मैंने कोई बहुत बडा अपराध किया हो। मेरे सामने एक ऐसा काल्पनिक दृश्य उपस्थित हो रहा था जिससे रोंगटे खडे हो रहे थे। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि जिस समय हम लोग मरे हुए कटरे को खोजने निकले थे तो आगे-आगे मगन नाम का शिकारी और दो कजर रस्से और दरांती तथा मचान का सारा सामान लिये हुए चल रहे थे। नाले के पास घसीट खत्म हो गयी थी और हम नाले के उस पार खिसकी हुई मिट्टी देखकर सुविधाजनक स्थान से पार करने के लिए चल पडे थे तो मगन और उसके साथी मचान के साथ वही नाले मे बैठ गये थे। नाले के उस पार आकर हाथी पर बैठे हुए जब मैंने शेर पर गोली चलायी थी और गोली की चोट खाकर तडप के साथ शेर उलटा था तो 'धब' की आवाज तो मैंने सुनी थी। राजा साहब ने जब चीत्कार की बात कही तो मेरी कल्पना मुझे यह मानने के लिए आग्रह करने लगी कि घायल शेर उलटकर नाले मे गिरा था और वही मगन को बैठा हुआ पाकर उसने उस पर हमला कर दिया। यह मगन की चीत्कार थी। इसी कल्पना से मैं अभिशप्त हो रहा था। मृगया और आखेट सदा से मनोरंजन माने गये हैं। यदि मेरे मनोरजन मे किसी एक व्यक्ति की जान चली गयी है तो इससे बढ़कर और क्या पाप हो सकता था ? मैं उसे एक बहुत बडा दुष्कर्म मानता, यदि यह बात सच निकलती। इसीलिए मैं राजा साहब और भाई जसजीतसिंह के आग्रह करने पर भी घायल शेर को नाले के ऊपर खोजने की तजवीज को नामजूर कर पुन. नाले मे उतर मगन को खोजने के लिए आतुर हो

उठा। निदान हम फिर उतरने के लिए आसान रास्ते की तलाश कर नाले मे उतर आये और हाथी को तेजी से चलाकर उस जगह पहुँचे जहाँ मगन और उसके साथियो का छोडा था। किंतु न तो वहाँ मगन था और न उसके दूसरे साथी। मचान का सामान वही नाले मे ज्या-का-त्यो पडा हुआ था। अब मुझे इस बात का निश्चय करने मे तनिक भी सदेह नही रहा कि उन तीनो आदमियो मे से किसी एक को शेर जरूर मारकर घसीट ले गया। मैं दूसरे कजरो के नाम तो जानता नही था इसलिए हाथी पर बैठे हुए बडे जोर से 'मगन' चिल्लाने लगा। किंतु मगन हो तब तो बोले। जिस तरफ कुछ पांव के निशान दिखायी पडे हाथी भी हमने उसी ओर बढाया। थोडी दूर जाने पर और फिर 'मगन मगन' की आवाज देने पर देखता हूँ कि बाईं ओर नाले की दीवार से मगन चिपका हुआ पडा है। मगन को देख लेने पर अब यह ख्याल जोर पकडने लगा कि शेर ने किसी दूसरे कजर को मार लिया था। हम लोगो ने मगन को नाले की दीवार से उतरने के लिए आवाज दी लेकिन मगन ने कराहते हुए कहा, 'मैं नीचे नही उतर सकता। मेरा एक पांव शेर खा गया है।' हम लोगो ने गौर से देखा तो उसके दोना पाँव सुरक्षित थे। अत हम दोनो ने उसे विश्वास दिलाने के लिए फिर जोर से कहा—"तुम्हारे दोनो पाँव ज्यो-के-त्यो हैं, तुम नीचे उतर आओ।" लेकिन मगन को तनिक भी विश्वास नही हो रहा था। आखिरकार हम लोगो ने आगे बढकर उसे उतारा और उससे उसका हालचाल पूछने लग। हम लोगो को देखकर और अपने को जिंदा पाकर वह बिलखने लगा। फिर रुककर उसने कहा—"हुजूर, मेरा पाँव शेर खा गया है,' और बेहोश हो गया। हम लोगो ने उसके सारे शरीर को देखा। एक पाँव का जूता गायब था और उसके पाँव से खून निकल रहा था। जाहिर था कि उसमे शेर का पजा चुभा हुआ था। भयग्रस्त बेहोश मगन के शरीर मे शेर के पजे का जहर तेजी से न फैल जाये इसलिए हम लोगो ने यह मुनासिब समझा कि उसे जीप पर लादकर नजीबाबाद अस्पताल भेज दिया जाये। उसे नजीबाबाद भेजकर और एटीटिटेनस के इजेक्शन आदि लगाने का आदेश देकर उसकी ओर से हम लोग कम-से-कम इतने निश्चित तो अवश्य हो गये थे कि मगन न तो अब

और न इतनी चोट से मरेगा।

मगर यह कहानी यही खत्म नही होती। इसका दूसरा हिस्सा और भी दिलचस्प है। मगन को रवाना करके हम जब वापस उस जगह आये जहाँ हमने अपनी जीप छोडी थी तो हमने कुछ और ही हाल पाया। यह कहना मैं भूल ही गया था कि मेरे साथ जीप मे मेरी पत्नी भी थी और जब हम लोग हाथी पर सवार होकर शिकार के लिए चले थे तो पत्नी को ड्राइवर और पुराने तथा अनुभवी शिकारी श्री लड्डन खाँ साहब की देख-रेख मे छोड दिया था। लड्डन खाँ के पास ५०० एक्सप्रेस की दुनाली राइफल थी और वे सब प्रकार से इन लोगो की रक्षा करने में समर्थ थे। लेकिन वहाँ वापस आने पर देखता हूँ कि न तो लड्डन खाँ हैं और न हमारा ड्राइवर। मेरी पत्नी अकेली जीप पर सहमी हुई बैठी हैं। उन्हे अकेला देखकर मेरे क्रोध का पारावार न रहा और मैंने पूछा, 'आपके रक्षक दोनो व्यक्ति कहाँ चले गये ?" मेरी पत्नी ने बताया कि, दोनो क्जर 'शेर-शेर' कहते हुए उसी ओर से आये थे और जगल मे छिप गये। इन लोगो की भयातुर आवाज सुनकर लड्डन खाँ और ड्राइवर भी यही कहीं भागकर पेड पर चढ गये हैं। मैं हैरान था कि यह क्या बात हुई कि जिस व्यक्ति की रक्षा के लिए मैंने इतने अनुभवी शिकारी को छोडा था और जिसके पास इतना शक्तिशाली हथियार था, वह भी यदि घबराकर भाग जाये तो फिर किस प्रकार किस पर भरोसा रखा जा सकता है। इस बात का ख्याल आते ही कि इन दोनो के भाग जाने पर यदि शेर ने मेरी पत्नी पर हमला कर दिया होता तो आज मैं अपने इस मनोरजन मे सब प्रकार से लुट गया होता, मैं सिहर उठा। जीप जगली सडक पर खडी थी। हम लोग हाथी पर सवार थे, अत अब यह भी मुनासिब न समझा गया कि पत्नी को जीप से उतारकर हाथी पर बैठा लिया जाये। अब घायल शेर को खोजने का इरादा भी नही था। अब तो लड्डन खाँ को खोजकर उनकी भर्त्सना ही हमारा प्रधान लक्ष्य हो गया था। अत पत्नी को जीप पर ही छोडकर हम उसी सडक पर अभी दस कदम ही आगे चले होंगे कि बाईं ओर पेड के ऊपर से लड्डन खाँ की आवाज आयी—"हुजूर, आगे न बढिये, वहाँ साल के नीचे घायल शेर बैठा है।" लड्डन खाँ की आवाज सुनते ही मेरा क्रोध

छिपा पड़ा था। जब हमने पहली बार पेड़ की दूसरी ओर से गोली चलायी थी तो कारतूस के छर्रे साल के तने पर ही चिपककर रह गये थे और बंदूक की आवाज सुन लेने के बावजूद शेर ने वहाँ से हटना मुनासिब न समझा था। चूँकि उसका अगला पैर बहुत टूट चुका था, इसलिए ऐसा करना उसके लिए मुमकिन भी न था। लेकिन जब हमने दूसरी ओर से उस पर गोली चलायी और छर्रे उसके शरीर में चले गये तो घायल शेर 'मरता क्या न करता' की स्थिति में पहुँच गया था। प्रतिशोध की आखिरी भावना से उसने हम पर हमला करना ही आखिरी कर्त्तव्य समझा था।

इस सन्नाटे के बाद अब दो चीजें और भी स्पष्ट हो गयी—एक तो यह कि लड्डन खाँ की बात सही थी और दूसरी यह कि शेर पहली बार में केवल घायल हुआ था, और हमारे हाथी पर हमला करने के पहले तक जीवित था। लेकिन प्रश्न यह था कि इस बार हमारी गोलियाँ चलने के बाद उसका क्या हुआ? हम कदम-कदम सँभल-सँभलकर अपने हाथी को उस ओर बढ़ा रहे थे जिस ओर घास में घायल शेर गायब हुआ था। बीस-पच्चीस गज जाने पर एक पतली होती हुई 'दँड़' दिखायी पड़ी। 'दँड़' उन छोटे नालों को कहते हैं जो पानी के बहाव की कटान से बनते हैं और उनका बहुत-सा हिस्सा जमीन के नीचे-नीचे ही जाता है। दूसरे शब्दों में यह एक प्रकार की नैसर्गिक सुरंग होती है जो बरसात के दिनों में पानी की निकासी का काम करती है। बरसात समाप्त होने के बाद वे सूख जाती हैं और उनमें अक्सर जंगली पशु अपना आवास बनाते हैं। बड़ी खोज के बाद भी जब शेर नहीं मिला तो हम लोगों ने हार-थककर यह विश्वास कर लिया कि दूसरी बार भी हाथी पर झपटने के बाद शेर मरा नहीं था और आगे बढ़कर उसी प्राकृतिक सुरंग रूपी नाले में घुस गया। इतना तो विश्वास हो रहा था कि दूसरी बार की गोलियाँ भी लगी थी और उसका जीवित रहना संभव न था। लेकिन जंगल में घायल शेर को छोड़कर आना भी शिकारी के लिए उचित नहीं। सन्ध्या हो चुकी थी, इसलिए हम इससे अधिक कुछ कर भी नहीं सकते थे।

दूसरे दिन हमने फिर कई हाथियों को साथ लेकर घेरा डाल दिया

और उस टुकडे का एक-एक कोना छान डाला। बार-बार उसके खून के निशान उसी सुरग की ओर ले जाते थे। अत यह विश्वास हुआ था कि शेर उसी सुरग मे जा घुसा है। हमने उस सुरग मे छोटे भैसे भी बिठाये कि यदि वह जीवित होगा तो फिर आक्रमण करेगा। किंतु किसी भी प्रकार कामयाबी हासिल न हुई। हम उस टुकडे मे बहुत दिनो तक तो रह नही सकते थे, इसलिए शिकारियो को तैनात कर तीसरे दिन हम लोग वापस चले आये। बाद मे महीनो तक उस ओर दूसरे-तीसरे दिन आते-जाते रहे लेकिन सबलगढ़ का घायल शेर न मिला और न वह स्थान जहाँ उसने अपनी जीवनलीला समाप्त की थी। लेकिन जब बहुत दिन तक उस इलाक़े से न तो किसी पशु और न ही किसी आदमी के मारे जाने की खबर मिली, क्योकि घायल शेर अक्सर आदमखोर हो जाते हैं, तो यह विश्वास करना पडा कि वह मर गया। लेकिन आज भी हम लोगों के लिए वह सबलगढ़ का घायल शेर ही है, क्योकि हमने उसे मरा हुआ नहीं पाया।

कलकत्ता कितना अमीर, कितना ग़रीब

'सिद्धेश'

जनसख्या के लिहाज़ से पूरे विश्व मे कलकत्ता का चौथा स्थान और भारत मे प्रथम है। पिछले दिनों कहीं इस तरह का तथ्यात्मक वक्तव्य पढकर उतना आश्चर्य नही हुआ जितना यह जानकर हुआ था कि इसमें तीस परसेंट ही साक्षर हैं। याने कुर्सियो पर बैठकर ऑफिस मे काम करने वाले से लेकर बेकार पढ़े-लिखे युवको और स्कूल-कॉलेजो से सबद्ध व्यक्ति सत्तर लाख जनसख्या का एकमात्र एक-तिहाई हिस्सा ही है, बाकी सभी किसी-न-किसी नीचे स्तर वाले तबके से जुडे हैं। इनमें रिक्शेवाले, खोमचेवाले, दरबान, छोटे-मोटे दुकानदार और मजदूरो से लेकर कस्बो मे जीने वाले साधारण लोग हैं। यह दृष्टव्य है कि एक तरफ जहाँ बाईस तल्लेवाले मकानो मे जीने वाले लोग हैं, तो वही फुटपाथ पर खाने-सोने और मरने वाले भी। एक तरफ बडी-बडी दुकानें, न्योन लाइन मे चमकते हुए विज्ञापन के नीचे चमकते शो-केस हैं, तो दूसरी तरफ चौरगी के पार्कों के बगल-बगल फुटपाथो पर बिछे हुए अस्थायी हॉकर्स भी हैं, जो पौ फटते ही अपने बक्सो और टेन्ट समेत ज़मीन पर आकर बिछ जाते हैं और रात के दस बजे तक उनकी सारी दुनिया वही सिमट आती है। रात मे उनके अस्तित्व के बारे मे पता भी नही चलता। वे अपनी दुनिया समेत पता नही किन कदराओ मे जा छिपते हैं। वैसे इनमे से कुछ हॉकर्स अपनी छोटी दुकान के बल पर अच्छा-खासा कमा लेते है, मगर उनकी औकात परपरानुगत ही बनी रही, कभी फुटपाथों मे उठकर बडी दुकानो वाले शो-केसो मे सजने की चेष्टा नही की। अधिक से अधिक हुआ तो फुटपाथ की अस्थायी हॉकरबाजी से उबरकर कॉलेज स्ट्रीट या चौरगी के हॉकर्स-मार्केटो के लघु-योजना वाले दुकानदारों मे शामिल हो गये। ऊँचा पीढा बिछा लिया, चारो तरफ़ से टीन और काठ की दुकान बना ली और सारा सामान रोज ढोकर ले जाने वाली परेशानी से बच गये। मगर उनका इतिहास भी तुरत मे बना हुआ पिछले दस वर्षों का है। बडी-बडी दुकानो और मकानो की बात छोडिये, वे अपनी औकात और प्रेस्टिज के अनुसार पैठ

पीटते हैं और प्रत्येक वर्ष दुगना बैंक-बैलेंस बढ़ा लेते हैं। इनके मकानों मे एक तल्ला ऊपर और ऊँचा उठ जाता है या दुकानों के शो-केस मे दुगनी चमक बढ जाती है। चाहे वह दुकान या मकान चौरंगी और पार्क स्ट्रीट जैसी व्यस्त जगहो पर हो या बालीगंज-टालीगंज जैसी निर्जन जगहो पर हो।

आज वर्षों से कितनी राजनीति, कितनी सरकार और कितना हंगामा। मगर असमानता वाली यह खाई अब तक नही पटी और न पटेगी। इसी असमानता वाले महानगरों मे सबसे ज्यादा व्यस्त, त्रस्त और असबद्ध भीड वाला महानगर कलकत्ता है।

श्याम बाजार के हाथी बागान वाले मार्केट के अगल-बगल बैठने वाला वह फल-विक्रेता, आज भी वैसे ही पिछले दस वर्षों से बैठा हुआ है, अब उसके बच्चो ने वह फुटपाथी दुकान सँभाल ली है, जिसकी टोकरी मे पच्चीस से पचास रुपयो की लागत से खरीदा गया सामान ही रहा है। इससे न अधिक न कम, जबकि इस बीच बडाबाजार वाले, छाता वाले सेठ या कपडे वाले सेठ ने अपनी दुकान की काया और माया दुगनी बढ़ा ली है। यहाँ यह सब मामूली बात रह गयी है। आदोलनो और जुलूसो मे ये बातें खत्म हो जाती हैं। मगर सेठ की दुकान वैसी ही खुली रहती है। इधर यह हुआ कि क्रांति के लिए फेंके गये बमो और पुलिस द्वारा छोडे गये अश्रु गैस से पूरा फुटपाथ भर गया है, लोग डरकर अपने-अपने घरो मे दुबक गये हैं और फुटपाथी दुकानें खोली नही गयी हैं और दुकानदार पेट पर हाथ रखकर पूरा दिन सोते रहे हैं। सुबह फिर वही हलचल, वही भाग-दौड। ट्राम-बसो का एक पर एक आना-जाना। ऑफिस के बाबू ट्राम और बसो के फुटबोर्ड पर लटके हुए जा रहे हैं। उनको इतनी चिंता एक्सीडेंट हो जाने की नही है, जितनी ठीक टाइम पर ऑफिस पहुँचने की है।

कम पूँजी मे लगी हुई दुकानदारी और अन्य प्रकार का रोज़ाना काम काज यहाँ बहुत कुछ मौसम पर भी निर्भर करता है। जैसे बरसात मे यहाँ की अधिकाश जगहे वर्षा होते ही पानी से भर जाती हैं। कई-कई जगहो पर तो घुटनों पानी जमा हो जाता है। उस समय बस-ट्राम का चलना तो बद हो ही जाता है, फुटपाथी दुकानदारी भी उठ जाती है,

उधर ऑफिस से लौटने वाले या जाने वाले लोग भारी संख्या मे एक जगह जमा हो जाते हैं। या तो वे पैदल घर आते हैं या टैक्सी-रिक्शा पर। उस समय हाथ-रिक्शा ही अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। जहाँ सूखे मौसम मे रिक्शो का रेट तीस से पचास पैसे होता है, उसकी जगह रुपये से दो रुपये तक हो जाता है। रिक्शे वालो की बन आती है। टैक्सी भी सब जगह पानी मे नही जा पाती, क्योकि ज्यादा पानी मे जाकर इजन बद हो जाने का उन्हे भी भय बना रहता है, तब ऐसे आड़े वक्त पानी मे खड़े फुटपाथी छोकरे ही काम आते हैं। वे ठेलकर पानी से बाहर ले आते हैं। और इसके लिए वे पैसे कमा लेते है। कभी-कभी बरसात लगातार होने पर रोजाना कमाने-खाने वाले लोगों की शामत आ जाती है और वे ईश्वर की कृपा पर निर्भर हो जाते हैं। अत. यहाँ जहाँ-जब-जिसको मौका हाथ लगता है, वह उतना बना लेता है। इसलिए वे अपने-अपने भाग्य और मौके के मालिक हो जाते हैं। अत. ये स्वार्थी अधिक होते हैं, दूसरो के सुख-दुख से उनका कोई मतलब नही होता है। यह असमानता और सघर्ष दूसरी जगहो से यहाँ कही अधिक है। सब जगह भाग-दौड, तिकडमबाजी, छीना-झपटी, मौके की तलाश, अस्थायित्व बहुत ज्यादा है।

बडे-बड़े फर्म वाले ऑफिस और लाखो रुपयो का रोज वारा-न्यारा डलहौजी स्क्वायर मे होता है। वही पर एक गली मे स्टॉक-एक्सचेंज है, बडे-बडे शेयर-होल्डर्स, पार्टनर्स, बिजनेसमैन (जो बडी-बड़ी फैक्टरियो और आढतो के मालिक हैं) इडिया एक्सचेंज, मर्केन्टाइल बिल्डिंग आदि के ऊँचे-ऊँचे फ्लोर पर बेहतरीन आरामदेह चेम्बर मे बैठते हैं, जिसके अदर पूरे साल एक ही मौसम महसूस किया जा सकता है। पता नही चलता कि शीशो के पार बाहर कौन-सा मौसम है? और उन बिल्डिगो के नीचे फुटपाथो पर गर्मी से झुलसते हुए, वर्षा मे भीजते हुए और सर्दी मे ठिठुरते हुए पैन बेचने वाले, खुदरा-खुसरे सामान बेचने वाले, खोमचे वाले, डाब वाले, पान वाले सभी बैठे रहते हैं। ऑफिस के छूटने के बाद भी इनकी ड्यूटी रात के सात-आठ तक चलती रहती है। जबकि सारा डलहौजी रात के आठ-नौ तक मुर्दास्थल बन जाता है, ट्राम-

बसें भी उधर मामूली जाने लगती हैं, सारी बसो-ट्रामो का रुख चौरगी की तरफ हो जाता है, तब भी फुटपाथी अपने सारे सामान को बक्सो और टोकरियो मे बांधकर कधे पर रखे चलते रहते हैं। उनमे से ही अगर कुछ पुलिस की दया के पात्र बन गये तो समझिए दो-तीन दिन तक उन्हें नहीं देखा जा सकता है। यद्यपि अब ऐसा नही होता, अत बिना लाइसेंस के भी दस रुपयो से पचास रुपयो तक के इन मालिको का भी पेट भरता है और लाखो-करोडो रुपयो के मालिक का पेट भरकर भी खाली रह जाता है।

कैंनिग स्ट्रीट से होते हुए बडाबाजार की तरफ़ आइये तो बिजनेस पूरे स्टॉक के साथ होते हुए देखा जा सकता है। गद्दियो पर बैठने वाले, अधिकतर मोटी तोद वाले आढतिये ही होते हैं, जो कबल बेचने से लेकर आलू और प्याज तक भी बेचते हैं। और मुनाफा कमाकर बालीगज या गोलपार्क जैसी बेहतरीन जगहो पर मकान खरीदते है, बनवाते है। अपने बच्चो को किसी इग्लिश स्कूल मे पढाते है, उन्हे विदेश भेजने का स्वप्न देखत हैं और खुद मुनीम के बिना कागज-क़लम तो दूर रहा, पेपर छूने तक की हिम्मत नही रखते। मगर उनके बेटे-बेटियाँ लुकछिपकर जासूसी उपन्यास और सेक्सी पत्रिकाएँ पढ़ते हुए पाये जाते है। इन्ही फुटपाथो पर दलाल इधर स उधर भागते-दौडते हुए नजर आते है, मगर इनकी नीयत बडी दोगली होती है। पूरा बडाबाजार गदगी स भरा होता है, और रास्ते-गलियाँ कीचड और धूल से सनी रहती है—अधिकतर लोगो के चेहरो पर मनहूसी और बदहवासी छायी रहती है, उनके बदन स पसीने की बदबू और मुंह से बासी गध मिलती है। वहाँ के अधिकतर लोग चाय और पान पर ही दिन काट देते हैं। दलालो की जिंदगी कुछ और है तो यहाँ के फुटपाथ पर जीने वाले लोग भी विचित्र होते हैं। पान की दुकान के नीचे दड़बेनुमा जगह बनाकर रहते ही हैं, साथ ही खोमचे वाले, झांक वाले, दलाल किस्म के लोग, रिक्शा वाले यानी सभी तरह के निम्नस्तरीय लोग रात होते ही बद दुकानो के बाहर फैली हुई पटरियो पर सोते रहते हैं, जहाँ करवट बदलने तक की जगह नही होती। सुबह होते ही फुटपाथ के नलो से निकलने वाले गँदले पानी से नहात हैं और चाय बिस्कुट मे पूरा दिन काट लेत हैं। अगर अच्छी आमदनी हुई तो

रात को ठीक से किसी सस्ते होटल में जाकर खा-पी लिया, नही तो वह भी नदारद।

इस तरह के लोग जिंदगी के बीसों बरस काटते आये हैं। तब्दीली कोई नहीं हुई। ये इसी तरह जीने के प्रति अपने को 'कमिटेड' मानते हैं। इसी में खुशहाल हैं, किसी के प्रति कोई शिकवा-शिकायत नही। केवल जुलूसों या नारों में दो-तीन गालियाँ सरकार पर उछाल देते हैं। बस इनका आंदोलन यही तक सीमित है।

पिछले पाँच वर्षों में इनमें यूनियन ने कुछ रद्दो-बदल किया, तभी ये सभी एक जुलूस और एक झंडे के नीचे आ गये। और अब इनकी भी एक यूनियन बन गयी है। वे लोग भी सेठों और मालिकों के खिलाफ़ एक साथ हड़तालें करते हैं, अपनी-अपनी माँग मनवाने के लिए नारे लगाते हैं, इस क्रूर एहसास के साथ कि कभी कुछ बदलने वाला नही है।

दूसरी तरफ़ बस्ती वाले लोग हैं। चाहे वह बस्ती दर्जीपाड़ा मे हो या श्याम बाजार, भवानीपुर की हो, यह बस्ती हर मुहल्ले मे फैली हुई है। एक तरफ 'वेल डेकोरेटेड' फ्लेटनुमा मकान खडे हैं तो उसके आस-पास कोई न कोई बस्ती की टुकड़ियाँ अवश्य हैं। इन बस्तियो मे अधिक-तर विस्थापित लोग हैं या वे अशिक्षित लोग हैं, जिनका मूल रूप से जन्मस्थान यह नही है, ये कही से भागकर आये हुए लोग ही हैं, जो दस वर्षों या उससे भी आगे से रहते आ रहे हैं। उनके ढेरो बाल-बच्चे इन्हीं बस्तियों मे पलकर वड़े हो रहे हैं, जिनका दिन-दोपहर निवास मुहल्ले के मकानों के ओटे हैं या फुटपाथ हैं। रात में भी अधिकतर (बरसात छोड़कर) आसपास के बरामदों या फुटपाथों पर सोते हैं। ओढ़ने के लिए आकाश और उठने-बैठने के लिए फुटपाथ। इनके बच्चे किसी भी शिक्षा के मोहताज नही होते। बचपन से ही सड़कों पर दौड़ते-घूमते हुए, नंग-धडंग बड़े-बडे पेट लेकर लोगों को गालियाँ बकते हुए या गोली, गुल्ली-डंडा खेलते हुए वड़े होते हैं। इनमे से अधिकतर बड़े हो गये हैं और अब ये राजनीतिज्ञों के काम आ रहे हैं। झंडा और पोस्टर उठाने से लेकर नारा लगाने और जरूरत पड़ी तो बम फेंकने, हंगामा करने में शामिल हो गये हैं। इनका भविष्य अनिश्चित है, ये मात्र जीना चाहते हैं और जीने के लिए जितनी तिकड़मबाजी की जरूरत है, वह सभी करते

। आजकल बस्तियो के नौजवानो को अलग-अलग मुहल्लो के अनुसार अलग-अलग ग्रुपो मे बाँटकर 'डेस्ट्रक्टिव एलिमेंट्स' के कामो मे लाया जा रहा है, जिसके लिए इनको रोजाना मेहनताने से लेकर हर प्रकार की आवश्यक-अनावश्यक सुविधा भी मुहैया कर दी जाती है, जो ये चाहते है। और इनके पास वाले मकानो मे रहने वाले मध्यवित्त परिवारो की स्थिति कैदियो जैसी है या अछूतो की तरह की है, जो हर क्षण इनकी छाया से बचना चाहते है। कोई झगडा मोल लेना नही चाहते है, अत संबध भी बनाये रहते हैं। आसपास रहते हुए भी ये दोनो दो छतो के यात्री-से लगते हैं। किसी भी मौके पर इनका मिलना देखा नही जा सकता। खाई पटने के बजाय दिन पर दिन बडी होती जा रही है।

अब सियालदह और हावडा स्टेशनो तक आयें तो पता चलेगा कि हजारो की सख्या म रोज लोग आते-जाते हैं। स्टेशनो के प्लेटफार्मों व आसमान के नीचे फुटपाथो पर हजारो की सख्या म विस्थापित लोग परिवार सहित रह रहे हैं। खासकर सियालदह स्टेशन तो इन विस्थापितो से पूरा पट गया है। बल्कि नजदीक के गाँवो से भागकर आये हुए ग्रामीण, तरकारी, चावल और फल बेचने वालों की कतार शाम होते ही आसपास के फुटपाथो पर लग जाती है, फिर तो यात्रियो का चलना-फिरना भी रुक सा जाता है। यहाँ तक कि हावडा ब्रिज पर भी यह खरीद-फरोख्त चलता है। पुलिस या सरकार इनका भी कुछ नही बिगाड सकती क्योकि इनकी तादाद इतनी अधिक है कि कई-कई बार नियम और कानून के अतर्गत इन्हे फुटपाथो से हटाने की जिद्द नजरअदाज कर देना मुश्किल है। हर बार सरकार पलटी है और हर बार इनका काया-पलट होता रहता है। इसका प्रभाव अब इन पर भी नही पडता। अब तो इनके समर्थन मे सारी जनता भी शामिल हो गयी है और इस प्रकार का आदोलन किसी राजनीति के अतर्गत नही, पेट के लिए किया गया नियम-भग आदोलन मान लिया गया है।

बालीगज और टालीगज मे नयी स्कीम के अतर्गत नये-से-नये बनने वाले मकानो की कतार है और उनम रहने वाले सभी ऑफिसर टाइप के आदमी हैं, साथ ही वे सेठ किस्म के आदमी भी हैं, जिनकी कहीं-न-

मानसरोवर की लहरों में
हरिवंश वेदालंकार

मेघाच्छन्न आकाश मे, दर्द-भरा गीत गाते सोन-पक्षी हिमालय पार करने के लिए बढ रहे थे और हमारा दल भी सरयू और पिंडर नदी के साथ-साथ घुमाव के बाद घुमाव पार करता भयानक-रमणीय वनों से होता, उधर ही बढता जा रहा था। सात दिन चलकर मनस्यारी पहुँचे।

सायंकाल मेघ-मडित पर्वतो की ओर हम देख रहे थे। सहसा हमारे सामने एक ऊँचा विशाल श्वेत ककुद प्रकट हुआ। वह ककुद निर्जल श्वेत बादल का एक टुकडा-मात्र प्रतीत हुआ। मनस्यारी के वृद्ध जनो ने कहा—"यही हिमालय पर्वत है।" हमने कहा—"कभी नही, यह तो निश्चय ही एक मेघ-खड है। कही इतना ऊँचा भी कोई पहाड हो सकता है? देखिए, यह तो हमारे सिर पर झुका चला आ रहा है। यदि पहाड होता तो टूट न पडता?"

इतने मे वह ककुद फिर बादलों मे छिप गया। थोड़ी देर बाद, बादल तेजी से छँटने लगे। पर्दा हटा और आंख-मिचौनी के बाद, हिमालय अपने उसी शाश्वत-उज्ज्वल विराट् रूप मे प्रकट हुआ। चिर महान् हिमालय मानो हमारी नादानी पर खिलखिलाकर हँस रहा था, "बच्चो! तुमने तो मुझे पहचाना ही नही?" हम बड़े लज्जित हुए। युग-युग से अपने महान् रक्षक पिता को न पहचानकर हमने उसे छोटा क्यो समझ लिया था!

गौरीगगा के किनारे-किनारे भारत के अतिम गाँव मीलम की ओर चले। मार्ग बडी ऊँचाई से जा रहा था और नीचे बडी गहराई मे गौरी नदी बह रही थी। नदी पर रस्से का एक पुल था, जिस पर मीलम के बच्चे उछलते-कूदते, नाचते-गाते पार आ-जा रहे थे। किसी को गिरने का तनिक डर न था।

रात को निश्चिंत सोये थे कि एकाएक तोपो के छूटने का भयानक शब्द सुनायी पड़ा। "क्या हम किसी बडे युद्धस्थल के पास आ पहुँचे हैं?" तब वहाँ के लोगो ने बताया कि ये गौरी के ग्लेशियर फट रहे हैं और पहाड टूट-टूटकर गिर रहे हैं। मीलम के लोग ग्लेशियर को 'गल' या

'वामक' कहते हैं। सवेरे उठते ही गौरीगगा के उस ग्लेशियर को देखने चले। वह ग्लशियर तीन मील लवा और आध मील चौडा था। हिम-शिलाओ की मोटाई कही डेढ सौ फुट और कही पचास फुट थी, जिलम दो दो फुट चौडी, सैकडो फुट लबा दरारें, अजगरो-मगरमच्छो की तरह मुंह खोले हमे निगलने के लिए तैयार थी। यदि कोई उसमे गिरकर नीचे पहुंच गया तो आज के समृद्ध वैज्ञानिक युग मे भी किसी मे इतनी शक्ति नही कि उसकी रक्षा कर सके।

दो दिन बाद उन्ही गगनभेदी हिमशिखरो को पार करने के लिए आग बढे, जिनकी एक झलक हमे मनस्यारी मे मिली थी। उन शिखरो के पास से जाती हुई चँवर गायें, चींटियो से भी छोटी-छोटी दिखायी पड रही थी। बकरियाँ और भेडें तो दीखती ही नही थी। हम धीरे-धीरे आगे बढने लगे। हवा इतनी अधिक पतली हो गयी थी कि फेफडो मे साँस आ नही रही थी। दो गज ऊँचाई चढने मे ही दम फूल जाता था। श्वेत रेता की तरह दूर-दूर तक तुपार राशि फैली थी और उसकी समाप्ति का कही कोई लक्षण नही दीख रहा था। दोपहरी के चमकते सूर्य की किरणो द्वारा, उजली बर्फ से इतनी चकाचौंध उठ रही थी कि कुछ भी स्पष्ट दिखायी नही पडता था। आँखें अधी-सी हो गयी थी। ठीक दिखायी न पडने के कारण एक साथी बर्फ पर फिसला और खाई की ओर लुढक चला, किंतु प्रभु कृपा से किसी प्रकार बच गया। हिमाच्छन्न ऊँटा धुरा और जयती शिखरो को पार कर, कुगरी बिगरी की घाटी मे सोये।

अगले दिन प्रभात वेला मे हिमालय के ऊँचे गगनचुंबी शिखर पर चढकर सामने का जो दृश्य देखा, उससे आँखें परितृप्त हो गयी। हृदय गद्‌गद हो गया। पहचानते देर न लगी कि हिमालय पर्वतमाला से सौ मील दूर, सबसे अलग, सबसे निराला, सबसे भव्य बाईस हजार फुट ऊँचा यह जो पवत खडा है, यही कैलाश पर्वत है। श्वेत तुषार की धारियो से सजा, प्रकृति द्वारा निर्मित, परमेश्वर का दिव्य, कलात्मक और विशाल मदिर। वह सुनहरी धूप म कैसा चमक रहा था? मानो शिव ही शैल-रूप धारण कर चारो ओर शान से निहार रहे हो। वाता-वरण के रजोविहीन और अति स्वच्छ होने के कारण, कैलाश कितना

निकट प्रतीत हो रहा था। भारत मे अनेक बडे-बडे मदिर देखे थे, किंतु सब मदिरो की रचना के लिए आदर्श मदिर तो एक यही था।

हमारा दल सोत्साह कैलाश की ओर बढ़ चला। न कही कोई पग-डडी थी और न कोई मार्ग। पद्रह हजार फुट ऊँचाई का वह पठार, डेढ-दो फुट ऊँची थेलू नामक वनौपधियो से भरा था। चीड की तरह, भीतर तेल का अश होने के कारण यह थेलू बूटी हरी-भरी ही खूब अच्छी जलती है और रोटियाँ सेंकने पर उन्हे सुगधित भी बना दती है। इन्ही झाडियो मे कही-कही कस्तूरी-मृग भी दौड लगा रहे थे। शायद वे अपनी कस्तूरी की गध उन्ही बूटियो मे खोजते फिर रह थे।

हमारे पीछे दस चँवर-बैल भी चले आ रहे थे, जिनमे से आठ बैलो पर हमारी ढाई मास की भोजन-सामग्री, तबू, बिस्तर आदि लदा था। दो बैल सवारी के लिए खाली थ। एक मोड पार करते ही देखा कि सत्तर-अस्सी श्यामवर्ण जगली घोडे, हमारी ओर कान लगाये स्तब्ध खडे है। उनके शरीरो पर जेवरो की सुदर धारियाँ थी। एकाएक वे भाग चले। उन सबका एकसाथ भागना बड़ा मनोहारी प्रतीत हुआ। सबसे पीछे वाली घोडी के साथ एक नवजात बछेरा भी था। हम उसे पकडने के लिए दौडे। एक तीखे पत्थर से मेरा पैर बुरी तरह कट गया। चार दिनो तक मुझे तज ज्वर चढ़ा रहा, जिसके कारण कुछ दिन बाद कैलाश की बत्तीस मील की परिक्रमा करते हुए, महादेव की भाँति कई दिन तक बैल की सवारी करनी पडी।

उन हिम-पवतो पर जाडे का क्या ठिकाना। यद्यपि सर्दियो मे पह-नने के सभी गर्म वस्त्र हम अपने साथ ले गये थे, तथापि शीत से सारे दिन दाँत किटकिटात रहते थे। लाचारी म आठ बिस्तरो को जोडकर चार बिस्तर बनाये गये और दो-दो साथी मिलकर सोये। मैंने और भाई विद्याव्रत न बिस्तर मिलाकर एक किया, परतु ठिठुरते रात बीती।

कुहरे की धुध छा जान के कारण अगला दिन और भी ठडा हो गया, किंतु सायकाल तक भस्मासुर की ढेरी पहुँच गये और उस शात ज्वालामुखी के ऊपर तबू गाड दिया। भूमि खूब गर्म थी, अत: बडा

सुख अनुभव हुआ ।

अब हम कैलाश पवत की उपत्यका म पहुच चुके थे, जहाँ जाकर अहकार, लोभ काम आदि मनोविकार स्वयमेव नष्ट हो जाते है। देवाधिदेव महादेव के मित्र और यक्षो के राजा कुवेर की प्राचीन राजधानी अलकापुरी यही पर थी। कैलाश से उतरकर चद्रमौलि शिव, जब कभी इस देव नगरी के वाहर के उद्यान मे आ विराजते थे, तब उनक मस्तक पर शोभित चद्रमा की चाँदनी से अलकापुरी के सभी भवन उज्ज्वल हो उठते थे ।

किंतु अलकापुरी का वह पुराना वैभव, आज एक दूसरे ही रूप म हमारी आँखो के सामने आ रहा था । चारो ओर असीम, अखड शून्य शाति विराज रही थी । आकाश मे त्रयोदशी का निर्मल चद्र हँस रहा था । कैनाश के धवल शिखर से प्रतिक्षिप्त होकर चाँदनी, दूर दूर तक दूध बरसा रही थी ।

प्रात काल कैलाश की परिक्रमा प्रारभ कर दी । जब हम अठारह हजार फुट से अधिक ऊँचाई पर पहुँचे, अचानक देखा कि सामने से शकर और पार्वती चले आ रहे हैं । 'यह कहीं हमारी आँखो का भ्रम तो नही है ?' अपनी आँखो को मलकर हमने फिर से देखा । सचमुच ही उमा-महेश्वर चले आ रहे थे । दम्पति का वही विशाल देवोपम शरीर, दोनो के सिर पर लवे लवे केश । शिव का जटाजूट और उमा की वणी भी वैसी की वैसी । जब वे बिलकुल निकट आ पहुचे, तब हमारा भ्रम दूर हुआ । बडे डील-डौल वाले वे दोनो तिब्बत की खपा जाति के स्त्री-पुरुष थे । नील लोहित वर्ण और तेजस्वी आँखें । वे कैलाश के पुण्य दशन के लिए आये थे ।

हमने उनसे कैलाश की कदराओ मे रहने वाले योगियो और सिद्धो के सबध मे पूछा । हमारी बात को वे कठिनाई से समझ पाये । उन्होने बताया कि एक वर्ष पूव हमस भी अधिक विशाल देहधारी, तीन योगी यहाँ पास की गुफा म रहते थे, किंतु अब वे मानसरोवर के तट पर स्थित माधाता पवत की कदराओ मे चले गये हैं । अब भी एक सिद्ध इसी कैलाश शिखर के नीच हिम गुहा म रहते हैं, परतु कोई भी सासा-

रिक मनुष्य उन अगम्य कदराओ तक नही पहुच सकता ।

दो दिनो मे कैलाश की परिक्रमा पूर्ण कर, राक्षस ताल के किनारे-किनारे मानसरोवर की ओर चले । पद्रह मील चलने के बाद जब हम सत्तर मील घेरे वाले मानसरोवर के तट पर पहुँचे, पूर्णिमा का चद्रोदय हो रहा था । चद्र-दशन से आह्लादित समुद्र के समान, ३६४ फुट गहरे मानसरोवर म आठ-आठ फुट ऊँची लहरें उठ रही थी । तट पर बैठ हस भी मानसरोवर की उस तरगित शोभा को निहार रहे थे । अनत महिमा से विभूषित उस सरोवर को देखकर हमने अपने को धन्य माना । रात के बारह बजे तक हम आकाश मे मुस्कराते चद्रमा को और नीचे कल्लोल करते जल को देखते रहे ।

अद्धरात्रि के बाद सभी सो गये, किंतु मुझे नीद नहीं आ रही थी । ज्वर चढ़ा हुआ था । मन बडा चिंतित था कि इस दुर्गम यात्रा की अनगिनत कठिनाइयो को झलते हुए यहाँ तक आकर भी मानसरोवर में स्नान न कर पाऊँगा । शीतल जल से कही निमोनिया हो गया तो ? हाय ! मेरी तो यह सारी यात्रा ही व्यथ गयी ।

मन मे एक के बाद एक तर्क-वितर्क उठ रहे थे । अचानक भीतर से किसी ने कहा—'एक दिन तो मरना है ही । यदि अब भी यहाँ गोता न लगाया और लौट गये तो इसका पछतावा जीवन-भर रहेगा । दैवी-सयोग से उपस्थित इस श्रेय को किसी डर से छोडना कदापि उचित नही । गोता लगाओ । जो कुछ होगा, देखा जायेगा ।'

हृदय के सभी सशय कट गये । उसके बाद निश्चित सोया । बडे सबेरे उठा और मानसरोवर की उस शांत निस्तरंग छवि को देर तक देखता रहा । सूर्योदय होते ही सब-कुछ जगमगा उठा । हल्की नीलिमा से रजित माधाता पर्वत के हिम शिखर कितने अद्भुत, कितने भव्य और मनोहर लग रहे थे । उस सपूर्ण माधाता पवत की परछाई जब मानसरोवर के जल म पडती थी, तब उसकी शोभा का वाणी अथवा लेखनी द्वारा वणन किसी प्रकार सभव नही । थोडी ही देर मे सात-आठ जातियो के हसो की मडलियाँ जल के तल पर उतरने लगी और जल क्रीडा मे सलग्न हो गयी । ऐसा प्रतीत होने लगा कि माधाता पवत की गुफाओं के योगीजन और मानसरोवर के आस-पास के सिद्ध

जन ही हस-रूप धरकर निर्मल जल मे किल्लोल कर रहे हो।

मैंने कपडे उतारे और आगे बढकर सबसे पहले मानसरोवर मे छलांग लगा दी। अत्यत सुखद जल मे स्नान कर, हृदय को अपार हर्ष हुआ। आश्चर्य कि तत्काल मेरा ज्वर उतर गया और बहुत दिनो से परेशान करने वाला पैर का वह गहरा घाव भी भर चला।

इधर मैं मानस-स्नान से आनदित हो रहा था और उधर मेरे अन्य सहाध्यायी बधु मानसरोवर मे स्नान के पश्चात् हरी घास मे कबड्डी खेलने लगे और उस सरोवर के पश्चिमी तट से निकलने वाली पजाब की महानदी सतलुज को, कुछ देर अपनी शारीरिक शक्ति से रोकने के मस्ती-भरे प्रयास मे जुट गये। वहाँ पर सतलुज की चौडाई दो गज और गहराई डेढ़ फुट थी। नदी के आधे भाग मे एक ओर मनोहर और कृष्णचद्र लेटे हुए थे और शेष दूसरे भाग मे क्षितीश और विद्यारत्न। इन चारो ने सतलुज के तेज प्रवाह को घटे-भर तक रोके रखा।

हमारी चिर-कांक्षित कैलाश-मानसरोवर-दर्शन की मनोकामना पूर्ण हुई, इसे हमने अपना अहोभाग्य माना। अब हम वापस लौट चले। कुछ मित्रो ने लद्दाख और कश्मीर की ओर से लौटने की बात कही, परतु हमारी ढाई मास की भोजन-सामग्री समाप्त हो चली थी, अत अन्य छोटे मार्ग से लौटे। मातृभूमि-दर्शन की प्यास ऐसी तीव्रता से जगी कि हमारे पाँव स्वय उधर भागने लगे।

अब हमारा दल तेजी से अत्यत ऊँचे नीति-शिखर की ओर बढ़ता जा रहा था। अकस्मात् बादल घिरे और बर्फीले तूफान ने जोर पकड़ना शुरू किया। वह अधड हमे झकझोरने और धकेलने लगा। उन विकट ऊँचे शिखरो पर हवा के झोको मे न जाने कैसी प्रबल शक्ति आ गयी थी कि कई साथी उन झझाओ से धकेले जाकर खाइयो मे गिरते-गिरते बचे। कई के सिरो के साथ चमडे के फीतो से कसे हैट उड़कर दूर दर्रो मे जा गिरे, जिन्हे उठाकर लाने की हिम्मत किसी मे नहीं थी।

हम लोगो ने झुककर दोनों हाथो से भूमि का सहारा लिया और चौपायों की तरह चलकर पवन के झोको के थपेड़े सहते हुए चोटी की ओर बढ़ चले। अब हम निरतर विजयी होते जा रहे थे। प्रबल संघर्ष

हुए अत मे नीति शिखर के ऊपर जा पहुंचे। पवन एकाएक रुक गया, मानो वह अब तक हमारी शक्ति और धैर्य की ही परीक्षा कर रहा था। इस विजय से हमारे हृदयो मे छिपा स्वदेशानुराग मुखरित हो उठा और 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा', 'वदे मातरम्, सुजलाम् सुफलाम्' गीतो से दूर-दूर तक का हिमाचल का अचल गूँज उठा। सामने की पर्वतमालाओ के अत मे दीखने वाली भारतभूमि हमे सप्रेम निमंत्रित कर रही थी और पीछे तिब्बत का विस्तृत निर्जन मैदान हमे सादर विदाई दे रहा था।

तभी हमारी दृष्टि बहुत दूर झलकती सिंधु और ब्रह्मपुत्र की घाटियो पर पडी। हिमालय का भारत-भूमि के प्रति कितना प्रगाढ अनुराग है, इसकी एक अत्यत स्पष्ट झलक तब हमे मिली। अपने दक्षिणी भाग से निकलने वाली सभी नदियो का सारा का सारा जल हिमालय भारत को देता ही है, इसके साथ ही उत्तर की ओर से द्रवित होनेवाला सारा हिम-जल भी एक-एक बूंद करके सिंधु और ब्रह्मपुत्र मे पहुँचता है और इस प्रकार भारत को ही प्राप्त होता है। वन-सम्पदा और खनिज द्रव्य के रूप मे तो हिमालय सदैव भारत को अनत रत्न प्रदान करता ही रहता है। इसी कारण सिंधु और ब्रह्मपुत्र श्रद्धा से हिमालय के कठ मे पुष्पहार-सी पहनाती हुई मैदानो मे उतरती हैं।

उन हिम-शिखरो पर विश्राम करते हुए अधिक समय बिताना खतरे से खाली नही था, अत बद्रीनाथ पहुंचने का लक्ष्य बनाकर हमने मान-सरोवर और कैलाश को नमस्कार किया और मलारी की ओर उतरने लगे। जब मलारी पहुंचे, अस्ताचल का सूर्य सपूर्ण घाटी पर सोना बिखेर रहा था।

मलारी के चारो ओर अपार नैसर्गिक सुषमा देखकर हृदय प्रफुल्लित हो उठा। कैसी लुभावनी थी यहाँ की वनश्री! एक ओर देवदारु के सघन कानन लहरा रहे थे और दूसरी ओर विष्णुगगा की निर्मल नीली धार गभीर गीत गाती बह रही थी। यहाँ के वनो मे सर्वत्र दिव्य जडी बूटियों की प्रचुरता थी। हमने यही पर पहली बार अँधेरे म चमकने वाली वह बूटी देखी थी, जिसकी रोचक चर्चा महाकवि कालिदास ने अपने कुमार-सभव, रघुवश आदि काव्यो म अनेक शृगारिक प्रसगों म की है। सजी-

बनी बूटी भी यही कही अवश्य होगी । एक ग्रामवासी ने अधटूटे पर्वत की ओर सकेत करके कहा—"हनुमान लक्ष्मण के लिए इसी पहाड़ का शिखर उखाडकर ले गये थे ।" मलारीवासियो से हमने सजीवनी के सबध मे पूछा किंतु वे निश्चित रूप से कुछ न बता सके ।

मलारी से बद्रीनाथ पहुँचे और वहाँ से हरिद्वार की ओर चले । अलकनदा के साथ-साथ सुदर मार्ग था । न मालूम हमारे शरीर मे इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी थी कि प्रतिदिन लगभग चालीस मील चल चुकने पर भी तन और मन उत्साह से परिपूर्ण रहता था ।

अलकनदा की गर्म घाटी, कडी धूप के कारण हमे व्यथित कर रही थी । प्यास बढ़ती चली जा रही थी, किंतु पानी बडी गहराई मे बह रहा था । वहाँ तक खडी चट्टानो से उतरना भयावह था । देवप्रयाग मे जब भागीरथी गगा और अलकनदा का मनोरम सगम देखा, तब मन स्नान के लिए मचलने लगा । यौवन के उन्माद मे अलकनदा तट की ऊँची शिला पर चढा और वहाँ से चालीस फुट गहरे जल मे 'गुडम' ।

परतु, यह कैसी दुर्बुद्धि मुझ पर सवार हो गयी कि मैं जाँच किये बिना ही अज्ञात प्रवाह मे कूद पडा । जवानी की गर्मी तो हिम-शीतल जल को छूते ही ठडी पड चुकी थी । भँवर मे पडकर चक्कर पर चक्कर खाने लगा । नदी का सारा जल भयानक रूप से खौल रहा था । कभी सिर नीचे तो पाँव ऊपर और पाँव नीचे तो सिर ऊपर । ऐसा लगा कि कोई मुझे चर्खी पर चढाकर चक्कर पर चक्कर खिला रहा है । तैरने का अच्छा अभ्यास रहने पर भी इस उबलते जल मे अपने शरीर पर कुछ वश न रहा । बुरी तरह दम घुटा जा रहा था । भँवर ने धारा मे धकेल दिया और वह बलिष्ठ प्रवाह चट्टानो पर घुड़दौड करता मुझे ले भागा । ऐसा प्रतीत हुआ कि अब मेरी अतिम जल-समाधि लगने ही वाली है ।

थोडी दूर जाने पर उस धारा ने मुझे तट की एक शिला की ओर उछाल फेंका और इस प्रकार मेरी जान बच गयी । कुछ देर तक मैं उसी शिला पर बैठा आँखें मूँदे उस लीलामय जगन्नियंता की [illegible] करता रहा, जब होश ठिकाने हुए, तब हरिद्वार की ओर चल

राजस्थानी कला और साहित्य की गौरवपूर्ण परंपरा

अगरचद नाहटा

राजस्थान एक विशाल और गौरवशाली प्रदेश है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व यह प्रदेश कई राज्यो मे विभक्त था। उन राज्यो या प्रदेशो की सीमा भी सदा एक-सी नही रही। प्राचीनकाल मे राजस्थान के विभिन्न भागो के अलग-अलग कई नाम थे जिनमे जागल, सपादलक्ष, मत्स्य, मेदपाट, वागड, मरु, माड, गुर्जरत्रा आदि कई नाम तो काफी प्रसिद्ध हैं। ओझा जी ने इनके अतिरिक्त कुरु, सूरसेन, राजन्य, शिवि, प्राग्वाट, अर्बुद, वल्ल, त्रवणी, मालव नाम भी बतलाये हैं। अग्रेजो ने इन राज्यो के समूह का नाम 'राजपूताना' रखा। जार्ज टॉमस ने अपने मिलिट्री मैमॉयर्स मे 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग सवत् १९५७ मे किया। तदनतर जेम्स कर्नल टाड ने राजस्थान के राज्यो का सर्वप्रथम इतिहास, एक-सग्रह ग्रथ के रूप मे लिखा और उसमे इन राज्यो के समूह का नाम 'राजस्थान' प्रयुक्त किया गया। टाड के 'राजस्थान का इतिहास' नामक ग्रथ से देश और विदेश मे इस प्रदेश की गौरव गाथा विशेष रूप से प्रसिद्धि म आयी।

राजस्थान का प्राचीन इतिहास बहुत ही सरस एव महत्त्वपूर्ण है। सिंधु सभ्यता से भी पहले से यहाँ का इतिहास प्रारभ होता है। राजस्थान के कई स्थानो मे इधर कुछ वर्षों मे खुदाई हुई है और उससे यहाँ की प्राचीन सस्कृति पर अभूतपूर्व प्रकाश पडा है। पुरातत्व की दृष्टि स राजस्थान बहुत समृद्ध है, क्योकि अन्य प्रदशो की अपेक्षा मुसलमानी साम्राज्य के समय भी यह अधिक सुरक्षित रहा। प्राचीन मदिरो व मूर्तिया, शिलालेखो एव हस्तलिखित ग्रथो की जितनी अधिक थाती राजस्थान म है, उतनी अन्यत्र शायद ही हो।

साहित्य, सगीत और कला के क्षेत्र म भी राजस्थान का स्थान उल्लेखनीय है। यहाँ के वीरो, सतो, सतियो, साहित्यकारों एव कलाकारों की परपरा अवर्णनीय है। वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला की दृष्टि स भी यहाँ का इतिहास बहुत सपन्न रहा है और सतसबधी

पर्याप्त सामग्री आज भी यहाँ सुरक्षित है। जैसलमेर, रणकपुर, देलवाडा और पारानगर आदि स्थानो के मदिर अपनी वास्तुकला एव मूर्तिकला के लिए जगत्प्रसिद्ध हैं और यहाँ की कलाप्रियता एव कलामर्मज्ञता का यशोगान कर रहे हैं। वास्तविकता तो यह है कि राजस्थान का प्रत्येक कोना देवलो एव मदिरो से भरा पडा है और आज अपनी जर्जरित दशा मे अपने उद्धार एव सरक्षण की बाट जोह रहा है। राजस्थानी चित्रकला भी भारतीय चित्रकला की महत्त्वपूर्ण कडियो मे से एक है। नि सदेह अजता एव एलोरा की अद्वितीय कला-परपरा को वहन करने का श्रय राजस्थानी चित्रकला को ही है। राजस्थानी चित्रकला का उद्भव और विकास राजस्थान प्रात मे ही हुआ तथा यह अन्य भारतीय शैलियो से प्रभावित होती हुई अपना स्वतत्र विकास करती रही। इसके विकास एव सवर्द्धन मे राजस्थान की भौगोलिक रचना और यहाँ के इतिहास का प्रमुख योग रहा है। वीर राजपूतो की वीर भूमि के कण-कण मे उनके शौर्य की गाथाएँ, लोक-कथाएँ, सभ्यता एव सस्कृति के पदचिह्न काव्य, चित्रकला, स्थापत्य आदि के रूप मे यत्र-तत्र प्रचुर परिणाम मे बिखरे पडे हैं।

विशुद्ध राजस्थानी चित्रकला का प्रारभ १५वी सदी के उत्तरार्द्ध से १६वी सदी के बीच १५०० ई० के लगभग माना जाता है। तब से लेकर १६वी सदी के उत्तरार्द्ध तक राजस्थानी चित्रकला अनेक शैलियो मे पल्लवित होती रही है। धार्मिक प्रतिष्ठानो, कवियो, चित्रकारो, सगीतज्ञो और शिल्पाचार्यों के दरबारी जमघट मे राजस्थानी चित्रकला ने विभिन्न रियासती शैलियो को जन्म दिया, विकसित किया और १७वी-१८वी सदी मे अपने चरमोत्कर्ष स्वरूप को प्राप्त किया जिससे इसका समन्वित स्वरूप सामने आया। तत्कालीन अधिकाश रियासतो के चित्रकारो ने जिन-जिन तौर-तरीको का प्रयोग अपने चित्र निर्माण मे किया, स्थानानुसार अपनी मौलिकता, भौगोलिक परिस्थितियो, तथा सामाजिक विशेषताओ के कारण वहाँ की चित्रशैली कहलायी। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थानी चित्रकला अनेक शैलियो का समन्वित रूप है जिनमे मेवाड़, किशनगढ़, बूँदी, जयपुर, बीकानेर, मारवाड, कोटा, अलवर आदि शैलियाँ अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। इन शैलियो मे मेवाड,

किशनगढ और बूँदी तो विश्वप्रसिद्ध हैं।

राजस्थानी चित्रकला अनेक समकक्ष शैलियो से प्रभावित होने के बावजूद भी अपना मौलिक सविधान रखती है। निम्नलिखित कतिपय विशेषताओ के आधार पर उसके सविधान को स्पष्ट किया जा सकता है :—

(१) लोक-जीवन की निकटता—भित्ति-चित्रण की परपरा मे विकसित राजस्थानी चित्रकला लोक-जीवन से घनिष्ठ रूप मे जुडी रही है। विषय वस्तु के चुनाव मे लोक-भावनाओ को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। दरबारी सस्कृति मे पनपने वाली चित्रकला मे भी यह तत्त्व विद्यमान हैं। धार्मिक एव सास्कृतिक स्थलो पर विकसित होनेवाली चित्रकला तो जन-जीवन की भावनाओ के बहुत ही निकट रही है।

(२) भाव-प्रवणता की अधिकता—राजस्थानी चित्रकला रस-प्रधान है, अत उसमे भावो का मनोवैज्ञानिक चित्राकन हुआ है। भक्ति और शृगार का चित्रण विशेष दर्शनीय है। राधा-कृष्ण की माधुर्य भावना का विस्तृत एव गहन चित्रण इस कला की प्रमुख विशेषता है।

(३) विषयवस्तु एव रगो की विविधता—विषयवस्तु की दृष्टि से राजस्थानी चित्रकला की विविधता अभूतपूर्व है। राधा-कृष्ण की अनेक लीलाओ, महाभारत तथा भागवत पुराण, रामकथा, नायक-नायिका भेद, राग-रागिनी, बारहमासा आदि अनेक विषयो पर राजस्थानी चित्रकला आधारित है। काव्य का चित्रण तो इस शैली की अपनी ही विशेषता है।

(४) देशकाल एव प्राकृतिक परिवेश की अनुरूपता—राजपूत कालीन सभ्यता और सस्कृति का सजीव चित्रण राजस्थानी चित्रकला म विशेष द्रष्टव्य है। दुर्ग, प्रासाद, मदिर, दरबार, हवेलियो म राजपूती वैभव को बारीकी के साथ चित्रित किया गया है। साथ ही प्रकृति के बहुरगी परिवेश को भी राजस्थानी चित्रकला म सफल अभिव्यक्ति मिली है। कमला से आपूरित सरोवर, मेघाच्छन्न आकाश मे सर्पाकार विद्युत्-रेखाएँ, उपवन, पेड-पौधे, फूल-पत्तियाँ, पक्षी-भर निकुज, सिंह, हाथी आदि का मनोहारी अकन राजस्थानी चित्रकला का अपना वैशिष्ट्य है।

साहित्य की दृष्टि से तो यह प्रदेश एक अथाह सागर है। हस्त-लिखित ग्रथ-भडार यहाँ सैकडो की सख्या म हैं, जिनम अमूल्य साहित्य

और कला की लाखो प्रतियाँ सगृहीत है। यो तो राजस्थान के अनेक ग्राम नगरो मे हस्तलिखित प्रतियो के सग्रह बिखरे पडे हैं, पर कुछेक सग्रह तो अत्यधिक प्रसिद्ध है। राजस्थान के ज्ञान भडारो मे सर्वाधिक प्रसिद्धि जैसलमेर के बडे ज्ञान-मडार को मिली है। देश और विदेश के कई विद्वानो ने यहाँ पहुँचकर इस ज्ञान-भडार का निरीक्षण किया है और विवरण छपवाया है। वृहद् ज्ञान-भडार मे ४२६ ताडपत्रीय प्रतियाँ और २२५७ कागज पर लिखी हुई प्रतियाँ इतिहास और कला की दृष्टि से विशेष महत्त्व की हैं। जैसलमेर मे और भी अनेक ग्रथ-भडार है जहाँ राजस्थान की धरोहर सुरक्षित है।

हस्तलिखित प्रतियो की सख्या की दृष्टि से बीकानेर के ज्ञान-भडार सबसे अधिक समृद्ध हैं। मैंने गत चालीस वर्षों मे लगभग तीस हज़ार से भी अधिक प्रतियाँ अभय जैन ग्रथालय मे सगृहीत की हैं। इसी तरह श्री पूज्य जी, जयचद जी, मोतीचद खजाची आदि का सग्रह जो अब राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की बाकानेर शाखा मे रखा गया है, वहाँ लगभग २० हज़ार प्रतियाँ सगृहीत हो चुकी है। अनूप सस्कृत पुस्तकालय का नाम भी इस दृष्टि से कम महत्त्व नही रखता।

इस दिशा मे राजस्थान सरकार ने प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान स्थापित कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसका मुख्य कार्यालय जोधपुर मे है। मुनि जिनविजयजी के तत्त्वावधान मे यहाँ लगभग ४० हज़ार प्रतियो का सग्रह हो चुका है। जयपुर, टोक, अलवर, उदयपुर, चित्तौड, बीकानेर आदि स्थानो पर इसकी शाखाएँ हैं। समस्त शाखाओ को मिलाकर लगभग एक लाख प्रतियाँ इस सस्थान के पास होगी।

राजकीय सग्रहालयो म सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण महाराजा जयपुर का पोथीखाना है जिसमे विविध विषयो की १८ हज़ार प्रतियाँ हैं। जयपुर के दिगबरशास्त्र भडारो मे करीब १५ हज़ार प्रतियाँ होगी। जोधपुर म प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के अतिरिक्त राजस्थानी शोध सस्थान, पुस्तक प्रकाश तथा अन्य सग्रहालयो मे कई हज़ार प्रतियाँ है। उदयपुर के सरस्वती भवन, साहित्य सस्थान, दिगवर, श्वेताबर जैन भडारो म कुल मिलाकर १५ हज़ार प्रतियाँ होगी।

वास्तविकता ता यह है कि राजस्थान के साहित्य का सग्रह केवल

राजस्थान तक ही सीमित नही रहा, वह विभिन्न माध्यमो से देश और विदेशो के विभिन्न कोनो मे पर्याप्त मात्रा मे पहुँच चुका है।

राजस्थान की साहित्यिक परपरा का प्रारभ बहुत प्राचीन समय से होता है । राजस्थान के एक भाग मे सरस्वती नदी बहती थी। कहते हैं यहाँ रहते हुए ऋषि-मुनियो ने वेदो की ऋचाएँ लिखी । यहाँ के अनेक तीर्थस्थल एव प्राचीन नगर साहित्य-सृजन के प्रमुख स्थान रहे हैं।

राजस्थान मे अनेक भाषाओ और विषयो को लेकर लिखे गये इस साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१ भाषाओ के भेद के अनुसार—प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श, हिंदी और राजस्थानी इन पाँच भाषाओ मे समय-समय पर साहित्य निर्माण होता रहा है।

२ विषय वैविध्य की दृष्टि से—राजस्थान के साहित्य मे विषय वैविध्य तो इतना अधिक रहा है कि यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि यहाँ के साहित्यकारो ने जीवनोपयोगी किसी भी विषय को अछूता नही छोडा है।

३. तीसरा वर्गीकरण रचयिताओ की भिन्नता को लेकर किया जा सकता है। जैसे—राजाओ और उनके आश्रित विद्वानो और कवियो का साहित्य, ब्राह्मण आदि वैदिक या पौराणिक परपरा के विद्वानो द्वारा धर्मशास्त्र, तत्र-मत्र आदि विषयो का साहित्य, जैन आचार्यों द्वारा रचित जैन धर्म सबधी एव सर्वजनोपयोगी साहित्य।

४ चौथे वर्गीकरण मे सत एव भक्त कवियो का साहित्य रखा जा सकता है जिन्होने अपने साहित्य की अजस्र धारा से न केवल राजस्थान वरन् भारत के अन्य प्रातो को भी रसाप्लावित किया।

५ पाँचवें वर्गीकरण मे चारण-साहित्य और लोक-साहित्य को रखा जा सकता है। चारण जाति ने हजारो कवि दिये हैं और लोक-साहित्य के निर्माता तो आज तक अज्ञात रहकर भी सुहृदयो के दिल की धड़कनो मे विराजमान हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन द्वारा सक्षेप मे राजस्थानी कला और साहित्य की गौरवपूर्ण परपरा का इस निबध मे सकेतमात्र ही प्रस्तुत जा सका है। साहित्य और कला के मर्मज्ञ रसिकजन अपने अथक

प्रयासो और विस्तृत अध्ययन द्वारा उनकी गहराई और विस्तार को और अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। कहना न होगा कि राजस्थान की सास्कृतिक धरोहर असीम है और उसकी महिमा अभूतपूर्व। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसकी महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है—

"जिस राजस्थान की महिमा का पार चद्र और सूरजमल की लेखनी भी पूरी तरह पा नही सकी, वहाँ के क्षात्रधर्म का सपूर्ण चित्र कौन खीच सकता है ? जब सरस्वती नदी समुद्र तक बहती थी, उस पुण्य युग मे यह मरुभूमि सलिलार्णव के नीचे छिपी हुई थी। विधाता के विशेष प्रसाद से वीर-रस ने अपने निवास के लिए इस भूखड को सागर-गर्भ से प्राप्त किया था। यहाँ के रण-बाँकुरे नर-पुगवो और आर्य-देवियो के उदार चरित्रो का गायन करके कविगण अनत काल तक अपनी लेखनी को पवित्र करते रहेगे। यहाँ का प्रत्येक स्थान एक-न-एक वीर की कीर्तिगाथा से सबद्ध है। यहाँ पद-पद पर आर्य नारियो ने सहस्रो की सख्या मे सनातन सतीत्व की रक्षा के लिए हँसते-खेलते आत्मबलि दी है।···इसी राजस्थान मे विराट नगर था, जहाँ पाडुकुल के वशततु को अविच्छिन्न रखने वाली उत्तरा का जन्म हुआ था। यही दक्षिण मे महाकवि माघ की जन्मभूमि श्रीमाल नगरी है ··पद्मिनी और दुर्गावती की जन्मभूमि को आर्य सतान अब भी श्रद्धा के साथ प्रणाम करती है। भक्ति-स्रोतस्विनी मीराबाई का स्मरण करके भारतीय महिलाओ के मुखमडल आज भी प्रसन्नता से जगमगा उठते हैं।"

अत मे जहाँ तक ताँगा जा सका वहाँ तक ताँगे से, उसके उपरान्त कुछ दूर पैदल चलकर हम एक सफेद पुते हुए मकान के सामने पहुँचे जो अति साधारण और असाधारण के बीच की मध्यम स्थिति रखता था। कहलाया, प्रयाग से महादेवी आयी हैं। सोचा यदि गृह-स्वामी प्रसादजी होंगे तो मेरा नाम उनके लिए सर्वथा अपरिचित न होगा और यदि कोई सुँघनी साहु ही हैं तो शिष्टाचार के नाते ही बाहर आ जायेंगे।

प्रसादजी स्वय ही बाहर आये। उनका चित्र उन्हे अच्छा हृष्ट-पुष्ट स्थविर बना देता है, पर स्वय न वे उतने हृष्ट जान पडे और न उतने पुष्ट ही, न अधिक ऊँचा न नाटा, मझोला कद, न दुबले न स्थूल, छरहरा शरीर, गौर वर्ण, माथा ऊँचा और प्रशस्त, बाल न बहुत घने न विरल, कुछ भूरापन लिये काले, चौडाई लिये मुख, मुख की तुलना में कुछ हल्की सुडौल नासिका, आँखो मे उज्ज्वल दीप्ति, होठो पर अनायास आने वाली बहुत स्वच्छ हँसी, सफेद खादी का धोती-कुरता। उनकी उपस्थिति मे मुझे एक उज्ज्वल स्वच्छता की वैसी ही अनुभूति हुई जैसी उस कमरे मे सभव है जो सफेद रग से पुता और सफेद फूलो से सजा हो।

उनकी स्थविर जैसी मूर्ति की कल्पना खडित हो जाने पर मुझे हँसी आना स्वाभाविक था। उस पर जब मैंने अनुभव किया कि प्रसादजी ही सुँघनी साहु हैं तब हँसी ही रोकना असभव हो गया। उन दिनों मैं बहुत अधिक हँसती थी और मेरे सबध मे सबकी धारणा थी कि मैं विषाद की मुद्रा और डबडबायी आँखो के साथ आकाश की ओर दृष्टि किये हौले-हौले चलती और बोलती हूँ।

मेरी हँसी देखकर या मुझे मेरे भारी-भरकम नाम से विपरीत देख कर प्रसादजी ने निश्छल हँसी के साथ कहा—'आप तो महादेवी जी नही जान पडती।' मैंने भी वैसे ही प्रश्न मे उत्तर दिया—'आप ही कहाँ कवि प्रसाद लगते हैं जो चित्र मे बौद्ध भिक्षु जैसे हैं।'

उनकी बैठक मे ऐसा कुछ नही दिखायी दिया जिसे सजावट के अतर्गत रखा जा सके। कमरे मे एक साधारण तख्त और दो-तीन सादी कुर्सियाँ, दीवाल पर दो-तीन चित्र, अलमारी मे कुछ पुस्तकें। यदि इतने महान् कवि के रहने के स्थान मे मैंने कुछ असाधारणता पाने की कल्पना की होगी तो मेरे हाथ निराशा ही आयी।

उन दिनो वे कामायनी का दूसरा सग लिख रहे थे। क्या लिख रहे हैं, पूछने पर उन्हान प्रथम सग का कुछ अश पढकर सुनाया। वेदो म अनक कथानक बहुत नाटकीय हैं और उनम स किसी पर भी एक अच्छा महाकाव्य लिखा जा सकता था। उन्होने एसा कथानक क्यो चुना है जिसम कथासूत्र बहुत सूक्ष्म है? ऐसी जिज्ञासाओ के उत्तर मे उन्होने कामायनी सबधी अपनी कल्पना की कुछ विस्तार से व्याख्या की।

उनकी धारणा थी कि अधिक नाटकीय कथाओ की रेखाएँ इतनी कठिन हो गयी हैं कि उन्ह अपने दाशनिक निष्कष की ओर मोडना कठिन होगा। युग की किसी समस्या को प्राचीन कलेवर मे उतारना तभी सभव हो सकता है, जब प्राचीन मिट्टी लोचदार हो। जो प्राचीन कथा कठिन होकर एक रूप रेखा पा लेती है, उसमे वह लचीलापन नही रहता जो नयी मूर्तिमत्ता के लिए आवश्यक है। इद्र का व्यक्तित्व उनकी दृष्टि मे बहुत आकर्षक और रहस्यमय था, परतु उसकी नाटकीय और बहुत कुछ रूढ कथावस्तु कामायनी के सदेश को वहन करने मे असमर्थ थी।

ऋग्वेदकालीन वरुण के व्यक्तित्व और विकास के सबध मे भी उन्हाने अपना विश्लेषण दिया। वैदिक साहित्य और भारतीय दशन मेरा प्रिय विषय रहा है, अत तत्सबधी बहुत सी जिज्ञासाएँ मेरे लिए स्वाभाविक थी। परतु सभी चर्चाओ मे मैने अनुभव किया कि प्रसादजी दोनो के सबध मे आधुनिकतम ज्ञान ही नही, अपनी विशष व्याख्या भी रखते हैं। वे कम शब्दो मे अधिक कह सकने की जैसी क्षमता रखते थे, वैसी कम साहित्यकारो मे मिलेगी।

उनके बहुश्रुत होने का प्रमाण तो स्वय उनका साहित्य है, परतु दशन, इतिहास, साहित्य आदि के सबध मे, इतने कम शब्दो मे इतने सहज भाव से वे अपने निष्कर्ष उपस्थित कर सकते थे कि श्रोता का विस्मित हो जाना ही स्वाभाविक था।

लौटने का समय देख जब मैंने विदा ली तो ऐसा नही जान पडा कि मैं कुछ घटो की परिचित हूँ। प्रसादजी ताँगे तक पहुँचाने आये और हमारे दृष्टि स ओझल होने तक खडे रहे। अपने साहित्यिक अग्रज को फिर देखने का मुझ सुयोग नही प्राप्त हो सका। वे कही आते-जाते नहीं थ और मैंने एक प्रकार से क्षेत्र-सन्यास ले लिया था।

और उसी बीच प्रसादजी के अस्वस्थ होने का समाचार मिला, पर बहुत दिनो तक किसी को यह भी ज्ञात नहीं हो सका कि रोग क्या है। अत मे क्षय की सूचना भी हिंदी-जगत् के लिए चिंता का कारण नही बन सकी। हमारे वैज्ञानिक युग मे नितात साधनहीन के लिए ही यह रोग मारक सिद्ध होता है। प्रसादजी क साथ साधनहीनता का कोई सबध किसी को ज्ञात नही था, इसी से अत तक सबको उनके स्वस्थ होने का विश्वास बना रहा।

जब कामायनी का प्रकाशन हो चुका था और हिंदी-जगत् एक प्रकार से हर्षोत्सव मना रहा था, तब उनके महाप्रयाण की वेला आ पहुँची।

मैं स्वय कई दिन से ज्वरग्रस्त थी। एक बधु ने भीतर सदेश भजा कि वे अत्यत आवश्यक सूचना लाये है। किसी प्रकार उठकर मैं बाहर के दरवाजे तक पहुँची ही थी कि सुना प्रसादजी नही रहे। कुछ क्षण उनके कथन का अर्थ समझने मे लग गये और कुछ द्वार का सहारा लेकर अपने-आपको सँभालने मे।

बार-बार उनका अतिम दर्शन स्मरण आने लगा और साथ-ही साथ उस देवदारु का, जिसे जल की क्षुद्र धारा ने तिल-तिल काटकर गिरा दिया।

प्रसाद का व्यक्तिगत जीवन अकेलेपन की जैसी अनुभूति देता है, वैसी हमे किसी अन्य समसामयिक साहित्यकार के जीवन के अध्ययन से नही प्राप्त होती।

उन्हे एक सपन्न पर ऋणग्रस्त प्रतिष्ठित परिवार म जन्म मिला और भाई-बहिनो म कनिष्ठ होने के कारण कुछ अधिक माता म स्नेह-दुलार प्राप्त हो सका। किशोरावस्था मे वे एक ओर शारीरिक स्वास्थ्य के लिए बादाम खाते और कुश्ती लडते रहे और दूसरी ओर मानसिक विकास के लिए कई शिक्षकों स सस्कृत, फारसी, अग्रेजी आदि का ज्ञान प्राप्त करते रहे। पर इसी किशोरावस्था म उन्हे पारिवारिक कलह की कटुता का अनुभव हुआ। इतना ही नहीं, उनके किशोर कधो पर ही पारिवारिक उत्तरदायित्व, अव्यवस्था और ऋण का भार आ पडा। ऐसा लगता है यही दुर्वह भार, सारे दुलार, स्वास्थ्य और विद्या का स्वाभाविक प्राप्य था।

तरुणाई म ही वे माता पिता, बडे भाई, दो पत्नियाँ और इकलौत

पुत्र की वियोग-व्यथा झेल चुके थे। यह बचपन से तारुण्य के अत तक फैली हुई विद्रोह की परपरा उनके भावुक मन पर कोई दुखनेवाली चोट नही छाड गयी थी, ऐसा कथन मनुष्य के स्वभाव के प्रति अन्याय होगा और यदि वह मनुष्य एक महान् साहित्यकार हो तो इस अन्याय की मात्ना और अधिक हो जाती है।

बहुत सभव है कि सब प्रकार के अतरग बहिरग सघर्षों मे मानसिक सतुलन बनाये रखने के प्रयास मे ही उन्हे उस आनदवादी दर्शन की उपलब्धि हो गयी हो, जिसके भीतर करुणा की अत सलिला प्रवाहित है।

चाँदनी मे धुले ज्वालामुखी के समान ही उनके भीतर की चिता उनके अस्तित्व को क्षार करती रही हो तो आश्चर्य नही। उनकी अत-र्मुखी वृत्तियाँ या रिजर्व भी इसी ओर सकेत करता है। पारिवारिक विरोध और प्रतिष्ठा की भावना के वातावरण मे पलनेवाले प्राय गोपनशील हो ही जाते है। उसके साथ यदि कोई गभीर उत्तरदायित्व हो तो यह सकोच उनके मनोभावो और बाह्य वातावरण के बीच मे एक आग्नेय रेखा खीच देता है। कण कण कटती शिला के समान उनकी जीवनी शक्ति रिसती गयी और जब उन्होने जीवन के सब सघर्षों पर विजय प्राप्त कर ली, तब वे जीवन की बाजी हार गये, जिसमे हार जाने की सभावना भी उनके मन मे नही उठी थी।

क्षय कोई आकस्मिक रोग नही है, वह तो दीर्घ स्वास्थ्यहीनता की चरम परिणति ही कहा जा सकता है। अस्वस्थ रहते हुए भी वे एक ओर अपनी लौकिक स्थिति ठीक करने मे सलग्न थे और दूसरी ओर कामायनी म अपने सपूर्ण जीवन-दर्शन को भावात्मक अवतार दे रहे थे।

सभवत रोग के निदान ने उनके सामने दो विकल्प उपस्थित किय। ऐसी चिकित्सा प्रचुर व्यय-साध्य होती है और कभी-कभी रोग का अत रोगी के साथ होने पर परिवार वो आत्मीय जन को वियोग व्यथा के साथ विपन्नता का भार भी वहन करना पडता है।

उनके सामने अकेला किशोर पुत्र था और अपने किशोर जीवन के सघर्षों की स्मृति थी। यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि वे अपने किशोर पुत्र के भविष्य पर किसी दुर्वह भार की काली छाया डालकर अपने इतिहास की पुनरावृत्ति नही करना चाहते थे। तब दूसरा विकल्प यही

हो सकता था कि वे पतवार फेंककर तरी समुद्र म इस प्रकार छोड दें कि वह दिशाहीन वहती हुई जीवन मरण के किसी भी तट पर लग सके। उन्होंने इसी को स्वीकार किया और अपने अदम्य साहस और आस्था से मृत्यु की उत्तरोत्तर निकट आती पगचाप सुनकर भी विचलित न हुए।

पर जीवन और मृत्यु के सघर्ष का यह रोमाचक पृष्ठ हमारे मन म एक जिज्ञासा की पुनरावृत्ति करता रहता है। क्या इतने बडे कलाकार का कोई ऐसा अतरग मित्र नही था जो इस विषम द्वद्व के बीच मे खडा हो सकता।

सभवत घर मे ऐसा कोई बडा व्यक्ति नही था जिसका निणय निर्विवाद माय होता, सभवत किशोर पुत्र के लिए पिता के हठ पर विजय पाना कठिन था। पर क्या ऐसे आत्मीय बधु का भी उन्हें अभाव था जो उनके दुराग्रह को अपने सत्याग्रही विरोध से परास्त कर क्षय के चिकित्सा-केंद्रो तथा विशपज्ञो का सहयोग सुलभ कर देता ?

कार्य से कारण की ओर चलें तो विश्वास करना होगा कि नही था। सपन्न, मधुभापी और हँसमुख व्यक्ति के साथ आनदगोष्ठी मे बैठकर हँस लेना सबके लिए सहज हो सकता है, परतु किसी सक्रामक रोग मे ग्रस्त मित्र की निष्प्रभ आँखो से मृत्यु के सदेश के अक्षर पढ़कर उसे बचाने के लिए कोई बाजी लगाना कठिन हो जाता है।

प्रसाद जैसे मनस्वी और सकोची व्यक्ति के लिए किसी से स्नेह और सहानुभूति की याचना भी सभव नही थी। चद्रगुप्त म सिंहरण के निम्न शब्दो मे बहुत-कुछ प्रसाद के मन की बात भी हो तो आश्चय नहीं

'अपन से बार-बार सहायता करन के लिए कहने म मानव-स्वभाव विद्रोह करन लगता है। यह सौहार्द और विश्वास का सुदर अभिमान है। उस समय मन चाहे अभिनय करता हो सपप स बचने का, किंतु जीवन अपना सग्राम अधा होकर लडता है। कहता है—अपने को बचाऊँगा नहीं, मेरे जो मित्र हो आवें और अपना प्रमाण दें।'

सभव है यदि प्रसाद का जीवन भी, अपना सग्राम अध होकर लडा हो और उमन अपने-आपको बचाने का कोई प्रयत्न न किया हो। उन्हें किसी की प्रतीक्षा रही या नहीं इस आज कौन बता सकता है। व्यावहारिक जीवन म एक हित दूसरे के हित का विरोधी भी हो सकता है। एक व्यक्तियो की प्रसाद सबधी स्मृति उनकी अपनी चोटों की स्मृति

अधिक हो सकती है, प्रसाद की विशेषताओं की कम।

भारतेंदु के उपरात प्रसाद की प्रतिभा ने साहित्य के अनेक क्षेत्रों को एक साथ स्पर्श किया है। करुण मधुर गीत, अतुकांत रचनाएँ, मुक्त छद, खड-काव्य, महाकाव्य सभी उनके काव्य के बहुमुखी प्रसार के अतर्गत हैं। लघु कथा के वैचित्र्य से लबी कहानियो की विविधता तक उनका कथा-साहित्य फैला है। ककाल उपन्यास के विषम नागरिक यथार्थ से तितली की भावात्मक ग्रामीणता तक उनकी औपन्यासिक प्रतिभा का विस्तार है।

एकांकी, प्रतीक रूपक, गीतिनाट्य, ऐतिहासिक नाटक आदि मे उन्होंने नाटकीय स्थितियो का सचयन किया है। उनका निबध-साहित्य किसी भी गभीर दार्शनिक चिंतक को गौरव देने मे समर्थ है।

साहित्यिक प्रतिभा के साथ उनकी व्यवहार बुद्धि भी कुछ कम असाधारण नही है। धूमिल नये युग के काव्य और विचार को आलोक की पृष्ठभूमि देने के लिए ही उन्होंने इदु, जागरण जैसे पात्रों की कल्पना को मूर्त रूप दिया। भारती भडार का जन्म भी उनकी उसी बुद्धि का परिणाम है, जिसने युग की प्रत्येक सभावना को परखकर उसका उचित दिशा मे उपयोग किया। उनका जीवन उनके कार्य को देखते हुए घट म समुद्र का स्मरण दिलाता है।

बुद्धि के आधिक्य से पीडित हमारे युग को, प्रसाद का सबसे महत्त्वपूर्ण दान कामायनी है अपने काव्य-सौंदर्य के कारण भी और अपने समन्वयात्मक जीवन-दर्शन के कारण भी।

भाव और उसकी स्वाभाविक गति से बनने वाले जीवन-दर्शन मे सापेक्ष सबध है। बहती हुई नदी का जल आदि से अत तक ऊपर से कही तरगाकुल, कही प्रशात-मथर जल ही दिखायी देता है, परतु वह तरलता किसी शून्य पर प्रवाहित नही होती। वस्तुत उसके अतल-अछोर जल के नीचे भी भूमि की स्थिति अखड रहती है। इसी से आकाश के शून्य से उतरने वाले मेघ-जल को हम बीच म तटो स नही बाँध पाते, पर नदी के तट उसकी गति का स्वाभाविक परिणाम हैं।

भाव के सबध मे भी यही सत्य है। जिसके तल म कोई सश्लिष्ट जीवन-दर्शन नहीं है उसे आकाश का जल ही कहा जा सकता है। जीवन को तट देने के लिए, उसके आदि की इकाई को अत की

असीमता देने के लिए ऐसे दिन की आवश्यकता रहती है जिस पर श्रेय मे तरगायित होकर वह सुदर वन सके। यदि कोई भावधारा ऐसी सश्लिष्ट दर्शन भूमि नही पाती तो उसके स्थायित्व का प्रश्न सदिग्ध हो जाता है।

यह दर्शन, महाकाव्य की रेखाओ से जिस विस्तार तक घिर सकता है उस विस्तार तक गीत से नही। छायावाद युग मे भाव के जिस ज्वार ने जीवन को सब ओर से प्लावित कर दिया था उसके तट और गतव्य के सबध म जिज्ञासा स्वाभाविक थी और इस जिज्ञासा का उत्तर कामायनी ने दिया।

प्रसाद को आनदवादी कहने की भी एक परपरा बनती जा रही है। पर कोई महान् कवि विशुद्ध आनदवादी दर्शन नही स्वीकार करता क्योकि अधिक और अधिक सामजस्य की पुकार ही उसके सृजन की प्रेरणा है और वह निरतर असतोष का दूसरा नाम है।

'आनद अखड घना था' (कामायनी) विश्व-जीवन का चरम लक्ष्य हो सकता है, परतु उसे इस चरम सिद्धि तक पहुँचाने के लिए कवि को तो निरतर साधक ही बना रहना पडता है। सितार यदि समरसता पा ले तो फिर झकार के जन्म का प्रश्न ही नही उठता, क्योकि वह तो हर चोट के उत्तर मे उठती है और सम-विषम स्वरो को एक विशेष क्रम मे रखकर दूसरो के निकट सगीत बना देती है। यदि आघात या आघात का अभाव दोनो एक मौन या एक स्वर बन गये हैं, तब फिर सगीत का सृजन और लक्ष्य सभव नही।

प्रसाद का जीवन, बौद्ध विचारधारा की ओर उनका झुकाव, चरम त्याग, बलिदानवाले करुण-कोमल पात्रो की सृष्टि, उनके साहित्य मे बार-बार अनुगुजित करुणा का स्वर आदि प्रमाणित करेंगे कि उनके जीवन के तार इतने सधे हुए और खिचे हुए थे कि हल्की-सी कपन भी उनमे अपनी प्रतिध्वनि पा लेती थी।

हमारे युग की समष्टि के हृदय और बुद्धि मे जो भाव और विचार नीरव उमड-घुमड रहे थे, उन्हे कवि ने जागरण के स्वर देकर मुखरित किया।

पर जब 'हिमाद्रि तुङ्ग शृङ्ग' माँ भारती ने अपने इस स्वर-साधक पुकारा तब वह अपनी वीणा रखकर मौन हो चुका था।

एक जो चली गयी

गोपालदास

मेरे तीन लडकियाँ हैं। कभी चार थी। एक चली गयी जो चली गयी उसका नाम था मधूलिका। हम उसे मधु पुकारते थे। जब वह गयी दस की भी नही हुई थी। उसका रग था, जैसे सवेरे की मीठी उजली धूप। बोली, जैसे अपना नाम सार्थक करती हो। और गुण जैसे पतजी ने उसे लिखा था—

> अपने उर के सौरभ से
> जग का आँगन भर जाओ।

मैं आज उसे क्यो याद करता हूँ? किंतु क्या मैं उसे कभी भूला हूँ! और रानी? उन्होंने तो उस दिन से आज तक उस नाम की किसी लडकी को नाम से कभी नही पुकारा है।

उसे गये १८ वर्ष हो गये। होली खेलकर हमे दहका गयी। तब से अबीर मे मैंने सदा राख के रग की समानता देखी है।

वह क्यो चली गयी? कोई क्यो चला जाता है, और वह भी ऐसी आयु मे? यह तो जिसके सहस्र नाम हैं वही जानता है। मैं केवल इतना कह सकता हूँ, वह ऐसी दीप शिखा थी जिसकी लौ कभी मद्धम नही हुई। तेल रीतता गया और वह उद्दीप्त होती गयी, और फिर, एक बार भभककर, घना घुप्प अधकार छोड गयी।

यह सब होता रहा और हम, मैं और रानी, देखते रहे—बेबस, बिलकुल बेबस, और हँसते रहे, उसे हँसाने के लिए उस क्रातिकारी से होड ले रहे थे, जिसने अपना अडिग विश्वास जताने के लिए, हाथ दीये की जलती लौ पर रख दिया था। हाथ जलता रहा था और उसने उफ नही की थी। करता कैसे? वीर जो था। हम भी बडे वीर बने थे। कैसे खून के अनदेखे, अनफूटे आँसुओं से उस वीरता का मूल्य चुकाया था?

जब वह चली गयी, तो मैंने बहुत चाहा कि शरत के पडित मोशाय की तरह हर बालक मे उसे देखूँ और मन को दिलासा दूँ। किंतु पडित मोशाय तो कल्पना की उपज थे और मैं था हाड मास का।

वह दिन मुझे याद है। मैं उसे दिखाने अस्पताल ले गया था। कई दिन से उसकी आँखो के घेरे भारी थे। पपोटो पर भी भारीपन था। हम समझे थे कि सर्दी का असर है, देर-सवेर दूर हो जायगा। और कोई लक्षण नही था। हँसती-खेलती थी, स्कूल जाती थी। न किसी प्रकार की पीडा थी, न कष्ट।

डॉक्टर पुराने परिचित थे, दूर के सबधी भी, रोग के निदान म बडे निपुण। उन्होने उसे ध्यान से देखा, कुछ सोचा, कुछ देर मुझे अपलक घूरा और फिर आँखें झुका ली। मैं कुछ समझा नही। वे गुम-सुम बैठ गये, बैठे रहे। मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा, "क्या बात है?" मुझे लगा, उनके होठ हल्के-से हिले, और बस। मुझे चिंता हुई, उनके लिए, "डॉक्टर साहब, आप ठीक तो हैं?" कही दूर से आता उत्तर सुनायी दिया, "हाँ, मैं तो ठीक हूँ।" 'फिर?" मौन। "फिर?" मौन। 'फिर?" मेरे असयत स्वर से वह आतकित हो गये थे। 'आप मेरे साथ आइए।" वे होठो मे फुसफुसाए। मैं पास के उनके छोटे कमरे मे गया। "रोग असाध्य है, प्राय असाध्य। दवा दीजिए और दुआ कीजिए। दोनो मे से किसी का असर हो जाये, शायद।"

मैं एकदम-कुछ नही कह सका। वे पहले कमरे मे लौट आये। मैं यन्त्रवत् उनके पीछे हो लिया। उन्होंने नुस्खा लिखा, सेवन की विधि बतायी, फिर मधु से बोले, 'जाओ बेटी, घर जाकर खेलो। तुम बडी प्यारी बच्ची हो।"

उनके चेहरे पर अनढलके आँसुओ से भीगी मुस्कान की असफल चेष्टा थी।

मैं साइकिल पर घर लौट रहा था। वह आगे बैठी थी। हँस रही थी। बोल रही थी, 'पापा, उन डॉक्टर साहब को क्या हो गया था? बीमार हैं क्या? फिर अस्पताल क्यो आते हैं? इलाज कैसे करेंगे?"

गभीर घाव करनेवाले भोले प्रश्न!

साइकिल की आवाज सुनकर रानी ने पूछा, "डॉक्टर ने क्या कहा?" व चौके म थी। सामान्य स्वर, जिसमें कोई चिंता की ध्वनि नहीं। ऐसे ही जैसे अधा मोड से निकलकर, सहसा गहरे, हडपने को मुँह

धाये कगार के सामने आने से पहले कोई सहज बात कर रहा हो।

मैं दूर से क्या उत्तर देता ?

उन्होने फिर पूछा, "डॉक्टर ने क्या कहा ?"

मैं चौके मे गया। उनके पास खडा हो गया, अव्यक्त।

"डॉक्टर ने क्या कहा ?"

मैं चुप रहा।

"मैं पूछ रही हूँ, डॉक्टर ने क्या कहा ?"

मैं फिर भी चुप रहा।

"बोलते नही, डॉक्टर ने क्या कहा ? अरे, बोलो न।"

खीज का स्थान आशका ने ले लिया था।

"लडकी से हाथ धो लो।"

"क्या ?"

एक अविश्वास जिस पर भय हावी हो रहा हो।

"कह तो दिया।"

"नही, यह नही हो सकता। नही, नही।"

विरोध खोखला था। भय ने अपनी सत्ता जमा ली थी।

मैंने रानी को सक्षेप मे सब-कुछ बता दिया।

उस दिन मधु ने खाट पकडी,

कहने को,

लेकिन उसका जो रूप उभरकर सामने आया, वह था मानो—

निर्झर का स्वप्न भग हो चुका हो।

खिल-खिल हँसता,

कल-कल गाता,

ताल-ताल पर दूँगा ताल।

मैं नही जानता उसे महासिंधु का गान सुनायी पडता था या नही, शायद नही।

मैं इतना जानता हूँ।

उस दिन से हमारे घर मे मृत्यु की छाया मँडराने लगी थी, किंतु वहाँ एक ही जीवत प्राणी था—जिसकी वह छाया थी।

जैसा मैंने कहा, जैसे-जैसे तेल रीतता गया, लौ उद्दीप्त होती गयी।

उन दिनो के अनेक प्रसग हैं। क्या भूलूँ क्या याद करूँ, या याद न करूँ, या फिर—क्या-क्या याद करूँ ?

उसे नमक वर्जित था। उसका खाना अलग बनता था। रानी बड़े श्रम और लगन से बनाती थी, जिससे कि नमक का अभाव न खले। दो दिन से पालक का साग बना रही थी। उसे बहुत पसद था। पहले दिन वह चुप रही। दूसरे दिन उसने टोका।

"ममी, तुमसे भूल हो गयी है।"

"क्या ?"

"तुमने साग मे नमक डाल दिया है।"

"नही तो।"

"हाँ, डाला है।"

"तुझे लग रहा है ?"

"हाँ।"

रानी समझ नही पा रही थी कि वे ऐसी भूल कैसे कर सकती हैं।

अगले दिन फिर वही, "ममी, तुमसे आज भी भूल हो गयी।"

"नही बेटी।"

"हाँ, मैं कहती हूँ, चख लो।"

उन्होंने जीभ पर रखा, बिल्कुल फीका था।

"इसम नमक कहाँ है, बेटी।"

"तुम्हे नही लगेगा। तुम तेज खाती हो।"

वे क्या कहती ? डॉक्टर आये। उनसे कहा। कुछ देर सोच मे रहे। फिर उससे पूछा, "तुम्ह पालक अच्छा लगता है ?"

उसने सिर हिला दिया।

'और क्या अच्छा लगता है ?"

"सब।"

"पालक बद कर दें, तो कैसा लगेगा ?"

वह कुछ रुकी, फिर उदासीन स्वर से कहा, "ठीक है।"

डॉक्टर चले गये। पालक बद हो गया। उसने न फिर पूछा, न। कई दिन बाद रानी से बोली, "ममी।"

'क्या ?"

"यह पढो ।" उसकी बडी बहन की पुस्तक थी ।

"क्या लिखा है, बेटी ?"

"इसमे लिखा है, पालक मे अपना नमक होता है ।"

"सच ?"

"तभी तो डॉक्टर ने मुझे मना किया है । तुम इतना भी नही जानती ?"

और वह हँस पड़ी, वंही 'रवि-किरणो का हास लुटाती' निर्झर की उन्मुक्त हँसी ।

रानी जानती थी । डॉक्टर बता गये थे । उससे क्या कहती ? उस हँसी ने उन्हे हिला दिया । काम के बहाने वे उठकर चली गयी ।

उस पर लिखी अज्ञेय की कविता ने पुत्री और माँ का कैसा मार्मिक चित्रण किया है :—

सीखा है तारे ने उमगना
जैसे धूप ने विकसना
हरी घास ने पैरो मे लोट-लोट
विछलना-विलसना,
और तुमने—पगली बिटिया—
हँसना - हँसना - हँसना,
सीखा है मेरे भी मन मे उमसना
मेरी आँखो ने बरसना
और मेरी भावना ने
आशीर्वाद से सुवास-सा
तुम्हारे आसपास बसना ।

वह दस महीने बीमार रही, लेकिन न कभी रोई, न टूटी । उसने जाना केवल पढना और हँसना, आयु म बडी होती, तो मै कहता, जीवन जीना जितना भी लिखा था ।

वह क्या न पढती ? कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध । हाँ, कविता नही । पतजी आते, उस दुलारते, उनसे खुलकर बातें करती । उनके काव्यमय रूप ने उसे आकृष्ट किया, कविता ने नही—उनकी या किसी और की भी ।

मैं नही जानता, वह कितना समझती थी, किंतु उसे याद सब रहता। एक दिन बोली, 'पापा, फिर से सुनाना—ओ इसानो, बोल रहा हूँ मैं, किस नगर के चौराहे से ?"

'सृष्टि का आखिरी आदमी' की पक्तियाँ हैं—
ओ इसानो,
ओ मनु राजा की सतानो,
सुनो, और सुनो,
बोल रहा हूँ मैं,
भविष्य के एक नगर के चौराहे से
बोल रहा हूँ ।

पिछली रात रेडियो से प्रसारित भारती के इस पद्य-नाटक मे मैंने उद्घोषक का अभिनय किया था। उसने एकचित्त होकर सुना था। स्नेही सतान थी। पिता की अभिनय-कला कैसी भी हो, उसे गर्व था। लेकिन न जाने क्यो, जो पक्तियाँ उसके मन मे अटककर रह गयी थी, वे थी भीड के स्वर मे—

वह चूहा था, मर गया,
हम चूहे हैं, मर जायेंगे।

दिन भर उन्हें दुहराती रही। बीच मे बोलती, 'पापा, उस दिन नाली के पास मरा हुआ वह चूहा याद है न ? कैसा उसका पेट फूल गया था ?"—

मैं देखता, उसके शरीर पर सूजन बढ़ गयी थी। कई दिन से पेशाब नही के बराबर हुआ था।

वे चूहे थे, मर गये।
वह चूहा था, मर गया।
उसे उनसे क्या ?
क्या ?

बालकृष्ण राव आते, उसे कहानियाँ, चुटकुले सुनाते, पहेलियाँ बुझाते। वह हँसती, खिलखिलाती। शिवमगलसिंह 'सुमन' ने उपमा दी थी—

तुम बहो, किनारों को हरियातो, निर्झरिणी।
तुम खिलो, जिस तरह खिल खिल पड़ती मौलसिरी।

राव साहब का एक पत्र आया। वे रेडियो से किसी कार्यक्रम के लिए आमन्त्रित किये गये थे। रास्ते मे मोटर ठप्प हो गयी। बेचारे उतरे, ड्राइवर उतरा, धक्के दिये, लेकिन उनकी सांस फूल गयी, मोटर मे सांस न पडी। उस अनुभव से प्रेरणा पाकर उन्होने उसके लिए एक कविता लिख भेजी थी।

> जैसे ही तांगा बुद्धू ने बाहर लाकर मोड़ा
> बीच सड़क पर खड़ा हो गया उसका अड़ियल घोड़ा।
> चाबुक बरसाई बुद्धू ने, सारा हंटर कोड़ा,
> कान उमेठे, दुम को कस कर खींचा और मरोड़ा।
> इतने मे हंसकर मधूलिका बोली, 'बुद्धू खुश हो,
> सोच जरा, बग्घी लाता, तो लाना पडता जोडा!!'

छुट्टी का दिन था, लगभग एक का समय, हम लोग भीतर के बरामदे मे खाना खाने बैठे थे। रानी मधु को पहले ही खिला चुकी थी। वह अपने कमरे मे लेटी हुई थी।

अदर से आवाज आयी, "हम सब देख रहे हैं। वह पापा का गिरास मुँह मे गया। ममी पानी पी रही हैं। बडी बहनजी रोटी उठा रही हैं"

हमे आश्चर्य हुआ।

"हम जान गये," मैंने कहा, "तुम बिस्तर से उठ आयी हो, दरवाजे के पीछे से छिपकर झाँक रही हो।"

"नही, हम बिस्तरे पर लेटे हैं।"

"तो तुम अटकल लगा रही हो।"

"नही, हम सब देख रहे हैं।"

"कैसे ?"

"हमारे पास जादू है।"

बालक की मासूमियत से, अपने से बडो को छकाने मे जो आनद आता है, वह उसके स्वर मे फट रहा था।

"कैसा जादू है ?"

"यहाँ आओ, तो बतायें।"

रानी उठकर उसके पास गयी। वह बिस्तरे में ही लेटी थी। कमरे के दरवाजे में शीशे लगे हुए थे। एक दरवाजे को उसने इस तरह से उढ़ीक रखा था कि बरामदे में जो हो रहा था, उसका स्पष्ट प्रतिबिंब दीखता था। रानी से बोली, "देखो, वह रहे पापा। इधर देख रहे हैं। वह छोटी बहन उठी। राज फल खा रही है। देखा जादू? कैसा बनाया!"

और वही हँसी, उन्मुक्त और अबाध।

रानी ने उसे अंक में भर चूम-चूम लिया।

"मेरी सुनहरे बालोंवाली जादुई झमूरी, मेरा हीरामन तोता।"

वे नीर-भरी दुख की बदली हो रही थी। लेकिन जैसे किसी साधक भक्त के मन का—

आज घट गगना गरजा।

किसी को सुनायी नहीं देता है, वह बदली भीतर ही बरस रही थी। उस निगुनिया के शब्दों में—

बिन बूँदाँ जहाँ मेहा बरसे।

उसके न टूटने की एक घटना मुझे सदा टीसती रही है। बीमारी से पहले की बात है। किसी कारण मुझे उस पर क्रोध आ गया, और अपना पिता का अधिकार जताते हुए, मैंने उसे कोने में दीवार की ओर मुँह करके खड़ा होने का आदेश दिया। फिर किसी काम से बाहर चला गया। दो-तीन घंटे बाद लौटा। घर में कुछ घुटन की अनुभूति हुई। मैंने रानी से पूछा, "क्या बात है?"

बोली, 'तुम मधु को कोने में खड़ा कर गये थे, तब से वहीं खड़ी है।"

"क्यों?" मुझे हैरत हुई।

"मैंने बहुत मनाया, समझाया—पापा ने ऐसे ही कह दिया था। वे तुझे इतना प्यार करते हैं। किंतु नहीं, वह तो रघुकुल की रीत निभा रही है।"

मैंने उसे बुलाया। वह आयी। मैंने कहा, "तुम अभी तक वहीं खड़ी थी?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया, उसके चेहरे पर कोई शिकायत नहीं

थी। वह बिल्कुल सहज थी। यदि किसी भाव का किंचित् सकेत-मात्र था, तो एक मीठे स्वाभिमान का।

एक दिन धर्मवीर भारती घर आये। उस दिन वह कुछ अधिक बेचैन रही थी। भारती अपने साथ 'अधायुग' की पाडुलिपि लाये थे। कुछ दिन पहले ही पूरा किया था। मैं उसके रेडियो प्रसारण के लिए उत्सुक था। वही उसके कमरे मे चले आये। कुछ देर बैठे। वह बातें सुनती रही, स्वय अव्यक्त। उठने से पहले भारती उससे बोले—

हे मधूलिका रानी,
नाच-कूद कर जल्दी से अच्छी हो जाओ,
मिटे सभी हैरानी।

वह मुस्करायी। कभी भगवतशरण उपाध्याय ने उसे लिखकर दिया था—

किसी को देखो
तो मुस्कराओ—
चाँदनी छिनक जायेगी।

लेकिन उस दिन चाँदनी सहमी सहमी थी, उस पर धूमिल आवरण था।

उस रात, उसके सिरहाने बैठे मैं 'अधायुग' पढ गया। वह कभी आँख खोलकर मुझे देख लेती, बोलती कुछ नही। जब मैं उठा, वह गहरी नीद मे थी। मेरे अपने भीतर एक तूफान गुजर चुका था। वह अश्वत्थामा का पात्र मुझे हिला गया था। लेकिन लगता था, कही कुछ रह गया है, उसकी पूर्ण परिणति नही हुई है।

अगले कुछ दिनों मे मैंने 'अधायुग' कई बार पढा। मेरी धारणा प्रबल होती गयी। हफ्ते-भर बाद भारती आये। मधु की तबीयत मे कोई सुधार नही हुआ। जब वे चलने लगे, तो मैं उन्हें छोडने फाटक तक गया। वे ठिठके। उन्हे लगा, मैं कुछ कहना चाहता हूँ। अश्वत्थामा के बारे मे मैंने अपनी राय व्यक्त की। उन्होंने पूछा, क्यो? मुझे प्रसग याद था। कृष्ण की हत्या के बाद अश्वत्थामा को कुछ और कहने को था, जो नही कहा गया था और जिसे कहे बिना चरित्र म सपूर्णता

नही आती थी। भारती मानने को तैयार नही थे। मैंने कहा, शायद तुम नही जानते, पिछले सात दिन से तुम्हारा यह अश्वत्थामा मैं अपने म जीता रहा हूँ। उसकी पीडा मे मेरी पीडा ने अभिव्यक्ति पायी है। मधु को देखकर, अश्वत्थामा की अनास्था कही मेरे अपने भीतर कसमसा रही है। रेडियो प्रसारण मे अश्वत्थामा की भूमिका मैं स्वय करूँगा। दो चार दिन बाद, तुम एक बार नाटक को फिर से पढ़ देखो। शायद मेरी बात से सहमत हो।

भारती चले गये। बाद मे उसी प्रसग म उन्होने कुछ सवाद जोड दिये। प्रसारण हुआ, बहुत सराहा गया। भारती ने कही लिखा है कि मेरे अश्वत्थामा के अभिनय मे एक दशन था, घृणा की व्याख्या मे वह अनासक्त विक्षोभ का प्रणेता लगता था। क्या मैं, उन दिनो की अपनी मन स्थिति मे, कोई और अभिव्यक्ति कर सकता था ?

प्रसारण मधु ने भी सुना। यद्यपि वह लगभग दो घटे का था और रात के साढे ग्यारह तक चलता रहा था, फिर भी, उसने, आद्योपात, दत्तचित्त होकर सुना। पहले से रेकाड होने के कारण, मैं उसके पास बैठा था। समाप्ति पर वह कुछ बोली नही सो गयी। शायद बहुत थक गयी थी या कथानक उसकी समझ के परे था। सवेरे उठते ही उसने मुझ आवाज दी, पापा, बहुत अच्छा, बहुत ही अच्छा हुआ। आपने वह कैसे कहा था—

पता नहीं मैंने क्या किया,
मातुल मैंने क्या किया ?
क्या मैंने कुछ किया ?

और—

मातुल,
सत्य मिल गया
बर्बर अश्वत्थामा को

और आखिर म वह क्या था,

हाय मेरे नहीं थे वे,
हृदय मेरा नहीं था वह "

अधायुग क्या हो गया था नस-नस म ?

मेरे अभिनय के अदाज मे वह पक्तियाँ बोलती जाती और खिल-खिलाती जाती। उसका उन्मुक्त हास घर-भर मे अपनी आभा भरता जा रहा था।

ऐसे अवसरों पर, घर म मँडरानेवाली वह काली छाया अपना मुंह छिपाने के लिए किसी अलग अँधेरे कोने को टटोलती फिरती थी।

दिन वीतते जा रहे थे। वह सूय-किरण और प्रखर होती जा रही थी। उसके लिए विद्यावती कोकिल की पक्ति—

जीवन का रज मदिरा मेरी

नित नये रूप मे सार्थक होती। मन मे अमित गान और हर्ष-भरे उस निर्झर को कौन रोग बाँध सकता था ?

तोडो-तोडो-तोडो कारा

आघातो पर कर आघात।

दीवाली आयी। मन मे घना अधकार था, उस ज्योतिपर्व को कौन मानता ? उन दिनो तमसो मा ज्योतिर्गमय की कल्पना से मैं बिल्कुल बेगाना हो गया था। न घर मे दीये आये थे, न आतिशबाज़ी। लक्ष्मी-उपासना मे मेरी आस्था न तब थी, न अब है। मैंने उसकी सदा 'पुरुष पुरातन की वधू' के रूप म कल्पना की है।

मधु ताड गयी। उसने नितात भालेपन से पूछा, 'पापा, हमारे घर मे दीवाली नही मनेगी क्या ?"

क्या इसका उत्तर नकार मे हो सकता था ? कम-से-कम मुझमे उसकी ताब न थी। मैंने कहा, 'क्यो नही मनेगी ? खूब मनेगी।"

उत्फुल्लता के विद्रूप का कैसा अभिनय था।

उस रात दीये जले, आतिशबाज़ी चली, लक्ष्मी-पूजन हुआ। बडी धूमधाम रही। मैं और रानी, सलीब पर चढे मुस्कराते रहे, हँसते रहे।

२६ जनवरी १६५५।

वडी वेटी निरमल, उत्तर प्रदेश के स्कूलो के दल मे, गणतन्त्र दिवस की परेड मे भाग लेने दिल्ली आयी हुई थी। रेडियो मधु के कमरे मे रहता था। उस दिन सवेरे से ही तैयार होकर वह आँखा देखा हाल सुनने बैठ गयी थी। राजेन बाबू की सवारी आयी। पडित नेहरू ने

उनका स्वागत किया। राष्ट्रीय धुन बजी। तोपें दगी। राजेन बाबू ने सलामी के स्थान पर आसन ग्रहण किया। सैनिक टुकड़ियाँ निकलने लगी। फिर आयी झाँकियाँ। उसकी उत्सुकता बढ गयी। रेडियो ने कहा, "अब स्कूलो की छात्राएँ "

'ममी सुनो, लडकियो की टोलियाँ आ रही है। उठो नही, यही बैठी रहो। बहन जी आ रही हैं। कैसी शान से चल रही होगी। लैफ्ट राइट लैफ्ट।"

वह बिस्तरे मे खडी हो गयी और कदम भरने लगी।

परेड समाप्त हो गयी। वह कुछ देर मौन लेटने के बाद बोली, "कभी मैं भी परेड मे भाग लूँगी।"

गिरिजाकुमार माथुर ने उन्ही दिनो उसके लिए ये पंक्तियाँ लिखी—

तुम घर की मधुलता
चाँदनी तुम आँगन की
फलो, खेलो, फैलो,
तुम टिकुली चंदन की
देह तुम्हारी
सोन धूप-सी
सेहत पाये
सूरज चढा-सी
असीस यह
मंगल गाये
उम्र-बीज पूनो तक पहुँचे
खिले तुम्हारी
सतिये-सी छापे पथ पर
कामना हमारी।

और फिर आया राग-रंग का त्योहार। उसकी इच्छा थी कि घर मे अबीर और गुलाल उडे, सो उडा और जमकर, वह भी रँगी और भीगी। मित्र-मडली मिलने आयी। घर मे हुडदग मचा, दिन-भर। किन्तु न जाने क्यो, मेरे मन मे एक पुरानी होली की यह पंक्ति बराबर गूँजती रही—

अब के फाग पिया भये हैं बैरागी,
मैं बैठी विस घोलूं।

अनेक उतार-चढाव के बाद उसके रोग में सुधार तो नही हुआ था, एक ठहराव आ गया था। उसे स्वय कोई चिंता नही थी। लगता था, वह कबीर की गर्वोक्ति, 'हम न मरें मरिहै स सारा' का मूर्त रूप थी। उसके गुर्दे रोग-ग्रस्त थे। कभी पेशाब रुक जाता, आँखें और चेहरा भारी हो जाते, कभी ठीक आता—सूजन पटक जाती। जब कम आता, बूँद-बूँद तक, तो गदा और कत्थई। वह शीशी उठाकर दिखाती और कहती, "आज छुट्टी" और हँस पडती—जैसे रोगी वह नही कोई और हो। जब पर्याप्त और स्वच्छ आता, तो कहती, "देख लिया? ठीक है न?" जैसे अपने को नही, हमे आश्वस्त कर रही हो, कि क्यो चिंता करते हो?

बरसो बीत गये हैं। आज स्पष्ट स्मरण नही है कि होली ही के दिन, या उससे एक दिन पहले या बाद, मैंने सपना देखा।

मैं, रानी और चारो लडकियाँ कही जाने के लिए किसी स्टेशन पर खडे हैं और ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मधु बिल्कुल सामान्य और स्वस्थ है, सदा की अपनी प्रसन्न मुद्रा मे। कोई रोग का चिह्न नही है। ट्रेन आती है, जरा-सी देर रुकती है। मधु लपककर उसमे चढ जाती है। हम वही बंधे से, खडे देखते रह जाते हैं। ट्रन शून्य मे विलीन हो जाती है।

और वह भी शून्य मे विलीन हो गयी।

उसके डॉक्टर एक पूजा-पाठी, विनीत और सज्जन व्यक्ति थे। अपने काम म जाने माने और अत्यत कुशल। बस, एक ही दोष था। समय की पाबदी मे वे सर्वथा अविश्वासी थे, या कहूँ, उसकी उनकी अपनी अलग धारणा थी। सवेरे नौ बजे आने को कहे और आयें दिन के दो बजे, दिन के चार कहे, तो आयें तारो की छाँव मे, और चेहरे पर कोई शिकन नहीं, जैसे कुछ नही, ऐसा ही होता है। एक-दो बार दबी जबान से कहा भी। उत्तर मिला, "आप घडी क्यो देखते हैं? यह मान लीजिए कि जिस समय हम आते हैं वह वही होता है जो हमने दिया होता है।' बडी खीज होती, आक्रोश होता, उबल पडने को जी चाहता एकाध

बार, जो शब्दो म नही कह सकता था, उसे हाव भाव से प्रकट करने की चेष्टा की, लेकिन सभ्य व्यवहार की सीमा बाँधकर उसमे कहाँ तक सफल हो सकता था ?

सपने के दूसरे दिन किसी ने एक होम्योपैथ की चर्चा की। उसने कई चमत्कारी इलाज किय थे। मुझे स्वय होम्योपैथी से एक बार ऐसा ही लाभ हुआ था। मधु की अवस्था मे ठहराव देखकर मैंने सोचा कुछ दिन के लिए इलाज बदल देखें। होम्योपैथ के पास गया। उनकी बातों ने बडा विश्वास जगाया। दवा लाकर मधु को दी। दूसरे दिन उसे बुखार हो गया, और पेशाब प्राय बद। होम्योपैथ से जाकर कहा। उसने आश्वासन दिया, चिंता न कीजिए, दवा कारगर हो रही है। इसस पहले रोग के लक्षण भडकते हैं।

तुलसीदास की कथनी—'जाको प्रभु दारुण दुख देही' चरितार्थ हो रही थी।

शाम को अश्क आये। कभी-कभार उसका हाल पूछने आ जाया करत थे। दर तक बैठत, अपनी घुमावदार बातों से उसका मन रमाते। एक दिन उससे पूछा था—

'बडी होकर क्या बनोगी ?'

लेखक।"

'क्या लिखोगी ?

कविता।

छापेगा कौन ?

'आप।

यह मात्र उत्तर था।

उस रात उसके कमरे म नहा गय। ज्वर तज था, हल्की सी गफलत था। कुछ दिन पहल अपन नाटक 'अजो दीदी' का मसौदा द गय थ। बातो-बातों म जानना चाहा, यदि मैंने पढ़ लिया था। मैंने कहा, 'मैं तो बीमार की भाग-दौड़ म व्यस्त रहन क कारण नहा पढ़ पाया हूँ, किंतु मधु न कल और आज म तीस-चालीस पृष्ठ अवश्य पढ़ लिए हैं।' बात बहुत धीम हो रही थी। फिर भी, उस अर्धचेतन अवस्था में पास क कमरे

से उसकी आवाज आयी, "नही पापा, मैंने सारा पढ लिया है।"
अश्क ने 'अजो दीदी' उसे ही समर्पित किया है।

अगले सवेरे भी ज्वर बना रहा। एक-दो बात से वाई का आभास लगा। मैं होम्योपैथ के पास भागा। उन्हे अपनी दवा मे अहकारी विश्वास था। "धीरज रखिए, इतना विचलित क्यो होते हैं? कल, नही तो परसो तक, बेटी ठीक होने लगेगी। अभी जाकर यह पुडिया दे दीजिए, ताप कम हो जायेगा।"

मैं मूर्ख विश्वासी बना रहा। दवा दी, किंतु अकारथ गयी। दोपहर को डाक्टर को टेलीफोन किया। बिना उनकी अनुमति के होम्योपैथ से इलाज कराने की क्षमा-याचना करते हुए, तत्काल आने की प्रार्थना की। उत्तर मिला, "दफ्तर का काम कर रहे है, बद होने पर आयेंगे।" बहुत अनुनय-विनय की, वे टस से मस न हुए। शाम गहराते तक आये, दवा लिखी और दस-पाँच मिनट बैठकर चले गये। कुछ विशेष नही कहा। मैं जरूरी कागज देखने लग गया।

घुटे गले और भारी आँखो से रानी आयी। मुझे झकझोरते हुए बोली—

"तुम्हे क्या हो गया है? लडकी को आकर देखो। उसने कब से कुछ नही खाया है।"

मैं उठा। मधु के माथे पर हाथ रखा। भट्ठी-सा जल रहा था। मैंने पूछा, "बेटा, कुछ खाओगी?"

"नही।"

"दूध?"

"नही।"

"पानी?"

"नही।"

"पपीता?" वह उसका प्रिय फल था।

"अच्छा।"

रानी लपककर पपीता काटकर लायी, "ले बेटी, मैं ले आयी पपीता।" उसने बद आँखो, हाथ से इधर-उधर टटोला, "कहाँ है?" हाथ

हवा में भटकता रहा, रानी तश्तरी उधर करती रही, पपीते का कोई टुकड़ा उसकी पकड़ में नहीं आया। उसने हाथ पटक दिया। रानी ने अपने हाथ से देना चाहा। उसने मुँह फेर लिया, "अब नहीं।"

—पिताजी मुझसे पूछा करते थे, तुम पपीता क्यों नहीं खाते हो, तुम्हारे पेट के लिए अच्छा है। मैं उनसे क्या कहता?

थोड़ी देर बाद आँख खोलकर रानी से बोली, "बहनजी, तू मेरे पास बैठी है, ममी कहाँ हैं?" दरवाजे के पास नीरू खड़ी थी, उसे देखा।

"ममी, तुम इतनी दूर क्यों खड़ी हो, मेरे पास नहीं आओगी?" वह पूर्ण रूप से बाई में थी।

आधी रात तक हालत गंभीर हो गयी। डॉक्टर से संपर्क किया। *आदेश मिला, अस्पताल ले जाइए। एम्बुलेंस के लिए फोन किया,* ड्राइवर नहीं था। एक मित्र दूसरे परिचित डॉक्टर को लेकर आये और अपनी गाड़ी में अस्पताल ले गये। सवेरे के साढ़े चार बजे थे। प्राइवेट वार्ड खाली था, लेकिन उसे औरतों के जनरल वार्ड के एक गंदे बिस्तरे पर डालकर, डॉक्टर जाकर सो गये। चार घंटे बाद, अपनी सुविधा और समय से, जब वे दोनों डाक्टर उसे देखने आये, तब तक मालिक ने उसे अपने चरणों में ले लिया था। बिलखती रानी को ढाँढ़स बँधाते हुए डाक्टर ने कहा, 'परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी। कोशिश तो हमने पूरी की।"

ऐसा क्रूर व्यंग्य जीवन में मैंने कभी नहीं सुना।

मृत शरीर घर पहुँचाने के लिए एम्बुलेंस का ड्राइवर ड्यूटी पर उपस्थित था।

उसे घर लाये। कमरे में बिस्तरे से लगी खिड़की में 'धर्मयुग' के अंकों का ढेर रखा था। कोने में पपीते के अनखाये टुकड़ों की तश्तरी थी। वह मेरे हाथों से गिरने लगी थी कि मैंने अपने को सँभाला। उसे ठंडी धरती पर लिटा दिया। एक वृद्धा ने सलाह दी—

"अभी बच्ची ही थी, गंगा में प्रवाह कर आओ।"

मेरी आँखों के सामने एक दृश्य घूम गया।

सडक के किनारे किसी का शव पडा था। उस पर बैठे गिद्ध आँखें और अँतडियाँ नोच रहे थे, दूर मरियल, खाज-भरे, लार टपकाते कुत्ते ताक मे खडे थे। विदेशी पत्रकार चित्र खीच रहे थे।

क्या मधु भी ?

यदि मेरी दृष्टि उस वृद्धा को भस्म कर सकती तो—

गगा के किनारे उसे अग्नि को समर्पित कर दिया।

अग्नि-प्रज्वलित करने से पहले मैंने उसके माथे पर एक हल्का-सा चुबन अंकित किया।

वैसे ही, जैसे हर रात उसके सो जाने पर करता था।

चिता पर वह सो ही तो रही थी।

उस रात मैंने सपना देखा।

उसका बिस्तरा खाली है। हवा का तेज झोका आता है और खिडकी में रखे 'धर्मयुग' के अकों को एक-एक करके बिखेर देता है।

मैं हडबडाकर उठता हूँ। मन व्याकुल है। मैं बाहर बरामदे मे आकर बैठ जाता हूँ। पौ फटनेवाली है। एक चिडिया पासवाले आम के पेड़ पर कूकने लगती है, कूके जाती है। मैंने वहाँ उसे पहले कभी नही सुना था।

क्या किसी नयी चिडिया ने वासा पाया था ?

याद रहा बचपन

हरिवंशराय बच्चन

मैं अपने माता-पिता की छठी संतान था। मेरा जन्म २७ नवबर, १९०७ को हुआ। मेरा नाम हरिवंशराय रखा गया, घर पर मुझे बच्चन नाम से पुकारा जाता। हरिवंश नाम रखने का एक विशेष कारण था, ऐसा मुझे लड़कपन में बताया गया था। जब भगवान् देई (मेरी बड़ी बहिन) के बाद होने वाले दो बच्चे अल्पायु मे ही चल बसे तब पडित रामचरण शुक्ल ने प्रतापनारायण (मेरे पिताजी) को यह सलाह दी कि अब जब मेरी माता गर्भवती हों तब वे हरिवंश पुराण सुनें। शुक्लजी की बात मेरे पिता के लिए वेदवाक्य होती थी। पिताजी को प्रात.काल तो समय मिलता न था, वे बगैर खाये-पिये दफ्तर चले जाते, दिन-भर व्रत रखते, मेरी माताजी भी रखती। जब सध्या को दफ्तर से लौटते—शुक्लजी ने उन्हे अपने लेन-देन वाले अतिरिक्त कार्य से थोड़े दिनो के लिए छुट्टी दे दी थी—तब कई घटे पति-पत्नी गाँठ जोड़कर परिवार के पुरोहित से हरिवश पुराण की कथा सुनते, 'पुत्रपद सतान गोपालमत्र' की पूजा करते—

'देवकी सुत गोविंद वासुदेव जगत्पते
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गत.'

श्लोक का १०८ जाप करते और तत्पश्चात् आधी रात को पारायण करते। पुरोहितजी ने कथा सुनाने और पूजा कराने के लिए एक हजार एक रुपये की दक्षिणा माँगी थी। पिताजी के पास इतना धन एक साथ देने की समायी नही थी। अनुष्ठान की समाप्ति पर उन्होंने एक पुर्जी पर धनराशि लिखकर पुरोहितजी को समर्पित कर दी और प्रतिमास दस रुपया उनको देते रहे। जब मैं आठ-नौ वर्ष का हो गया तब जाकर पिताजी इस संकल्प-ऋण से उऋण हुए।

पडितो ने दानादि मे कुछ ऐंठने की गरज से मेरे जन्म पर किंचित् चिंतित मुद्रा बनाकर घोषित किया कि लड़का तो मूल नक्षत्र मे पैदा हुआ है। कहा जाता है कि मूल नक्षत्र मे जन्मा पुत्र पिता के लिए घातक होता है। पडितो ने उस कुप्रभाव के निराकरण के उपाय भी निकाल लिये हैं।

मेरे पिता ने अपने ज्योतिष के यत्किंचित् ज्ञान से यह सिद्ध कर दिया कि मैं मूल नक्षत्र मे नही पैदा हुआ। शायद हुआ ही हूँ। जन्म का बिल्कुल ठीक समय कौन देखता है, घडियाँ भी कहाँ ठीक होती हैं। सुनते हैं कुछ पलो के अतर से भी ग्रहो मे अतर पड जाता है। लोकानुभव ने मूल नक्षत्र मे जन्मे—मुलहे—का एक दूसरा प्रभाव देखा है कि वह उपद्रवी अथवा उत्पाती होता है—मुरहा, और जहाँ तक मेरा सबध है, शायद ज्योतिष विद्या से लोकानुभव अधिक सच्चा साबित हुआ है। पितृ घातक तो मैं नही हुआ, पर मुरहाई मैंने कम नही की और न जाने कितनी बार मेरे नाते रिश्तेदारो ने, शायद ठीक ही, मुझे मुरहा कहा होगा। जब मुझे शब्दो की कुछ समझ आयी और मैं थोडा-बहुत उनसे कौतुक करने लगा तो मैंने 'मूल' का एक और ही अर्थ निकाला। हाँ, मैं 'मूल' नक्षत्र मे अवश्य पैदा हुआ हूँगा, तभी तो जीवन और सृजन दोनो क्षेत्रो मे कुछ 'मौलिक' करने की ओर मेरा आग्रह रहा है।

मै गाऊँ तो मेरा कठ—
स्वर न दबे औरों के स्वर से
जीऊँ तो मेरे जीवन की औरो से हो अलग रवानी

अतीत की ओर देखता हूँ तो पाता हूँ कि इस अर्थ मे 'मूल' नक्षत्र का मुझ पर कम असर नही रहा। पिताजी नाहक परेशान थे। बहरहाल, जब पडितो ने देखा कि मेरे पिताजी भी ज्योतिष मे कुछ दखल रखते हैं तो उन्होने दूसरा जन्म-पत्र प्रस्तुत किया और उसमे शायद मेरे पिताजी को खुश करने के लिए, कई उच्च ग्रह डाल दिये। मेरा जन्म-पत्र है—मुझे ज्योतिष का क, ख, ग भी नही मालूम—अच्छा-बुरा जैसा, उसे समय-कुसमय मेरी माता, और अब मेरी पत्नी ज्योतिषियो को दिखलाकर और उनकी गणना के अनुसार ग्रह-दशा का प्रभाव सुनकर आशकित, आश्वस्त, सतुष्ट अथवा प्रफुल्ल होती रही हैं। कौतूहलवश कभी-कभी मैंने भी उनकी भविष्यवाणियाँ सुनी हैं, कभी अर्द्ध-सदेह से, अर्द्ध विश्वास से, क्योकि कभी-कभी उनकी बतायी बातें किसी अश मे सच भी निकली हैं। तेजी जी (मेरी पत्नी) मेरे बारे म सब अच्छी बातो मे विश्वास करने के लिए बडी जल्दी तैयार हो जाती हैं, पर इस सबध मे शायद मेरी माताजी का दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक था।

वे कहती थीं, 'जब रानी का भाग जगता है तो उनको नौलखा हार मिलता है और जब नौकरानी का, तब उसे तिलरी मिलती है—कच्चे मोतियो की तीन लड की माला'।

मेरे होने और जीने के लिए मेरी माता ने और भी बहुत से दाय-उपाय टोटके-टामक आदि किये। वे सहज विश्वासी थी। जो भी उनसे जो कहता, उसको वे मानवे के लिए तुरत तैयार हो जाती। अपने घर मे किसी की ईमारी बीमारी मे वे वैद्य-हकीम की दवा के साथ, खर-खोदवा, ओझाई, झाड फूंक सभी कुछ एक साथ कराती—कुछ-न-कुछ तो लगेगा ही। मेरे जन्म के पूर्व मुहल्ले की किसी बडी-बूढी ने उन्ह सलाह दी थी कि तुम्हारे लडके नहीं जीते तो अब जब लडका हो तो उसे किसी चमारिन घमारिन के हाथ बेच देना और मन से उसे पराया समझकर पालना-पोसना।

उन दिनो बच्चा जनाने के लिए हमारे यहाँ लछमिनियाँ चमारिन आती थी। मैं पैदा हुआ तो मेरी माँ ने पांच पैसे मे मुझे लछमिनियाँ चमारिन के हाथो बेच दिया और उनके बतासे मँगवाकर खा लिये। कहते हैं, साल भर पहले लछमिनियाँ का अपना एकमात्र लडका कुछ महीने का होकर गुज़र गया था और उसका दूध सूख गया था, पर जैसे ही उसने मुझे अपनी गोद मे लिया उसकी छाती कहराई और उसने बारह दिन तक मुझे अपना दूध पिलाया। छुटपन मे लछमिनियाँ को देखने की मुझे याद है। शायद जब मैं बोलने लगा हूँगा ता मुझे उसे चमारिन अम्मा कहना सिखाया गया होगा और मैंने उस लबे नाम को उच्चारण करने की असमथता में उसे सक्षेप कर लिया होगा। मैं उसे चम्मा कहता था, अपनी माँ को अम्मा।

चम्मा मझोले कद की स्त्री थी। रग साँवलापन लिये नाक-नक्श सुडौल, उभरे हुए। वह मुझे अपनी माँ से अधिक सुदर लगती थी। बोली उसकी पतली-सुरीली थी, दैन्य विनम्र, आँखें उसकी किसी भीतर-ही-भीतर की वेदना से आर्द्र। अब मैं उसकी वेदना की कुछ कल्पना कर सकता हूँ। मुझे मोल लेने के बाद चम्मा के कोई सन्तान नही हुई—उसक मन म कही यह बात तो नहीं बैठ गयी थी कि उसने पांच पैसे मे [illegible] खरीदी थी। किसी रूप म यदि उसकी वत्ससता

का कोई आधार हो सकता था तो एक मैं—उसका होकर भी कितना उसका! ऐसी स्थिति मे मैं यह अनुमान सहज ही कर सकता हूँ कि वह मुझ किस भाव अभाव भरी दृष्टि से देखती होगी और इसे सोचकर मेरा मन भर आता है।

एक तस्वीर मेरी आंखो के सामने है। मेरा जन्म-दिन है। पाँच प्रकार के अन्न पाँच रँगी-छूही टोकरियो मे भरकर आँगन मे रख दिये गये हैं। परिवार के पुरोहित आये हैं, परजा भी—नाई, बारी, कहार। चम्मा भी आयी है। उसे एक नयी बूँटीदार धोती दी गयी है, जिसे पहन-कर वह दरवाजे पर एक तरफ सिमटी-सी खडी है कि उससे कोई छू न जाये, जैसे छू जाये तो अपराध उसी का समझा जायेगा। मुझे नहला-धुलाकर नये कपडे पहना आँगन मे लाया गया है और मुझसे कहा गया है टोकरियो को लात मारूँ। परिपाटी यह थी कि जो अन्न भूमि पर गिर जाता था, वह चमारिन का होता था, शेप अन्य परजा वर्ग का। ब्राह्मण देवता को तो थाली मे सीधा सजाकर समर्पित किया जाता था। जब मैं टोकरियो को ठोकर लगाने को आगे बढता हूँ तो चम्मा गिडगिडा उठी है, 'जोर से मार, मोरे राजा बेटा, जोर से, अउर जोर से।' जब मैं छोटा हूँगा तो पता नही मेरे पाँव मे कितनी ताकत होगी और कितना अन्न बेचारी चम्मा को मिलता होगा, पर जब मैं कुछ बडा हुआ तो शरारतन, कुछ चम्मा के प्रति सहज अनजान सहानुभूति से मैं लगभग पूरी टोकरियाँ अपनी ठोकरो से उलट देता था और चम्मा अपनी पुरानी धोती फैलाकर अन्न बटोरती, मुझ पर आशीष बिखेरती—कुछ शब्दो, अधिक अपने नेत्रो से, चली जाती थी। हिन्दू समाज ने जन-जन के बीच ऊँच-नीच का कटुबोध कराने के लिए कैसे-कैसे अजीब तरीके निकाले हैं। मुझे याद नही कब मैंने ठोकर मारकर अन्नदान करने से इकार कर दिया और वर्षगाँठो पर मेरा तुलादान किया जाने लगा। लकडी की टाल से बडी-सी तराजू आती, उसे तीन बल्लियो के सहारे लटकाया जाता, आम के पल्लवो और गेंदा के फूलो से सजाया जाता और मुझे किसी वर्ष अन्न से, किसी वर्ष फल, किसी वर्ष मिठाई से तोला जाता—मुझसे तीन साल छोटे मेरे भाई शालिग्राम भी साथ पलडे पर बैठने को मचलते—जैसे दूल्हे के साथ शहबाला, और तोल पर चढ़ी सामग्री

परजा-पवन, भिखारियो को बाँट दी जाती।

चम्मा की मृत्यु मेरे लडकपन मे ही हो गयी थी। वह बीमार पडी और उसकी बीमारी बढती ही गयी तो उसने इच्छा प्रकट की कि अत समय पर मेरे हाथो से ही उसके मुँह मे तुलसी-गगाजल डाला जाये। मुझे इस कार्य के लिए कोई लिवा ले गया और चम्मा के पीले चेहरे और डूबती आँखो को देखकर मुझे बडा डर लगा। दूसरे दिन चम्मा की अर्थी उठी तो किसी ने मुझे कमर से उठाकर मेरा कधा उसकी अर्थी से छुआ दिया और 'राम नाम सत्त है' कहते हुए उसके भाई-बद उसे लेकर चले गये। चम्मा की मौत शायद सबसे पहली मौत थी जो मैंने अपनी आँखो देखी।

बचपन मे चम्मा की झोपडी मे खेलने-खाने और उसकी ममतामयी आँखो के नीचे तरह-तरह की शैतानी करने की धुँधली-धुँधली-सी स्मृति अब भी मेरे साथ है।

और जब अपने उभरते यौवन के दिनो मे आर्य समाज के अछूतोद्धार और बाद को गाधीजी के हरिजन आदोलन के साथ मेरी सहानुभूति जगी तो मुझे इस बात पर गर्व होता था कि मेरी तो एक माँ ही चमारिन चम्मा थी, और जब एक दिन शायद नगर के आर्य समाज मे आयोजित किसी प्रीतिभोज मे मैंने अछूतो की सगत मे बैठकर कच्चा खाना खा लिया तो मुझे बड़ी प्रसन्नता और सतोष का अनुभव हुआ, और मुझे लगा कि मैंने चम्मा की बिरादरी के साथ कुछ न्याय किया, पर मेरे सबधियों और नातेदारो को यह खबर बड़ी नागवार गुजरी और उन्होंने व्यग्य से कहा कि आखिर इसने चमारिन की छाती का दूध पिया था, उस कुसस्कार का कुछ असर तो होना था ही। यह सस्कार का प्रभाव था, कि देश के समाज-सुधारक नेताओं के उपदेश का, कि मेरे अपने ही मानवतावादी उदार विचारों का, कि मेरे मन से बहुत पहले ही अछूतों को अछूत समझने की बात बिल्कुल उठ गयी थी। जब स्वतत्र रूप से मेरा अपना घर हुआ तो अक्सर चमार ही मेरे खाना बनानेवाले रहे। मुझे आश्चर्य और क्रोध तो तब होता जब घर की कहारिन चमार के छुए बर्तनो को माँजने से इनकार कर देती। हिंदू समाज-तत्र मे अछूत-पन की भी श्रेणियाँ हैं। आजकल जमादार की लड़की—रमना, मेरे

घर मे काम करती है और कभी-कभी खाना भी बनाती है। मुझे लगता है कि मेरे पूर्वजो ने अछूतो का अपमान करके जो पाप किया था उसका यत्किंचित् प्रायश्चित्त मैं कर रहा हूँ। सामाजिक स्तर पर कोई सुधार हो, इसके पूर्व व्यक्ति-व्यक्ति को निर्भीकता और साहस के साथ आगे बढना होगा।

इधर मैं सोचने लगा हूँ कि अछूतो के साथ या उनके हाथ का खाना-पीना अथवा उनके लिए मदिरो का द्वार खोलना केवल रूमानी औपचारिकताएँ अथवा प्रदर्शन हैं। समाज मे उनको अपना यथोचित् स्थान तभी मिलेगा जब उनमे शिक्षा का व्यापक प्रचार हो और उनका आर्थिक स्तर ऊपर उठे। साथ ही जाति की शृखला को ऊपर से नीचे तक टूटना नही तो ढीली होना होगा। जाति की जड, अर्थहीन और हानिकारक रूढियो से निम्नवर्ग के लोग उतने ही जकडे हैं जितने उच्चवर्ग के लोग। एक छोटा-सा कदम इस दिशा मे उठाया जा सकता है कि लोग अपने नाम के साथ अपनी जाति का सकेत करना बद कर दें। जिन दिनो मैं यूनिवर्सिटी मे अध्यापक था, मैं अपने बहुत-से विद्यार्थियो को प्रेरित करता था कि वे अपने नाम के साथ अपनी जाति न जोड़ें—अपने को रामप्रसाद त्रिपाठी नही, केवल रामप्रसाद कहे। भारत की आजाद सरकार चाहती तो एक विधेयक से नाम के साथ जाति लगाना बद करा सकती थी—कम-से-कम सरकारी कागजो से जाति का कॉलम हटा सकती थी, इसके परिणाम दूरगामी और हितकर होते। पर अभी उसमे कुछ भी क्रातिकारी करने का साहस नही है। वह जैसा चला आया है वैसा ही, या उसमे थोडा-बहुत हेर-फेर करके चलाये चले जाने मे ही अपनी चातुरी और सुरक्षा समझती है।

मेरी माँ ने मेरे लिए और कौन-कौन-सी मानताएँ मानी और उतारी इसकी मुझे याद नही, हालाँकि मेरे बचपन मे उनकी चर्चा बराबर की जाती थी। एकाध बातें, शायद अधिक चित्रमय होने के कारण, मुझे याद हैं। जैसे उन्हे किसी ने मुझे बेच देने की सलाह दी थी, वैसे ही उनकी किसी मुसलमान पडोसिन ने राय दी थी कि सब तरह के अजाब, आसेब से बचाने के लिए वे मुझे मुहर्रम के दिनो म इमाम साहब का फकीर बना दिया करें। हर साल मुहर्रम की नवीं तारीख को मुझे नया

सफेद पजामा और हरे रंग की कफनी पहनायी जाती, जनेऊ की तरह दोनों कंधों पर पीली-लाल कलायी की माला डाली जाती, मेरे हाथ में एक छोटा सा बटुआ दे दिया जाता और मैं इमाम साहब का फकीर बन जाता, और राधा (कवि के प्रपितामह की बहिन), जो मेरे जन्म के बाद अपना अधिक समय मेरे घर, मेरे साथ बिताने लगी थीं, मुझे मुहल्ले के घर-घर में ले जातीं। मैं हर ड्योढ़ी पहुँचकर कहता, 'इमाम साहब का भला' और घर की औरतें निकलकर मेरे हाथों में एक-दो पैसा धर देतीं, जिन्हें मैं सँभालकर बटुए में रख लेता। सध्या को इन पैसों की गुड़धानियाँ मँगायी जातीं और उस सूप में रखकर मेरे हाथों दुलदुल घोड़े को खिलाया जाता जिसका जुलूस ठीक हमारे घर के सामने से होता, पास के इमामबाड़े को जाता था। घोड़े के आगे पीछे सैकड़ों मुसलमान छाती की जगह पर गोल गोल कटे काले कुर्ते पहने एक बँधी ताल में ज़ोर-ज़ोर से छाती पीटते और एक सधे स्वर में 'हुसैन-हुसैन' चिल्लाते चलते, बुज़ुर्ग जो साथ होते, छाती पीटने की रस्म अदाई-भर करते। घोड़े के मुँह से बचे दो-चार दाने सूप में रह जाते, वे मुझे प्रसाद की तरह खिला दिये जाते और मैं साल-भर के लिए सारी आधि-व्याधि से मुक्त मान लिया जाता। जुलूस निकल जाता तो कोई कर्बला की उस लड़ाई की कथा सुनाता जिसमें इमाम साहब और उनके परिवार के लोग शहीद हुए थे। बाद को कभी यह कथा मैंने अधिक विस्तार से पढ़ी। लड़कपन में जब मुहर्रम के ढोल की आवाज़ डम डम डम-डम—कानों में पड़ने लगती तो मैं जान जाता कि मेरे इमाम साहब का फकीर बनने का वक्त नज़दीक आ गया है। तब शायद मैं ८-९ साल का था, मुहर्रम-दशहरा साथ-साथ पड़ा, दोनों के जुलूसों में टक्करें हुईं, हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए, तभी से यह रस्म बंद कर दी गयी।

समानांतर रेखाएँ

सत्येंद्र शरत

[मध्य वर्ग के एक सद्‌गृहस्थ का घर। पर्दा उठने पर बड़े लड़के का कमरा दीखता है, जो घर-गृहस्थी के सामानो से घिरा होने पर भी साधारण रूप से सजा हुआ है। कोने म एक पलँग है जिस पर दरी और सफेद चादर बिछी हुई है। पलँग के नीचे एक खटिया है, जिस पलँग ने ढँक लिया है। निकट ही नीले मेजपोश से मढा हुआ एक चौकोर मेज है, जिस पर दो-एक दैनिक अखबार लापरवाही से पड़े हुए है। दूसरे कोने मे विभिन्न साइज के चार बक्से एक-दूसरे पर रखे हुए हैं जो एक फटी-पुरानी धोती से ढके हुए हैं।

बड़ा लड़का नरेश पलँग पर बैठा हुआ है। उसके वस्त्र साधारण हैं—महज एक कमीज, पाजामा। वह खामोश है, लेकिन लगता है कि वह कुछ परेशान है। उसके चेहरे से ही दीखता है कि उसके मन मे कुछ-रेंग रहा है, और जब तक वह चीज साफ न हो जायेगी, वह ऐसा ही उखड़ा-उखड़ा-सा रहेगा।

निकट फर्श पर बिछी चटाई पर, उसकी पत्नी शकुंतला बैठी हुइ चावल बीन रही है। शकुंतला चतुर और अपने अधिकारो की रक्षा करने वाली स्त्री है। तेज स्वभाव व तेज जबान की है, लेकिन मन की बुरी नही है। इस समय चावल बीनने के साथ-साथ अपने पति के मन मे उठते हुए ज्वार का भी अध्ययन कर रही है।]

शकुंतला (सिर उठा, पहले दरवाजे की ओर, फिर पति की ओर देखती हुई) मेरी मानो। आज माँ जी से साफ-साफ सब बातें कर लो। इस तरह कब तक मन मे घुलते रहोगे ? आज तुम्हे भी टाइम है। अशोक देवरजी भी इस वक्त यहाँ नही हैं, और माँ जी भी खाली हैं। नहा चुकी हैं। सामने तुलसी पर पानी चढा रही हैं। (सहसा उठती हुई) मैं रसोई मे जा रही हूँ। तुम उन्हे आवाज देकर यहीं बुला लो।

[चावल की थाली ले, दरवाज की दायी ओर की चिक उठा, तेज-तेज बाहर निकल जाती है। नरेश एक टक उसे जाते देखता रहता है। फिर उठकर खडा हो जाता है और कुछ क्षण अनिश्चय की अवस्था म खडा रह, दरवाज तक जाता है। दायें हाथ से चिक हटाकर आवाज दता है—]

नरेश मा अगर फुरसत हो गयी हो, तो जरा इधर आओगी। तुमसे कुछ बात करनी थी।

माँ का स्वर (बाहर से) आती हूँ नरेश।

बच्चे का स्वर (बाहर से) दादीजी जाओ तुम्हे पिताजी बुला रहे हैं।

माँ का स्वर (बाहर से लाड़ करती हुई) आती हूँ रे रमेश। तुम बडी चिंता है अपने पिताजी की। (हल्की सी हँसी)

[नरेश चिक छोड देता है और लौटकर पलग के पास आ जाता है। कुछ क्षण वस ही खडा रहता है। माँ अदर जाती है। अधिक उम्र नही है। युवावस्था मे ही विधवा हो जाने के कारण चेहरे पर व्यथा, वेदना और करुणा के भावो का एक विचित्र ही सम्मिश्रण है। सफेद धोती पहन रखी है।]

नरेश (थोडा आगे बढ़कर) आओ माँ।

माँ (नरेश के चेहरे को एकटक देखती हुई) क्या बात है रे? बडा परेशान सा दीख रहा है।

नरश (ईमानदार है, इस कारण झूठ नहीं बोल सकता) हाँ माँ मैं पिछले दो-तीन दिना म परेशान हूँ।

माँ (आकुलतापूवक) क्या बात है? क्या हो गया है एसा?

नरश (स्वर का रूखापन दबाने की यथासाध्य चेष्टा करते हुए) बैठो माँ। सब कुछ बताता हूँ। तुमस कुछ भी नही छिपाना है। इसीलिए तुमको बुलाया है। इसीलिए तुम्हें बता रहा हूँ। लकिन पहल बठ जाओ।

माँ (भरमायी-सी चटाई पर बठ जाती है) हाँ, अब बता। क्या हो गया है?

नरेश सुनो माँ लेकिन पहले तुम मुझे क्षमा कर देना, क्योंकि मैं आज तुम्हारा मन दुखाऊँगा।

मा (भरमायी-सी) तू ये पहेलियाँ क्या बुझा रहा है नरेश? साफ-साफ कह न। क्या कहना चाहता है।

नरेश (भावपूर्ण स्वर में) माँ मा, साफ बात यह है कि मैं अब अशोक को अपने साथ नहीं रख सकता। मैं अशोक को अपने से अलग करना चाहता हूँ।

मा (जैसे उसे अपने कानों पर विश्वास न हो रहा हो) क्या?

नरेश हाँ माँ। अशोक को अब इस घर से अलग होना होगा।

माँ (पूर्ववत) लेकिन क्यों नरेश? अशोक ने क्या किया है?

नरेश (कुछ कहना चाहता है, लेकिन यह न समझ पाने के कारण कि कहाँ से आरंभ करे चुप रहता है)

माँ (नरेश को एकटक देखती हुई) बता न नरेश, तुझे अशोक की क्या बात चुभी है? क्या उसने तेरी बेइज्जती की है? बाहर तेरी बाबत कुछ ऊँच-नीच कहा है?

नरेश नहीं माँ। ऐसा कुछ नहीं।

मा फिर?

नरेश (एक क्षण रुककर) देखो माँ अशोक अब बच्चा नहीं है। पढ़ लिख गया है। अब तो शादी भी हो गयी है। उसे अब घर की जिम्मेदारी समझनी चाहिए। पर वो घर समझना चाहिए सराय नहीं। आखिर उसका भी तो कुछ कर्त्तव्य है।

माँ (जैसे अँधेरे में खो गयी हो) है रे [illegible] भी [illegible] है। पर वह धीरे धीरे ही सब समझेगा। अभी तो [illegible] में बढ़ियाँ पड़ी हैं। कुछ [illegible] और लगेगा, तब सँभल जायगा।

नरेश (स्वर में थोड़ी चिढ़ है) [illegible] वा अठारह साल का [illegible] था, अब [illegible] पर सारी जिम्मेदारियों को महसूस [illegible] था।

साल हो गये हैं। मैं ही चला रहा हूँ घर को। अशोक तेईस का होने को आया है, पर इसके कान पर तो जूँ नही रेंगती। आखिर मुझमे ऐसे कौन सुरखाव के पर थे जो इसमे नही हैं ?

माँ : (स्वर मे कपन आ जाता है) जब मुझ पर बिजली गिरी थी नरेश, तब तू ही तो मेरे पीछे था रे। तू पत्थर न बनता तो कौन बनता ? ये अशोक तो तेरे साये मे दुबका हुआ था। बेटे, तू एक रात मे बच्चे से नौजवान न बनता तो तेरी ये विधवा माँ और ये अबोध छोटा भाई किस आधार पर इस निर्दय ससार मे जीते ?

नरेश (सिहरकर) माँ !

माँ (सँभलती हुई) बेटा, ये दुख मुझ पर और तुम पर पडा था। ठोकर लगते ही तू सँभल गया। अशोक तब नादान था। वह तो अब भी यह कल्पना नही कर सकता कि उस समय हम पर क्या बीती थी ? तू बता, अब वह एकदम कैसे जिम्मेदार बन जायेगा ?

नरेश : (सोचता हुआ) तुम ठीक कहती हो माँ। पर मैं ही कितना सहूँ ? भाग्य ने मुझे कोल्हू का बैल बना दिया। कधे पर जुआ रख, बिना कुछ शोर-शराबा किये, मैं गोल दायरे मे चक्कर काटता चला जा रहा हूँ और अशोक वह आसमान मे ऊँची उडानें भरने वाला आजाद पक्षी है। मेरी आँखो पर चमडे की पट्टी बँधी हुई है। और उसकी आँखें नित नये क्षितिज देखती है। वह लेखक है। उदीयमान कलाकार है। उसके सामने उसके भविष्य का प्रश्न है। वह क्लर्की या मास्टरी मे अपना कैरियर नही नष्ट कर सकता मुझे घर के लिए, उसके, उसकी पत्नी के लिए रोटी जुटानी है। उसे केवल अपने लिए यश-प्रशसा, मान, सम्मान, कीर्ति और ख्याति बटोरनी है। (व्यग्य से हँसकर) और हम दोनो सगे भाई हैं। एक माता-पिता का रक्त हमारे अदर बहता है।

मां मैं तेरी पीडा समझती हूँ नरेश। पर बडे ही अगर अपने से छोटो के लिए त्याग नही करेंगे, तो ससार से त्याग मिट न जायेगा ?

नरेश (रूखेपन से) अच्छा है मां। ससार से त्याग मिट जाये। सब ही स्वार्थी बन जायें। तब दूसरो को भी पता चलेगा कि अपने-आप करके खाना कैसा होता है ?

मां (जैसे कुछ भी न समझ रही हो) पर नरेश, अचानक ऐसी क्या बात हो गयी है ? अब तक तो तूने कभी अशोक को भार नही समझा। अब ये एकदम ही अशोक की तरफ से तेरा मन क्यो फट गया है क्या किया है उसने ?

नरेश अब छोटी-छोटी कई बातें हैं मां, जो मैंने पिछले तीन-चार महीनो मे नोट की हैं। वैसे वे घटनाएँ अपने मे बहुत मामूली हैं। पर अगर उनकी कडी जोड दी जाये तो वे इसी तरफ इशारा करती हैं कि मैं भी अशोक ही की तरह स्वार्थी बन जाऊँ और अपने ही बीवी-बच्चे की तरफ देखूं।

मां (प्रार्थना करते हुए) मैं हाथ जोडती हूँ नरेश। ऐसी बात मुँह से न निकाल। मुझे बता तो, अशोक ने ऐसा किया क्या है ?

नरेश (स्वर मे खीज है) कहा न मां, कई बातें हैं। एक ताजी ही हरकत लो उसकी तुम्हें तो मालूम ही है कि अखबारो मे दूसरे-तीसरे महीने उसकी कहानी छपने पर जो पच्चीस-तीस रुपये उसके आते हैं, वो मुझे दे देता है। इधर पिछले दो माहो मे उसकी कई कहानियाँ छपी हैं। इस महीने उसके तीन मनीआर्डर आये—दो तीस-तीस रुपये के, और एक चालीस का। उसने तीस रुपय वाले दोनो मनीआर्डर तो कूपन समेत मुझे दे दिये और चालीस वाले का कोई जिक्र तक न किया। कल रमेश की मां ने मुझ बताया कि अशोक अपनी बहू के लिए सिल्क की

एक प्रिंटेड साडी लेकर आया है। बहू बता रही थी कि वह अडतीस रुपये की है।

मां : (साश्चर्य) अच्छा। मुझे तो पता नही।

[सहसा शकुंतला तेज-तेज कमरे मे आती है और बडी फुर्ती से खूंटी से अपनी धुली धोती व जंफर उतारने लगती है।]

शकुंतला . मां को इस तरह की बातें कैसे पता चल सकती है? यह तो वह ही जान सकता है जो घर मे अपने आंख-कान खोलकर रहे·····

(कहती-कहती उसी चाल से बाहर चली जाती है)

मां : (साश्चर्य) तो भी। घर मे ऐसी चीज आये और मुझे·····

नरेश : (खीज बढ़ जाती है) मां, तुम भी कमाल करती हो। तुम्हारा ख्याल है कि बहू अभी ही उस साड़ी को पहन कर घर मे घूमती फिरेगी? वह तो उसने सदूक मे बद कर रख दी है। (रुककर) रमेश की मां को भी नही पता चलता, अगर रमेश··· (सहसा) ठहरो, मैं रमेश से पुछवा देता हूं। (आवाज देते हुए) रमेश! ··· ओ रमेश······

मां : (रोकती हुई) नही रे। रमेश को बुलाने की क्या····· मुझे तेरा विश्वास नही··· ?

रमेश का स्वर : (बाहर से) आया, पिताजी।

नरेश : हर्ज ही क्या है मां? रमेश तो बच्चा है। सच ही बतायेगा।

(पांचवर्षीय बालक रमेश का कमीज-हाफ पेंट में प्रवेश)

रमेश : (नरेश के निकट आकर) जी, पिताजी।

नरेश : रमेश, बेटा, अपनी दादीजी को तो बताओ, वह खाकी कागज तुम्हें कहां मिला था?

रमेश : (जिसके ध्यान से बात उतर चुकी है) कौन-सा कागज पिताजी?

नरेश (थोडा चिढ़कर) अरे वही, जिसे उठाकर तुम अपनी अम्मा के पास ले गये थे और उसका जहाज़ बनाने को कहा था।

रमेश (अब याद आ गया है) अच्छा, वह कागज वह तो मैंने चाचाजी के कमरे की खिडकी के नीचे से उठाया था। वहाँ तो एक टूटी हुई कघी भी पडी थी पिताजी।

नरेश (चिढकर) मैं कघी की बात नही पूछ रहा हूँ (रुक कर माँ से) माँ, अशोक वहू के लिए नया कघा भी लाया होगा, तभी उसने पुराना फेंक दिया होगा · (फिर रमेश से) हाँ तो रमेश, फिर क्या किया था तुमने उस कागज़ का ?

रमेश (याद करने की कोशिश करता है) उस कागज़ का ?

नरेश : (अपनी चिढ़ दबाते हुए) हाँ, हाँ। उस कागज़ का। वह जो तुमने खिडकी के नीचे से उठाया था, उसका तुमने क्या किया ?

रमेश . मैं अम्मा के पास ले गया कि मेरे लिए उसका जहाज़ बना दो।

नरश फिर तुम्हारी अम्मा ने क्या किया ?

रमेश (याद करते हुए) अम्मा ने ? अम्मा अपनी धोती सी रही थी, बोली ··

नरेश (बात काटकर) देखा माँ तुमने, शकुतला अपनी फटी धोतियाँ सी-सीकर गुज़ारा कर रही है और छोटी वहू के लिए चालीस-चालीस रुपये की साडियाँ आ रही हैं। खैर। (रमेश से) हाँ, रमेश, फिर तुम्हारी अम्मा ने क्या कहा ?

रमेश (दुहराता है) अम्मा ने अम्मा ने कहा—परे रख दे इसे। अभी मैं अपनी धोती सी रही हूँ। फिर अम्मा ने उसे देखकर मेरे हाथ से ले लिया और उसे पढने लगी। पढ़कर बोली

नरेश (आतुरतापूर्वक) क्या बोली ?

रमेश : (दुहराता है) क्या बोली ?····· बताऊँ ?

नरेश : (प्यार से) हाँ, हाँ, बताओ बेटे ·····

रमेश : अम्मा ने कहा—तुम इसे कहाँ से लाये हो ? मैंने कहा—चाचाजी के कमरे की खिडकी के नीचे से। फिर अम्मा ने कहा—अच्छा, मुझे जगह तो दिखा, कहाँ से उठाया है ये कागज़ ? मैं अम्मा के साथ गया और जगह बता दी कि यहाँ से उठाया है।

नरेश : (स्वर मे हल्का व्यंग्य है) सुन रही हो न माँ ? 'बनारस सिल्क स्टोर' का वह पैकट हमारे ही घर आया था।

माँ : हाँ नरेश, सुन रही हूँ······(रमेश से) अच्छा रमेश, फिर तेरी अम्मा ने क्या किया ?

रमेश : (दुहराता है) अम्मा ने·· ·फिर अम्मा अदर चाचीजी के कमरे मे आयी। चाचीजी सो रही थी। अम्मा ने उन्हें जगाया और कहा—बहू, ये तुम्हारा कागज खिडकी से नीचे गिर गया था। देख लो, तुम्हारे काम का तो नहीं ?

नरेश : तब तुम्हारी चाचीजी ने क्या कहा ?

रमेश : (याद करते हुए) चाचीजी ने ?

नरेश : (अपनी चिढ़ दबाते हुए) हाँ, चाचीजी ···· तब तुम्हारी चाचीजी ने भी तो कुछ कहा होगा ?

रमेश : (याद करते हुए) हाँ, कहा। उन्होंने कहा—नही जीजी, ये कागज मेरे काम का नही। बेकार है। तब अम्मा ने पूछा—इसमे देवरजी कुछ लाये थे क्या ? चाचीजी बोली—हाँ, एक साडी लाये थे।

नरेश : देख लो माँ। बहू ने खुद स्वीकार किया·····(रमेश से) अच्छा रमेश, फिर तुम्हारी अम्मा ने क्या कहा ?

रमेश : कुछ नहीं। बोलीं—बहू, जरा मुझे भी दिखाना। कैसी साडी लाये हैं देवरजी ? तब चाचीजी ने सदूक खोलकर साडी दिखा दी। अम्मा ने अच्छी तरह साडी देखकर चाचीजी को दे दी। चाचीजी ने बक्से में बद कर दी।

नरेश : (साश्चर्य) तुम्हारी अम्मा ने कुछ कहा नही ?
रमेश : अम्मा ने कहा।
नरेश : क्या कहा ?
रमेश : कहा—बहुत अच्छी है।
मां : (सोचती हुई) हूँ ··· अच्छा रमेश, तुम अब जाओ। खेलो ··
रमेश : (प्रसन्न होकर) अच्छा दादीजी।

[अपने पिता की ओर अचरज से देखता हुआ रमेश दरवाजे के बाहर चला जाता है।

कमरे मे कुछ देर शाति रहती है—यद्यपि कमरे के दोनो प्राणी अशात हैं।]

नरेश · अब ?· · अब तुम क्या कहती हो मां ?
मां : (चौंक उठती है, नरेश को देखते हुए टूटी-सी) मै क्या कहूँ नरेश ? · तू कहे, तो मैं उसे समझा दूँगी। समझ जायेगा।
नरेश : पर मैं शकुतला को कैसे समझाऊँगा मां ? खिडकी (बायीं ओर) तक जाता है, (सहसा मां की ओर मुड़कर) जीवन मे उस दिन पहली बार उसने मुझे उलाहना देते हुए कहा कि तुम कभी भी मेरी खुशी के लिए महँगा कपडा नही लाये—ये कहकर कि देवरजी अभी पढ रहे हैं। उनके खर्च मे कमी पड जायेगी। आज वही देवरजी कमाने लगे हैं तो अपनी कमाई से चालीस रुपये की रेशमी साड़ियाँ अपनी बीवी के लिए लाने लगे हैं।
मां : (कातर स्वर से) लेकिन नरेश, वह सिर्फ एक ही साडी तो लाया है।
नरेश : लेकिन मां, मैं तो कभी एक साडी तक नहीं लाया हूँ। (रुककर) मां, तुम बताओ। तुमने शकुतला को कीमती कपडे पहने देखा है ? · आखिर उसका भी तो मन करता होगा। कभी तो वह भी इस घर [illegible] बहू थी। क्या ओढ़ा-पहना ?

(माँ खामोश है। गभीरतापूर्वक कुछ सोच रही है)

नरेश तुम तो जानती हो माँ, छोटी छोटी बातें दिल में दरार पैदा कर देती हैं।

माँ : (सोचती-सी) हाँ बटा।

नरेश माँ, जब ये नरेश हुआ था तो शकुतला ने मुझसे कहा था—अब तुम अपना बीमा करवा लो। तब मैंने हँसकर कहा था—मुझे बीमा करवाने की क्या जरूरत? मेरा बीमा तो अशोक है? (रुककर) माँ, मैं तो इस बात को भूल भी गया था। रात शकुतला ने याद दिलायी। इसकी बाबत सोचने लगा, तो सच कहता हूँ माँ, मन को बडी चोट पहुँची (थोडा रुककर) क्या सोचने लगी माँ?

माँ (हडबडाकर) कुछ नही कुछ नही तो तू अब यही चाहता है कि अशोक और उसकी बहू को अलग कर दिया जाये?

नरेश (एक क्षण रुकता है, फिर दृढ स्वर मे) हाँ मा गृहस्थी मे सब सदस्यो के सयुक्त रूप से रहने का अर्थ है—सबकी ओर से बराबर त्याग बराबर सहनशीलता और बराबर सतोष। जहाँ घर के एक भी सदस्य के अदर, इनम से एक की भावना मे कुछ कमी आती है, वही सयुक्त परिवार की मर्यादा और सुख शाति मिटन लगती है। उससे अच्छा तो यही है कि घर के लोग अलग-अलग रहने लग जायें।

माँ (खोयी सी) मेरी समझ मे तो तेरी कोई बात नही आ रही है नरेश कोई बात नही आ रही है क्या क्या तू सचमुच अशोक को अलग कर देगा? अरे वह तो अभी तक नासमझ है। ढग से कमाता भी नही है। कैसे अपना गुजारा करेगा वह?

नरेश टाइम बहुत बडा मास्टर होता है, माँ। सब कुछ सिखा देता है मैं तो वक्त की ठोकरें खाकर ही चलना सीखा हूँ? अशोक को भी तो मौका दीजिए कि वह कुछ सीखे।

मां : (कातरतापूर्वक) लेकिन नरेश, वह तो अभी तक ·····

नरेश : (बात काटकर) ना मां। इस जगह तुम्हारा प्यार उसका सुधरना रोक देगा। उसका ज्ञान अधूरा ही रह जायेगा। और अधूरा आदमी दुनिया के किसी मतलब का नही होता मां। जमाना बडा खराब है।

मां : (कांपते स्वर मे) हाँ नरेश, जमाना सचमुच खराब है। इसी से तो डरती हूँ कि वह अपना गुजारा करेगा कैसे? अरे, उससे तो अपने लिए एक अलग कोठरी तक न ढूँढी जा सकेगी। वह गृहस्थी कैसे चलायेगा?

नरेश : (फीकी हँसी हँसकर) कैसी बच्चो की-सी बातें करती हो मां? आखिर कभी-न-कभी तो उसे गृहस्थी चलानी ही होगी। कब तक वह तुम्हारे और मेरे प्यार के घोंघे मे छिपा रहेगा? एक-न-एक दिन तो उसे बाहर निकल सब कुछ झेलना ही होगा।

मां : वह जब आयेगा, तब आयेगा। अभी तो ·····

[अचानक दरवाजे की चिक उठाकर छोटा लडका अशोक अदर प्रवेश करता है। कमीज-पतलून मे आवृत इस युवक के पहनावे और चाल-ढाल से स्पष्ट हो जाता है कि इस भाग्यवान ने जीवन मे अभी तक दुख और अभाव नही जाने हैं।

कमरे मे घुसते ही बोलना शुरू कर देता है और बोलते-बोलते मां के निकट आ जाता है।]

अशोक : नही मां। वह दिन अभी ही आने दो।

[अशोक के इस तरह आने और बोलने से मां चौंक पडती है। नरेश अशोक को देख, अपना मुंह ि की ओर कर लेता है।]

मां : (सयन स्वर मे) अशोक!

अशोक : (हल्की मुस्कान) हाँ, मां ··· (मुड़कर गंभीरता साहब, मुझे क्षमा करना। पर आप लोगो की कुछ हिस्सा मैंने सुन लिया है। मैं आंगन से ि

(माँ खामोश है। गंभीरतापूर्वक कुछ सोच रही है)

नरेश : तुम तो जानती हो माँ, छोटी-छोटी बातें दिल मे दरार पैदा कर देती हैं।

माँ : (सोचती-सी) हाँ बेटा।

नरेश : माँ, जब ये नरेश हुआ था तो शकुतला ने मुझसे कहा था—अब तुम अपना बीमा करवा लो। तब मैंने हँसकर कहा था—मुझे बीमा करवाने की क्या ज़रूरत? मेरा बीमा तो अशोक है? (रुककर) माँ, मैं तो इस बात को भूल भी गया था। रात शकुतला ने याद दिलायी। इसकी बाबत सोचने लगा, तो सच कहता हूँ माँ, मन को बडी चोट पहुँची ··(थोड़ा रुककर) क्या सोचने लगी माँ?

माँ : (हड़बड़ाकर) कुछ नही · कुछ नही · तो तू अब यही चाहता है कि अशोक और उसकी बहू को अलग कर दिया जाये?

नरेश : (एक क्षण रुकता है, फिर दृढ़ स्वर मे) हाँ माँ··· गृहस्थी मे सब सदस्यो के सयुक्त रूप से रहने का अर्थ है—सबकी ओर से बराबर त्याग, बराबर सहनशीलता और बराबर सतोप। जहाँ घर के एक भी सदस्य के अदर, इनमे से एक की भावना मे कुछ कमी आती है, वही सयुक्त परिवार की मर्यादा और सुख-शाति मिटने लगती है। उससे अच्छा तो यही है कि घर के लोग अलग-अलग रहने लग जायें।

माँ : (खोयी-सी) मेरी समझ मे तो तेरी कोई बात नही आ रही है नरेश···कोई बात नही आ रही है · क्या · क्या तू सचमुच अशोक को अलग कर देगा? अरे·· वह तो अभी तक नासमझ है। ढग से कमाता भी नहीं है। कैसे अपना गुजारा करेगा वह?

नरेश : टाइम बहुत बडा मास्टर होता है, माँ। सब कुछ सिखा देता है···मैं तो वक्त की ठोकरें खाकर ही चलना सीखा हूँ। अशोक को भी तो मौका दीजिए कि वह कुछ सीखे।

मां : (कातरतापूर्वक) लेकिन नरेश, वह तो अभी तक......

नरेश : (बात काटकर) ना मां। इस जगह तुम्हारा प्यार उसका सुधरना रोक देगा। उसका ज्ञान अधूरा ही रह जायेगा। और अधूरा आदमी दुनिया के किसी मतलब का नहीं होता मां। जमाना बड़ा खराब है।

मां : (कांपते स्वर में) हाँ नरेश, जमाना सचमुच खराब है। इसी से तो डरती हूँ कि वह अपना गुजारा करेगा कैसे? अरे, उससे तो अपने लिए एक अलग कोठरी तक न ढूंढ़ी जा सकेगी। वह गृहस्थी कैसे चलायेगा?

नरेश : (फीकी हँसी हँसकर) कैसी बच्चों की-सी बातें करती हो मां? आखिर कभी-न-कभी तो उसे गृहस्थी चलानी ही होगी। कब तक वह तुम्हारे और मेरे प्यार के घोंघे में छिपा रहेगा? एक-न-एक दिन तो उसे बाहर निकल सब कुछ झेलना ही होगा।

मां : वह जब आयेगा, तब आयेगा। अभी तो......

[अचानक दरवाजे की चिक उठाकर छोटा लड़का अशोक अंदर प्रवेश करता है। कमीज-पतलून में आवृत इस युवक के पहनावे और चाल-ढाल से स्पष्ट हो जाता है कि इस भाग्यवान ने जीवन में अभी तक दुख और अभाव नहीं जाने हैं।

कमरे में घुसते ही बोलना शुरू कर देता है और बोलते-बोलते मां के निकट आ जाता है।]

अशोक : नहीं मां। वह दिन अभी ही आने दो।

[अशोक के इस तरह आने और बोलने से मां चौंक पड़ती है। नरेश अशोक को देख, अपना मुँह खिड़की की ओर कर लेता है।]

मां : (संयत स्वर में) अशोक!

अशोक : (हल्की मुस्कान) हाँ, मां ... (मुड़कर गंभीरता से) भाई साहब, मुझे क्षमा करना। पर आप लोगों की बातचीत का कुछ हिस्सा मैंने सुन लिया है। मैं आंगन से निकल रहा

था। आप लोगो से अपना जिक्र सुन ठिठक गया और फिर खड़ा ही रह गया। ये सोचकर कि इस जगह मेरा भी कुछ कहना जरूरी है, यहाँ आ गया हूँ।

मां : (एक क्षण चुप रह कड़े स्वर मे) अशोक, अपने भाई साहब से माफी माँग…चल…

अशोक : उस साड़ी वाली बात के लिए न।" हाँ माँ, जरूर माँगूंगा। अपने उस लड़कपन के लिए मुझे भी अफसोस है। पर क्या करूँ ? ये लडकपन तो अब मेरे स्वभाव का अग बन गया है। मैं खुद बहुत संजीदगी से दूर करना चाहता हूँ।

(कुछ क्षणो की खामोशी। माँ और नरेश चुप रहते हैं)

अशोक : मुझे माफ कीजिए भाई साहब। मैं अभी तक…

नरेश : (बात काटकर, रूखेपन से) रहने दो अशोक। अब…

अशोक : नही भाई साहब। (फीकी मुस्कराहट से) मैं सच कह रहा हूँ। मुझे अभी तक घर मे घर का एक अग बनकर रहना नही आया है। अभी मैं घर मे एक बच्चे की तरह रह रहा हूँ, जो ये अपना अधिकार समझता है कि सब लोग उसकी तरफ ध्यान दें, उसकी सब जरूरतें पूरी करें और उससे कुछ चाहना न करें· अब तक मैंने कभी न सोचा था कि ये स्थिति घर के दूसरे प्राणियो के लिए कितनी दुखदायी हो सकती है, लेकिन आज आपकी बातें सुनकर मेरी आँखें खुल गयी।

मां : (भाव-विह्वल स्वर में) अशोक! बावले, बड़े भाई के पैरो पर गिर। उससे माफी माँग। तूने उसका दिल दुखाया है।

अशोक : (तत्परता से) लो माँ। मुझे इसमे कोई लज्जा नही है। (झुककर नरेश के पैर छूता है। भीगे स्वर में) भाई साहब सचमुच मुझे ··

नरेश : (भावपूर्ण स्वर मे) बस-बस अशोक, मेरे लिए इतना ही बहुत है।

[अशोक को गले लगा लेता है, दोनो भाइयो की आँखें

भीग जाती हैं। माँ के चेहरे पर मुस्कराहट आ जाती है—यद्यपि उसकी आँखें अनायास ही आँसुओं से भर उठी हैं।]

माँ (भरे गले से) मेरे बच्चे ! मेरे बच्चे

अशोक (सँभलकर, नरेश से अलग होता हुआ) अब मेरा मन हल्का हो गया है। अब मैं कुछ कहना चाहता हूँ भाई साहब।

नरेश (स्वर मे स्नेह है) कहो अशोक

अशोक भाई साहब भाई साहब, मुझे सुधरने का अवसर दीजिए।

नरेश हाँ हाँ। अवश्य, पर कैसे ?

अशोक मुझे घर से अलग कर दीजिए।

माँ (चौंककर) अशोक !

नरेश (ऊँचे स्वर मे) अशोक !

[माँ और नरेश हतप्रभ-से अशोक को देखते हैं। कुछ क्षणो की चुप्पी। धीरे-धीरे अशोक अपनी गर्दन ऊपर उठाता है और बोलने लगता है—]

अशोक : मैं ठीक कह रहा हूँ भाई साहब। आपके और माँ-भाभी के प्यार ने मुझे निकम्मा बना दिया है। मैं घरेलू जिम्मे-दारियाँ नही उठा सकता नही सच ये है कि मैं ये जिम्मेदारियाँ उठाना नही चाहता। पर ये तो गलत है। मैं अब बच्चा नही रहा हूँ। अब तो मुझे गृहस्थी का बोझ उठाना सीखना ही होगा।

नरेश पर ये सब तो तुम घर मे रहकर, मेरा हाथ बटाकर भी सीख सकते हो अशोक।

अशोक नही भाई साहब, एक मजबूत दरख्त की आड मे छिपकर कोई न गोली चलाना सीख सकता है, और न गोली से बचना। भाई साहब, मुझे खुले मैदान मे लडना सीखने दीजिए। मैं कई बार गिरूँगा, चोट खाऊँगा, कँटीले तारो मे मेरी वर्दी तार-तार हो जायेगी, लेकिन मैं लडना सीख

जाऊँगा · आपके साये में रहूँगा तो मैं अधूरा का अधूरा सिपाही रह जाऊँगा ।

माँ : (विह्वल स्वर मे) लेकिन अशोक तू ···

अशोक : (बात काटकर) ठीक कह रहा हूँ माँ । जहाँ कोई आफत आयेगी, भाई साहब सामने आकर उसे झेल लेंगे, और अपनी छाती पर घाव खा लेंगे ·, रुककर) मैं किसी नादानी से अपने सिर कर्ज कर लूँगा तो भाई साहब अपनी पेंशन एडवास ले बैठेंगे, भाभी के जेवर गिरवी रख देंगे और मुझसे नाराज हो, लाल पत्थर बनना चाहे तो नही बन सकते । आखिर वह बडे भाई हैं।

नरेश : (स्नेहपूर्वक) तो सोच पगले । तू तो लेखक है । बड़ा भाई फिर छोटे भाई को अपने से अलग कैसे कर सकता है ?

अशोक · छोटे भाई की भलाई की खातिर उसे ऐसा करने मे कोई हिचक न होनी चाहिए ।

नरेश : (साँस लेकर) हाँ अशोक, कहना आसान है । पर अगर तेरे भी कोई छोटा भाई होता और तूने उसे अपने बेटे की तरह पाला होता···

अशोक : तो पख उग आने पर वह भी उड जाता और घोसले मे अपने पालने वाले के पास न बैठता ।

माँ : (कातर स्वर मे) अशोक ! ·· मैं तो पहले ही बहुत दुखी हूँ रे, मुझे और ज्यादा दुख क्यो देता है ?

अशोक : इस दुख मे भी एक सुख छिपा हुआ है माँ, जो तुम और भाई साहब बाद मे महसूस करोगे ! मुझे अलग कर देने पर तुम लोग मुझे ज्यादा प्यार करोगे। मैं भी दुख-सुख मे तुम्हारे पास दुगने प्यार से दौडा आया करूँगा इकट्ठा रहना ·इकट्ठा रहने मे प्यार मिटता जायेगा । उस पर गलतफहमियो की तह जमती जायेंगी । हमारी बीवियाँ इस काम मे हमारी मददगार होगी और आखिर एक दिन हमारा प्यार खत्म हो जायेगा · हम लाख सगे भाई सही, हमारी बीवियाँ तो सगी बहन नहीं हैं ।

नरेश : (माँ से) माँ, ये तो लेखक है। इसके सामने और क्या कहूँ।

माँ : इसके कहने पर ध्यान न दे नरेश। ये तो सिड़ी हो गया है।

अशोक : (हल्की हँसी) ठीक है माँ · (रुककर) तो भाई साहब, मेरी प्रार्थना ·

माँ : (तीव्र स्वर मे) पागल हो गया है रे अशोक ? जग-हँसाई कराने पर तुला हुआ है।···लोग क्या कहेगे। *भाई सगे भाई से अलग हो गया है*

अशोक : हाँ माँ, अलग हो गया है पर मन से नही। मन से तो हम कभी अलग नही हो सकते माँ, पानी को लाठी से कितना ही पीटो, पानी कभी दो नही होता। एक ही रहता है। पर माँ, अपने परिवार की सुख-शाति के लिए हम लोगो का अलग होना बहुत जरूरी है।

माँ (दुख व निराशा से) क्यो है रे ?

अशोक : भाई साहब का कहना ठीक है माँ, सयुक्त परिवार अब केवल एक ही तरीके से चल सकता है। और वह ये कि घर के सब प्राणी एक-दूसरे के लिए दुख सहे। एक-दूसरे के लिए त्याग करें। और जो भी करें अपने सुख-सतोष के लिए नही, घर के दूसरे प्राणियो के सुख-सतोष के लिए करें।

नरेश : ठीक है अशोक। हम लोग कोशिश करेंगे कि हम ऐसा करें।

अशोक : (फीकी मुस्कराहट से) काश, ऐसा हो सकता भाई साहब। पर अभी मैं भी इस योग्य नही हूँ, और आपकी छोटी बहू के बारे मे तो कहना ही बेकार है। मैंने देख लिया है, उसमे त्याग का माद्दा तो बिल्कुल भी नही है · आये दिन घर मे कलह हो, इससे तो यही अच्छा है कि हम प्रेमपूर्वक अलग हो जायें।

माँ : (काँपते स्वर मे, दृढ़तापूर्वक) अशोक !

अशोक : (बिना विचलित हुए) हाँ माँ।

(कमरे मे कुछ देर के लिए खामोशी छा जाती है।)

नरेश : (पलंग से उठ खड़ा होता है) तो ये तुम्हारा अतिम

निश्चय है।

अशोक : हाँ, भाई साहब। और मैं इस पर अटल रहना चाहूँगा।
(सहसा माँ के संयम का बाँध टूट जाता है।)

माँ : (सिसकियाँ भरते हुए) तो तू इस घर से अलग होगा?··· इस घर के लिए पराया बनेगा रे?

अशोक : (प्यार से) हाँ माँ·· पर हमेशा के लिए नहीं। मैं जानता हूँ माँ। इस घर के दरवाजे मेरे लिए कभी बंद न होंगे। हमेशा खुले रहेंगे। थक-हारकर मैं यहीं तो आऊँगा माँ। मेरी गति-मुक्ति और कहाँ है? लेकिन अब तो मुझे जाने दो—(नरेश के निकट जाकर) भाई साहब···

नरेश : (साँस भरकर) अच्छा अशोक, जिसे तुम उचित समझते हो और जिससे तुम्हें सुख मिले, वही करो···
[माँ सिसकियाँ ले रही है। अशोक माँ के निकट आता है।]

अशोक : (झिझकता-सा) माँ! ···सुनो तो··

माँ : (एकदम फूट पड़ती है, रोते हुए) नहीं, अशोक नहीं··· तुम नहीं जाओगे·· तुम इतने कठोर नहीं हो सकते··· हमने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया है, जो तुम इतनी कड़ी सजा हमें दे रहे हो?···

अशोक : माँ, यदि ये सजा है, तो मेरे लिए भी है। मैं भी तो इसे सहूँगा।

माँ : (रोते हुए) नहीं, अशोक नहीं·· तुम मत जाओ·· मत जाओ···

अशोक : (समझाते हुए) ना माँ· रोकर मेरे लिए अमंगल न करो। मुझे हँसी-खुशी विदा करो। तुमने अपने बड़े लड़के को आदमी बना लिया है। तुम चाहती हो, तुम्हारा छोटा लड़का अधकचरा रह जाये?·· उसे भी तो जमाने की गर्म-सर्द हवा खाकर आदमी बनने दो··· (माँ के आँसू पोंछता है) आँसू पोंछो माँ। माँ, तुम्हारा

छोटा लडका एक जिम्मेदार आदमी बनने जा रहा है। उसके मन मे मोह न जगाओ। खुशी से विदा करो, और भगवान् से प्रार्थना करो कि उसमे समझ आ जाये, ताकि एक दिन तुम उसका फिर स्वागत कर सको

नरेश हाँ अशाक, हम हमेशा तुम्हारा स्वागत करने के लिए तैयार रहेगे।

माँ (आँसू पोछती और गले लगाती है) मेरे बच्चे!

अशोक (माँ के आँचल मे मुँह छिपाकर) माँ •

[माँ और अशोक की नजर बचाकर नरेश अपने आँसू पोछता है और खिडकी के पास जा खडा होता है।

इस बीच मे नन्हा रमेश और शकुतला दरवाजे की चौखट का आसरा ले खडे हो जाते हैं। माँ-बेटे के इस मिलन से अनायास ही उसकी आँखें भर आयी हैं। रमेश उसकी धोती पकडे, कमरे के प्राणियो को अवाक् दृष्टि से देख रहा है।]

(पर्दा गिरता है)

ममता का विष

विष्णु प्रभाकर

[प्रारम्भिक संगीत के बाद तानपूरे पर ध्वनि मंद से तीव्र होती है और तभी सुशील के खांसने और कराहने का स्वर उभरकर छा जाता है। एक क्षण बाद वह पुकारता है।]

सुशील मां·आ मां आ !

मां (दूर से आता स्वर) आयी बेटा, अभी आयी। दूध ला रही हूँ।
(दूसरे क्षण पास आता स्वर) क्या बात है बेटा ?

सुशील . मां, पिताजी अभी नही आये ? कहां रह गये ?

मां : पता नहीं बेटा, कहां बैठ जाते हैं ? शायद डॉक्टर के पास चले गये होंगे। क्यों, कुछ मांगना था क्या ?

सुशील · मैंने उनसे कॉलेज की फीस भेजने को कहा था। पता नहीं, भेजी या नहीं।

मां : (चिहुंकती है) तुझे तो बेटा, बस एक ही बात की रट लग जाती है। पहले तू अच्छा तो हो जा। फिर जाने की बात सोचना। तीसरी बार बुखार उतरकर चढ़ा है।

सुशील : मां, तुम सदा शंका करती रहती हो। मैं अब बिलकुल ठीक हूँ। इस बार उतरकर बुखार फिर नही चढ़ेगा।

मां . मैं तो यही चाहती हूँ, बेटा, तुझे बुखार कभी न चढ़े, पर हर बार डॉक्टर के कोशिश करने पर भी वह चढ़ ही आता है। न जाने भगवान् हमे इतना कष्ट क्यों दे रहे हैं ! न जाने हमारे भाग्य मे क्या लिखा है !

सुशील : भाग्य मे बहुत अच्छा लिखा है मां ! मैं अगले हफ्ते कॉलेज जाऊँगा और फिर एक दिन डॉक्टर बनूंगा।

मां : भगवान् करे बेटा, तेरी आशा फूले-फले और मुझे वह दिन देखने को मिले (सहसा गला रुंध जाता है) पर यह तो बता, अपने भाइयों की तरह तू भी तो मुझे छोड़कर

नही चला जायेगा ?

सुशील नही माँ, मैं यही रहूँगा।

माँ इसी कस्बे मे ?

सुशील हाँ माँ। इधर दूर-दूर तक कोई अच्छा डॉक्टर नही है। रोग वेरोक-टोक शिकार खेलते रहते है। भला, ऐसी हालत मे देश कैसे उन्नति कर सकता है ?

माँ (चिढ़कती है) तुम्हे तो वेटा, बस देश की लगी रहती है। मैं कहती हूँ, देश की चिंता पीछे करना पहले अपने को तो देख।

सुशील माँ, मैं ही तो देश हूँ।

माँ तुमसे कोई नही जीत सकता। आखिर तुम ये बातें कहाँ से सीखते हो ?

सुशील तुमसे, माँ।

माँ : (चकित) मुझसे !

सुशील (खाँसता हुआ) हाँ, माँ। तुम्हारे ही तो वेटे हैं। तुमने ही तो हमारा सृजन किया है।

माँ वेटे तो तुम मेरे ही हो, पर मुझे तो ये सब बातें आती ही नही। फिर मुझसे कैसे सीखते हो ?

सुशील (हँसकर) तुम्हें पता नही माँ, तुम्हारे मन मे ये सब बातें छिपी रहती हैं। (द्वार पर दस्तक होती है) कोई दरवाजा खटखटा रहा है। शायद पिताजी आये हैं। देखो तो माँ।

माँ अभी जाती हूँ। तू दूध पी ले और लेट जा। डॉक्टर ने बहुत बोलने को मना कर दिया है।

सुशील अच्छा माँ।

[माँ की दूर जाती पग-ध्वनि। दूसरे ही क्षण वह बोलती-बोलती पास आती है]

माँ समझ म नही आता, मेरे बेटे होकर भी ये कैसी बातें करते हैं। हर वक्त देश, कत्तव्य, मानवता की रट लगाये रहते हैं। यही रट लगाते-लगाते इसके सब भाई चले

गये । यह भी चला जायेगा यह भी चला जायेगा सुशील जो मेरी आखिरी सतान है, जो मेरी आखिरी आशा है ! यह भी चला जायेगा ।

[भावावेश मे आ जाती है । तानपूरे पर सगीत उभरता है । द्वार पर दस्तक तेज होती है । माँ चौंककर जोर से बोलती है—]

खोलती हूँ, अभी खोलती हूँ, (किवाड खुलने का स्वर) वडी देर कर देते हो (चौंककर) कौन ?

चद्रा चाची, नमस्ते । मैं हूँ चद्रा ।

माँ चद्र ! अरे, तू कब आयी बेटी ? नमस्ते बेटी, नमस्ते । भगवान् तुझे सुखी रखे । तेरा सुहाग बना रहे । तू सत-पूती हो । आ, अन्दर आ ।

चद्रा आयी, चाची । अभी शाम को ही आयी हूँ । माँ ने बताया कि सुशील तीन महीने से बुखार मे पडा है । तीन बार उतर-उतरकर बुखार फिर चढ आया है । ऐसा कैसा बुखार है ?

माँ (रुँधा स्वर) क्या बताऊँ बेटी, कैसा बुखार है । मेरी तो वह बात है बेटी, ना जीने का सुख, ना मरे का दुख । न जाने मेरी मौत कहाँ छिपी है ? आँख मिच जाये, तो दुनिया का जजाल छूट । जीते-जी की ममता है । मेरे पीछे क्या होता है, कौन देखता है ?

चद्रा चाची, तुम तो बहुत दुखी हो रही हो । ऐसी बात मत कहो । भगवान् सब ठीक करेंगे ।

माँ : क्या ठीक करेंगे ! कुछ करते, तो क्या यह दिन देखने को मिलता ? क्या जाने यही दुख दिखाने को उन्होने मुझे चौदह बेटे दिय ।

चद्रा चौदह बेटे ! आपके चौदह बेटे थ ?

माँ हाँ बेटी, चौदह बेटे थे और आज मेरे पास केवल एक बचा है । वह भी जाने की रट लगाता रहता है ।

चद्रा सुना है, चाची, आपके कुछ बटे तो देसावर कमाने गये थे ।

मां पर मुझसे क्या पूछकर गये थे ! जब जी मे आया, चल दिये। मैं तो जैसे उनकी कुछ थी ही नही। देश ही उनका सब-कुछ था। तीन तो किसी वम-पार्टी म थे।

चद्रा वम पार्टी म, सच ?

मां हां, वेटी। एक दिन एक लडका आया था। वही सब-कुछ वता गया था। वह भी इनकी तरह घर से भागा हुआ था। वहुत दिनो की बात है। फिर तो उनकी कोई खवर ही नही मिली।

चद्रा और वाकी कहां गये चाची ?

मां सात तो वचपन म ही राम न बुला लिये थे, वेटी। तीन वडे होकर वम पार्टी मे चले गये। दो कही समदर पार के देश मे चले गये। उनका तो कुछ पता ही नही लगा, जीते हैं या मर गये। मेरे पास से तो सब ऐसे गये, जैसे थे ही नही। हां कुशल से कुछ आशा थी। उस पर बडी मन्नतें मानी थी। जात बोली, चढावे चढाये, पर वह भी ठीक विवाह के दिन (स्वर आसुओ से रुंध जाता है, बोल नहा पाती, सगीत तेज होता है।)

चद्रा हां, चाची। मां सुना रही थी। वड चाव से तुमने उसका विवाह रचाया था, वडे ठाठ किये थे, पर वही बात है कि 'मरे मन कछु और है विधना के कछु और।' सुना, चिटठी लिख गया था

मां चिटठी लिखने स क्या वनता है ? वेटा तो गया ही। मुझ किसी ने कुछ समझा ही नही, सदा कहते रहे "मा, तुमसे भी वडी एक और मां है!'

चद्रा तुमसे भी वडी मां ! वह कौन है ?

मां वेटी, वे लोग देश को वडी मां कहते थे। कहते थ, 'वह तुम्हारी भी मां है। वह हम सबकी मां है।' कुशल भी यही लिखकर रख गया था, 'बडी मां ने बुलाया हूं, जा रहा हूं, मेरी राह न देखना।' न जाने किसने उन्हे यह सिखाया था। हम जिन्होंने उन्हे पाला-पोसा, उनके लिए

कष्ट सहे, उनके कुछ भी नही रहे, और वे जिन्हे कोई जानता तक नही, उनके सब-कुछ हो गये !

चद्रा : सचमुच वडी बुरी बात है। न जाने चाची, दुनिया का क्या होगा ! पर कुशल का कुछ पता तो लगाया होगा।

माँ : पता कौन लगाता ? बाप तो उनका जैसा है, दुनिया जानती है। लोगो ने जब ढूंढने को कहा, तो बोला, 'ढूंढना बेकार है। जो रहना नही चाहता, उसे रोकने की कोशिश करना उसे और खोना है। मेरा काम तो उन्हें पाल-पोसकर बडा करना था। वह मैंने कर दिया। आगे वे जानें, उनका काम जाने।'

चंद्रा : चाची, उन्होने भी ठीक ही कहा था, और वह क्या करते ? औलाद ही बस मे न रहे, तो माँ-बाप क्या करें ? पर खैर चाची, जो हुआ, सो हुआ। सुशील को देखो, उसका ध्यान रखो। दो-एक महीने मैं इधर ही रहूँगी। आ जाया करूँगी। अब तो उसका बुखार उतर गया है।

माँ : बुखार तो तीन बार उतर चुका है।

चद्रा : नही चाची, अब नही चढेगा। ऐसी आशंका मत करो। भगवान् सब ठीक करेंगे।

[द्वार पर फिर दस्तक होती है और साथ ही सुशील का स्वर उठता है।]

सुशील : माँ···आ···आ !

माँ : सुशील के पिता आये जान पडते हैं। बेटी, तू जरा किवाड़ खोलना, मैं सुशील को देखती हूँ। वह भी पुकार रहा है। [माँ का स्वर दूर जाता है, सुशील का स्वर पास आता है।]

सुशील : माँ, (काँपता स्वर) माँ, तुम कहाँ जाकर बैठ गयीं ?

माँ : (पास आता स्वर) आयी बेटा, अभी आयी। चद्रा आ गयी थी, उससे बातें करने लगी। हाँ, क्या कहता है ?

सुशील : (काँपता हुआ) माँ, मुझे जाड़ा लग रहा है। कंबल तो देना।

मां (एकदम कांपकर) जाडा, तुझे जाडा लग रहा है! तुझ फिर बुखार आ रहा है! हे राम•

सुशील मां, कंबल लाओ, कंबल। मुझे कंपकंपी चढ रही है। जल्दी लाओ।

मां (घबरायी-सी) अभी लायी, अभी ओह भगवान्, तुम क्या करना चाहते हो? भगवान्, तुम मुझ पर दया करो! (पुकारकर) चद्रा, तरे चाचा आये, जरा जल्दी से उन्हे यहां भेज।

चद्रा (दूर से आता स्वर) चाची, डाक्टर साहब भी आ रहे हैं। (पदचाप उठते हैं)

मां डाक्टर? ओह भगवान्, डाक्टर आ गये! (पुकारकर) डाक्टर साहब! सुशील (पदचाप पास आते हैं)

डाक्टर सुशील तो अब ठीक है न? क्या बात है? अरे, सुशील को कंबल क्यो ओढाया है? आप घबरा क्या रही हैं?

मां सुशील को फिर जाडा लग रहा है डाक्टर साहब, यह क्या हो रहा है।

[सबके एक साथ बोलने के स्वर उभरते हैं।]

डाक्टर सुशील को फिर जाडा लग रहा है!

पिता सुशील को फिर जाडा चढ रहा है!

चद्रा सुशील को फिर बुखार आनेवाला है।

मां (रोनी हुई) डाक्टर साहब, डाक्टर साहब

डाक्टर (सांस लेकर) आप घबराइए नही। मुझे जरा देखने दीजिए। (धीरे से) हलो सुशील, क्या हाल है?

सुशील (कांपता हुआ) डाक्टर साहब! नमस्ते।

डाक्टर नमस्ते जनाब। यह क्या कर लेते हो बार-बार। शरीर के शत्रु से ऐसी मित्रता करना ठीक नही है, भाई। देखूं तो हाथ।

सुशील कुछ नही, डाक्टर साहब, वैसे ही जाडा चढ़ आया है। ठीक हो जायेगा। पिताजी आये हैं क्या?

पिता हां सुशील, क्या बात है?

सुशील मेरी फीस भेज आये ?

पिता . कल मैं शहर जा रहा हूँ। सब ठीक कर आऊँगा। पर पहले तू तो ठीक हो जा।

सुशील ठीक तो हो गया था पिताजी, आज फिर जाडा चढ आया। यह भी उतर जायगा। मैं कालेज अवश्य जाऊँगा। पाँच-छ दिन की देर हो जायेगी, तो क्या है। आप मेरी फीस अवश्य भेज दीजियगा।

पिता भेज दूंगा। तू चिंता मत कर।

डाक्टर सुशील को डाक्टर बनने का बडा चाव है। वह अवश्य बनेगा। देर-सवेर की कोई बात नही। इसका परीक्षाफल इतना सुदर है कि बहुत जल्दी ही यह अपनी कमी पूरी कर लेगा। हाँ, जरा जीभ दिखाना। हूँ कुछ बदपरहेजी तो नही की ?

सुशील जी, मैं तो वही खाता हूँ जो आप बताते हैं।

डाक्टर जानता हूँ, तुम एक आदश रोगी हो। तभी तो बार बार रोग को पछाडकर अच्छे हो जाते हो। हाँ माँजी, दवा तो सब दे दी थी ?

माँ बिलकुल उसी तरह दी थी, जैसे आप बता गये थे। बेचारा कभी जिद नही करता। रात को जिस वक्त जगाती हूँ, चुपचाप उठकर दवा पी लेता है। मगर फिर भी न जाने क्या बात है कि

डाक्टर ठीक है ठीक है। जानता हूँ, तुम सब लोग बडे पाबद हो।

पिता कहते हैं कि लोग चिंता नही करते, इसलिए बीमारियाँ बढ रही हैं, पर यहाँ तो इतनी चिंता करते हैं तो भी बीमारी पीछा नही छोडती ! चौथी बार बुखार चढा है।

डाक्टर हाँ, बात कुछ मेरी समझ मे भी नही आती। सवेरे बिलकुल ठीक था। लेकिन खैर कोई बात नही। आप मेरे साथ चलें, दवा देता हूँ।

पिता चलिए।

डाक्टर सुशील भाई, दवा तो भेज ही रहा हूँ, लेकिन भगवान् के लिए यह दोस्ती अब खत्म करो।
सुशील मुझे तो खुद इससे प्रेम नहीं है, पर न जाने क्या बार-बार आ जाता है। डाक्टर साहब, इस बार कोई तेज-सी दवा दीजिए।
डाक्टर (हँसकर) ऐसी तेज दूँगा कि बुखार भी क्या याद रखेगा। अच्छा, आओ द्वारकानाथजी।
पिता जी, चलिए। (दोनो के जाने के पदचाप गूँजते हैं, दूर जाते हैं।)
माँ बेटी चद्रा, तू जरा सुशील के पास बैठ, मैं अभी आती हूँ।
चद्रा अच्छा चाची, मैं बैठी हूँ।
[पदचाप दूर जाते हैं, फिर पास आते हैं।]
माँ डाक्टर साहब, डाक्टर साहब!
डाक्टर जी, क्या बात है?
माँ क्यो, डाक्टर साहब, कोई खतरे की तो बात नही है?
डाक्टर नही, नही, घबराने की कोई बात नही है। इस बार मलेरिया है। वक्त पर उतर जायगा।
माँ उतर जायेगा?
डाक्टर हाँ, हा, क्या नही उतरेगा?
माँ कब तक उतरेगा?
डाक्टर चार पाँच दिन लग सकते है। पर बार-बार यह बुखार आना ठीक नही है। यह बद होना चाहिए। कमजोरी बढती है। यह तो सुशील की इच्छाशक्ति है, जा उसकी रक्षा कर रही है।
माँ डाक्टर साहब, आप तो जानते हैं कि चौदह बटो मे यही एक बचा है। अपनी जान देकर भी मै इसे बचाना चाहती हूँ। यही मेरा सब-कुछ है—मेरा जीवन, मेरी दुनिया, मेरा धन, मेरा घर बार! डाक्टर, मेरे प्राण इसी मे बसे हैं! मैं इसके लिए जो भी कहोगे, करूँगी।
डाक्टर जानता हूँ, माँ जी। माँ बटे के लिए सब-कुछ कर

बात करनी है। आइए, यहाँ बैठिए। (बैठने का स्वर)

पिता : मैं सेवा मे हाजिर हूँ। आज्ञा कीजिए।

डाक्टर : अभी कहता हूँ, पर पहले यह बताइए कि सुशील का बुखार कैसा है?

पिता : बिल्कुल नारमल है।

डाक्टर : बिल्कुल नारमल, बहुत अच्छी बात है। और क्या चाहिए। वैसे खुश है न?

पिता . खुश तो वह हमेशा ही रहता है। आज तो सवेरे से उसने अपनी पुरानी रट लगायी है—'कॉलेज जाऊँगा।'

डाक्टर : अजी, यह कॉलेज ही है, जो उसे इतनी जल्दी ठीक कर लेता है। इच्छा मे बडी शक्ति होती है। लेकिन फिर भी इस बार सुशील की देखभाल विशेष रूप से करनी होगी। यदि अब रोग ने आक्रमण कर दिया, तो···

पिता : जानता हूँ डाक्टर साहब, अच्छी तरह जानता हूँ।

डाक्टर : और यह भी जानते हैं कि यही समय है, जब रोग आक्रमण करता है।

पिता : यह भी जानता हूँ, डाक्टर साहब। इसीलिए मैंने सुशील की ममेरी बहन को बुला भेजा है। आपके कहने के अनुसार हम सब रात को बारी-बारी से जागा करेंगे।

डाक्टर : ठीक है, ठीक है। मैं भी जागा करूँगा।

पिता : (अचरज से) आप?

डाक्टर : हाँ, मैं भी रात को पहरा देने आऊँगा।

पिता : (विनम्र स्वर) डाक्टर साहब, आप क्या कहते हैं? आपने क्या नही किया। आपकी कृपा से ही सुशील बार-बार मौत के मुँह मे जाकर लौट आया है। आप अब इतना कष्ट न कीजिए।

डाक्टर : (गभीर स्वर) ठीक है ठीक है। पर सुनिए तो, पहले तो, पहले मेरी बात सुनिए।

पिता : जी, कहिए।

डाक्टर : मैं रोगी का अध्ययन करना चाहता हूँ। हो सकता है,

मुझे कई रातें उसके पास वितानी पड़ें।

पिता : लेकिन क्या आप रात को ही बैठेंगे ?

डाक्टर : हाँ, वह काम रात को ही हो सकेगा।

पिता : जैसे आपकी इच्छा।

डाक्टर : और देखिए, मैं उस कमरे मे नही रहूँगा जिसमे रोगी रहता है।

पिता : तो ?

डाक्टर : उस कमरे के पास कोई और कमरा है ?

पिता : जी हाँ, उसके पीछे हमारी बैठक है।

डाक्टर : ठीक है। उसमे खिडकी तो है न? मेरा मतलब है कि उसमे ऐसी खिडकी या दरवाज़ा तो होगा ही जिसमे से रोगी के कमरे पर नज़र रखी जा सके।

पिता : जी, बैठक से होकर एक खिडकी और एक दरवाजा रोगी के कमरे मे खुलते हैं।

डाक्टर : ठीक है। मैं आपकी बैठक मे रहूँगा।

पिता : आपकी बात मेरी समझ मे नही आ रही है, फिर भी जैसा आप कहते हैं, वैसा प्रबध मैं कर दूँगा।

डाक्टर : समझ मे तो अभी आपके बहुत-कुछ नही आयेगा। लेकिन देखिए, यह बात आप किसी से कहियेगा नही, सुशील की माँ से भी नही।

पिता : ऐसी बात है !

डाक्टर : नि सदेह बात ऐसी ही है। आपको मेरी सहायता करनी होगी।

पिता : विश्वास रखिए, मैं उसी प्रकार करूँगा, जिस प्रकार आप कहेंगे।

डाक्टर : ठीक है। मुझे आप पर विश्वास है। मैं आज रात को सुशील को देखने आऊँगा और वही रह जाऊँगा।

पिता · बहुत अच्छा, मैं सब प्रबध किये रखूँगा। आप निश्चित होकर आइए। अच्छा, मैं चलूँ, नमस्ते।

डाक्टर : नमस्ते।

(जाने के पदचाप। फिर अंतराल संगीत उभरता है। उसके समाप्त होते-होते तानपूरे पर मंद स्वर उभरते हैं और फिर दो व्यक्ति धीरे-धीरे बातें करते हैं।)

पिता : यह देखिए मैंने अपनी खाट खिड़की के पास खींच ली है। आप यहाँ आराम से बैठ सकते हैं।

डाक्टर ठीक है। यहाँ बैठकर मैं खिड़की से सब-कुछ देख सकता हूँ। सुशील की चारपाई बिल्कुल सामने है और यहाँ से उसके पास आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति पर निगाह रखी जा सकती है।

पिता और अगर किसी समय वहाँ जाने की जरूरत हो, तो दरवाजा भी पास ही है।

डाक्टर ओह, ठीक है, ठीक है। यह और भी अच्छी बात है। हाँ, क्या बज गया ?

पिता दस बजनेवाले हैं।

डाक्टर सुशील तो बड़े सुख से सो रहा है।

पिता आज उसकी तबीयत बहुत ठीक थी, सारा दिन कॉलिज जाने का प्रोग्राम बनाता रहा।

डाक्टर (हल्की हँसी) बड़ा बहादुर लड़का है। मुझे विश्वास है कि इस बार उसका प्रोग्राम नहीं बिगड़ेगा।

पिता आपकी कृपा है, डाक्टर। आपने

डाक्टर अहा, आपने दीये का प्रबंध भी कर रखा है !

पिता वह तो मैंने कई दिन पहले कर दिया था। रात भर लैम्प जलने से कमरे में एक प्रकार का कड़वा धुआँ भर जाता था।

डाक्टर यह कड़वा ही नहीं, जहरीला भी होता है। अच्छा आप सोना चाहें तो सो जाइए। जरूरत होगी तो मैं जगा लूँगा।

पिता नहीं, न्हीं, मैं बैठा हूँ। मैं भी देखूँगा।

डाक्टर आपकी इच्छा, पर आप थक जायेंगे। कोई बात होगी, तो मैं पुकार लूँगा। यह देखिए, सुशील की माँ ने लैम्प बुझा दिया है। दीये का प्रकाश धुँधला है, पर आँखों के

लिए कितना सुख देने वाला है।

पिता : दीया हमारी प्राचीन सभ्यता का प्रतीक है। उसके प्रकाश मे तेज नही है, पर शाति है।

डाक्टर : लेकिन वह तेज किस काम का, जिसमे अशाति हो? बात यह है·· देखिए, जरा इधर देखिए।

पिता · क्या है ?

डाक्टर : सुशील की माँ कितने प्रेम से सुशील के कपडे ठीक कर रही है !

पिता : सच कहता हूँ, डाक्टर, इसने सुशील के लिए अपने आपको मिटा डाला है। फिर भी न जाने क्यो उसका भाग्य रूठा हुआ है !

डाक्टर : अब सब ठीक हो जायेगा, आप चिंता न करिए। आप लेट जाइए। सुशील की माँ लेट गयी है। जब मैं लौटूंगा, आपको पुकार लूंगा।

पिता : बहुत अच्छा (क्षणिक सन्नाटा। डाक्टर के टहलने का स्वर। गीदड़ो की चीखें उभरती हैं, फिर मौन छा जाता है; फिर पदचाप उभरते है और दूर कुत्तों की भौं-भौं सुनायी पड़ती है। घड़ी मे एक बजने की घोषणा करता हुआ घटा गहर उठता है, फिर मौन छा जाता है,और तानपूरे पर सगीत उभरता है।)

पिता . (एकदम जागकर) कुछ पता लगा ?

डाक्टर : अभी कुछ नही।

पिता : क्या बजा है ?

डाक्टर : दो बजनेवाले हैं।

पिता : तो अब मैं बैठता हूँ। आप लेट जाइए, आइए।

डाक्टर : हाँ, मै अब लेट सकता हूँ; पर आप सजग रहिए। कमरे मे कोई भी आहट हो, कोई भी नयी बात हो, तो उसी क्षण मुझे जगा दीजिए।

पिता : डाक्टर साहब, क्या आप भूतो मे विश्वास करते है ?

डाक्टर : कभी-कभी करना पडता है ; परतु जनता के और हमारे

भूतो मे अतर है। जनता के भूत काल्पनिक होते हैं, जिनका कोई आधार नही होता। हमारे भूत ठोस होते हैं और वे हमारे अदर रहते हैं।

पिता (चकित) हमारे अदर रहते हैं!

डाक्टर : हाँ, किसी दिन पकड सका तो, दिखाऊँगा। लेकिन अब आप होशियार रहिए।

पिता मैं होशियार हूँ। आप सो सकते है। सुशील के कमरे मे पूर्ण शाति है। (फिर सन्नाटा, घड़ी की टिक-टिक, कुत्तो की भौं-भौं, गीदड़ों की हू-हू, कहीं शोर, फिर शांति, फिर पदचाप, सहसा पिता के चौंकने का स्वर)

पिता : (दृढ़ स्वर) डाक्टर साहब!

डाक्टर · (एकदम जागकर) क्या है?

पिता : इधर आइए, इधर। वह देखिए एक छाया-मूर्ति! मैंने जब झांका, तो वह धीरे-धीरे सुशील के पास जा रही थी। कई क्षण चुपचाप सुशील के मुख को देखती रही।

डाक्टर · फिर?

पिता · फिर उसने सुशील के मुख को चूमा।

डाक्टर : फिर?

पिता : फिर उसने सुशील की चादर उतार डाली और खिड़की खोल दी। अब वह हट रही है। देखो डाक्टर, इसकी चाल कैसी गतिहीन है। लो, अब वह दवा की शीशी उठा रही है।

डाक्टर : हाँ, उसने शीशी ली और कार्क खोल दिया। फिर पीछे हटी। ओह, यह तो सुशील की खाट के पास आ रही है! अरे··

पिता : अरे, उसने तो दवा की शीशी चिलमची म उलट दी।

डाक्टर : अरे, वह तो सुशील की माँ है! (पृष्ठभूमि में आश्चर्य-सूचक सगीत उभरता है।)

पिता : (कांपकर) सुशील की माँ।

डाक्टर : (शीघ्रता से) मेरे साथ आइए, जल्दी करिए!

पिता · (पागल-सा) डाक्टर, डाक्टर ।

डाक्टर . (जाता हुआ) आइए !

(किवाड़ खुलने का स्वर । सुशील की मां की चीख गूंज उठती है ।)

मां : (एक चीख के साथ) आप···आप (गिर पडती है और बेहोशी मे बडबडाती है) सुशील अच्छा हो रहा है। वह अच्छा हो जायेगा । अच्छा होकर कॉलेज जायेगा । डाक्टर बनेगा और फिर फिर कही चला जायेगा । मुझे छोड जायेगा । वह फिर नही लौटेगा । उसके भाई भी नहीं लौटे थे · नही, नही, वह मुझे नही छोड सकता । वह शहर नही जा सकता । मैं उसे नही जाने दूंगी, नही जाने दूंगी ।

डाक्टर : (गम्भीर स्वर) देखा, मुझे यही डर था ।

पिता . (पागल-सा) डाक्टर, डाक्टर, मेरी समझ मे कुछ नही आ रहा है । यह मैंने क्या देखा ! मां अपने हाथो से अपने ही बेटे की हत्या कर रही है ! ओह, डाक्टर !

डाक्टर . हां, मां अपने ही हाथो से बेटे की हत्या कर रही है; पर वह जान-बूझकर कुछ नही करती । ममता ने उसे पागल बना दिया है । होश मे आने पर वह स्वय नही जानती कि वह क्या करती है । वह उसे अपना समझती है—केवल अपना । यही स्वार्थ है, यही ममता का विप है (बीच-बीच मे मां की फुसफुसाहट उठती रहती है ।)

मां . (बेहोशी) मैंने उसे पाला-पोसा है। वह मेरा बेटा है । मैं उसे कहीं नही जाने दूंगी, कहीं नही ।

डाक्टर . लेकिन अब आप घबराइए नही । मैंने रोग को पहचान लिया है। मैं सब-कुछ ठीक कर लूंगा । आइए, पहले इन्हे होश मे लाने की दवा दें । और हां देखिए, मेरे आने का इन्हे अब भी पता नही लगना चाहिए ।

(पदचाप उभरते हुए दूर जाते हैं, तानपूरे पर सगीत मन्द मधुर होता है और फिर समाप्ति-सूचक संगीत में लय हो जाता है ।)

परमाणु युग का अभिशाप रेडियोधर्मी प्रदूषण

डॉ० उमाकांत सिन्हा

बात १९४५ की है। पलक झपकते ही जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी नामक नगर नेस्तनाबूद हो गये। वहाँ विश्व के प्रथम परमाणु बम का विस्फोट हुआ था। परमाणु विखंडन से निकली ऊर्जा ने दोनों नगरों को जलाकर राख कर दिया। लगभग चार किलोमीटर तक की सभी चीजें झुलस-सी गयी। जन-जीवन को भारी क्षति पहुँची। लगभग एक लाख व्यक्ति मारे गये। सारा विश्व आतंकित हो उठा। विस्फोट के कारण स्थिति इतनी गंभीर हो गयी थी कि किसी वैज्ञानिक ने भी यह न सोचा कि परमाणु विखंडन-जन्य अनेक अयनकारी विकिरण तथा रेडियोधर्मी तत्त्व जन्म-जन्मांतर तक वहाँ के निवासियों को सताते रहेंगे। कुछ ही वर्ष पश्चात् जब निकटवर्ती इलाकों में नाना प्रकार के रोग फैलने लगे तथा जब अनेक शिशुओं में जन्मजात अंग विकृतियाँ देखने में आयीं तब लोगों का ध्यान विस्फोट-जन्य विकिरणों की ओर गया।

यूँ तो १९२८ में ही नोबल पुरस्कार विजेता डॉ० एच० जे० मुलर ने अपने प्रयोगों से सिद्ध कर दिया था कि रेडियोधर्मी तत्त्व स्वास्थ्य के लिए हानिकर होते हैं। उन्होंने बतलाया कि रेडियोधर्मी किरणें जीवों में स्थायी परिवर्तन ला सकती हैं। ये किरणें जीवों के क्रोमोसोमों तथा उन पर स्थित जीनों को प्रवाहित करती हैं जिससे स्थायी आनुवंशिक परिवर्तन हो जाते हैं। जीनों में होने वाले ये परिवर्तन उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) कहलाते हैं। उत्परिवर्तन प्राकृतिक रूप से भी होते रहते हैं तथा एक जाति विशेष के विभिन्न सदस्यों की विविधता का मूलभूत कारण उत्परिवर्तन ही हैं।

दैहिक व आनुवंशिक प्रभाव

रेडियोधर्मी विकिरण मनुष्य को दो प्रकार से प्रभावित कर सकते

हैं—एक तो दैहिक रूप से और दूसरे आनुवंशिक रूप से। विकिरण-जन्य दैहिक तथा आनुवंशिक परिवर्तनों में अंतर यह है कि विकिरण के दैहिक प्रभाव व्यक्ति-विशेष तक ही सीमित रहते है। उनकी संतानों को वे रोग नही होते। उदाहरणार्थ रेडियोधर्मी तत्त्वों से काम करनेवाले अनेक व्यक्तियों के अंग विकृत हो जाते हैं। एक्स किरणों की खोज करने वाले जर्मन वैज्ञानिक रान्त्जन की अँगुलियाँ गल गयी थी जो कभी ठीक न हो सकी। रेडियोधर्मी तत्त्वों से इसी प्रकारकी अन्य शारीरिक व्याधियाँ उत्पन्न हो सकती है। लेकिन ये रोग वंशगत नही होते अर्थात् एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी मे नहीं चलते। विकिरण-जन्य आनुवंशिक परिवर्तन पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते रहते हैं और उन व्याधियों का उपचार भी अत्यंत कठिन होता है। आपने देखा होगा कि एक्स किरण चित्र लेने के लिए व्यक्ति को बहुत थोड़ी देर के लिए एक्स किरणों के बीच रखा जाता है। विकिरणों द्वारा सर्वाधिक क्षति विभाजन के दौर से गुज़र रही कोशिकाओं को होती है। यही कारण है कि गर्भवती स्त्रियों के एक्स किरण चित्र प्रायः नहीं लिये जाते क्योंकि गर्भस्थ शिशु की कोशिकाएँ निरंतर विभाजित होती रहती हैं। एक्स किरणों अथवा किसी भी अन्य रेडियोधर्मी स्रोत से काम करनेवाले व्यक्ति प्रायः एक विशेष प्रकार की पोशाक पहनकर कार्य करते हैं। इससे विकिरणों द्वारा शरीर को होनेवाली क्षति की संभावना काफ़ी कम हो जाती है।

अनियंत्रित ऊर्जा

६ अगस्त, १९४५ के प्रलयकारी विस्फोट का कारण था अनियंत्रित परमाणु ऊर्जा। विस्फोट से यूरेनियम पिंड छिन्न-भिन्न होकर चारों तरफ छिटक गया। यूरेनियम एक रेडियोधर्मी तत्त्व है। उससे अयनकारी विकिरण भी उत्पन्न हुए तथा कई अन्य पदार्थ भी न्यूट्रान अवशोषण से रेडियोधर्मी हो गये। ये सभी वायुमंडल में ऊपर उठकर उसी में व्याप्त हो गये और धीरे-धीरे दूर-दूर तक फैल गये तथा धरातल पर वापस आने लगे। फलस्वरूप रेडियोधर्मी धूल मनुष्यों, जानवरों तथा पेड़-पौधों के संपर्क में आयी।

रेडियोधर्मिता की खोज

रेडियोधर्मिता की घटना का पता सर्वप्रथम फ्रास के हेनरी वेकरेल ने लगाया। तत्पश्चात् १८९५ ई० मे रान्तजन ने एक्स किरणो का पता लगाया। कुछ ही दिनो बाद इन किरणो का व्यावहारिक उपयोग होने लगा, अस्थि-भग का पता लगाने मे तथा अन्य अनेक प्रकार की व्याधियो, यथा—पथरी का पता लगाने मे आदि-आदि। एक्स किरणें यूरेनियम से प्राप्त की गयी थी लेकिन शीघ्र ही श्रीमती क्यूरी ने यह दिखलाया कि रेडियम भी रेडियोधर्मी होता है। आज वैज्ञानिको को न केवल अनेक रेडियोधर्मी तत्त्व ज्ञात हैं बल्कि वे नाभिकीय परिवर्तनो द्वारा लगभग सभी तत्त्वो को कृत्रिम रूप से रेडियोधर्मी बनाने मे सक्षम भी हैं। रेडियोधर्मी तत्त्वो से अल्फा बीटा तथा गामा किरणें निकलती हैं। ये किरणें दिखायी नही देती और ये सामान्यतया स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती हैं। परतु रागजनक तथा हानिकारी होने के साथ-साथ रेडियोधर्मी विकिरणो के अनेक सदुपयोग भी हैं।

सदुपयोग, दुरुपयोग

इनका उपयोग चिकित्सा, कृषि तथा विभिन्न उद्योगो मे होता है। अमेरिका के नोबेल पुरस्कार विजेता प्रोफेसर लिवी ने तो यहाँ तक कहा है कि रेडियोधर्मी तत्त्वो का इतना सदुपयोग किया जा सकता है कि इनसे होने वाला लाभ परमाणु बमो द्वारा हुई हानि की पूरी तौर से क्षतिपूर्ति कर देगा। इसी आशा मे सभी विकसित एव विकासशील देशो मे परमाणु शक्ति के विकास के लिए होड-सी लगी हुई है। भारत मे भी परमाणु ऊर्जा प्रतिष्ठान द्वारा परमाणु ऊर्जा के शातिप्रिय उपयोग के लिए कार्य किया जा रहा है। अन्य अनेक देशो मे भी परमाणु ऊर्जा का शातिपूर्ण उपयोग करने के लिए परमाणु भट्टियाँ स्थापित की गयी हैं। जहाँ एक ओर परमाणु ऊर्जा का शातिपूर्ण उपयोग किया जा रहा है वहाँ कुछ देश इसका उपयोग अत्यधिक विध्वसकारी बम बनाने मे भी कर रहे हैं। स्पष्टत बम विस्फोटो एव परीक्षणो तथा परमाणु भट्ठियो के कारण रेडियोधर्मी तत्त्वा की मात्रा दिनो दिन वायुमडल मे बढ़ती जा रही है।

कुछ रेडियोधर्मी तत्त्व ऐसे होते है जो अतिशीघ्र ही विघटित हो जात हैं जबकि बहुत-से तत्त्व ऐसे हैं जिनका विघटन-काल बहुत अधिक होता है और उनसे काफी समय तक रेडियोधर्मी उत्सर्जन निकलते रहते है। वस्तुत, इन्ही तत्त्वो के कारण हमारे वायुमडल की कुल रेडियोधर्मिता दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है।

अति सर्वत्र वर्जयत

अति सर्वत्र वर्जयेत', यह बात रेडियोधर्मी विकिरणो पर भी लागू होती है। अधिक मात्रा मे रेडियोधर्मी किरणें घातक भी सिद्ध हो सकती हैं। लेकिन प्रकृति मे व्याप्त रेडियोधर्मिता अभी घातक स्तर से कई लाख गुनी कम है। यही सोचकर शायद कुछ देश एक के बाद एक परमाणु परीक्षण करते जा रहे हैं तथा सभी रेडियोधर्मी तत्त्वो को अनियत्रित रूप से प्रकृति की गोद म उँडेलते जा रहे हैं। परमाणु भटि्ठयो के समीपवर्ती वातावरण की अधिक रेडियोधर्मिता इस कथन की पुष्टि करती है। चिकित्सा, कृषि, उद्योग तथा विभिन्न वैज्ञानिक परीक्षणो मे काम आने वाले रेडियोधर्मी तत्त्व भी कुछ अश तक अनियत्रित रूप से मुक्त हो जाते हैं।

विस्फोट के शीघ्र बाद तो जापान के क्षतिग्रस्त स्थानो मे रेडियो-धर्मिता प्राणघातक स्तर पर थी। धीरे-धीरे विघटन तथा प्रसरण के फलस्वरूप स्थानीय रेडियोधर्मिता कम होती गयी और अब लगभग प्राकृ-तिक रडियोधर्मिता के स्तर पर आ गयी है। जापान की स्थानीय रडियो-धर्मिता तो कम अवश्य हुई किन्तु प्रसरण के कारण विश्व-भर की प्राकृ-तिक रडियोधर्मिता थोडी बढ गयी। अभी भी प्राकृतिक रेडियोधर्मिता दिनादिन बढ़ती ही जा रही है तथा इसके कम होने की कोई सभावना नही दीखती। वरन् बढने की दर और अधिक तीव्र होती जा रही है।

अब दो प्रश्न उठते हैं। क्या यह वृद्धि मानव जाति के लिए हानि-कारक नही है ? यदि है तो क्या हम अनत काल तक इस वृद्धि का स्रोत बने रह सकते हैं ?

पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ ही कतिपय रडियोधर्मी तत्त्वो की उत्पत्ति हुई। अत मानव जब इस भूतल पर आया, वायुमडल म व्याप्त रेडियो-

धर्मी तत्त्वो ने उसका स्वागत किया। मानव का उद्भव और विकास ही इस बात का साक्षी है कि उसमे किसी हद तक रेडियोधर्मिता को सहन करने की क्षमता है। यह क्षमता कुछ ही नही वरन् असख्य वर्षों मे विकसित हुई है। जैसे-जैसे वातावरण की रेडियोधर्मिता बढती गयी, मनुष्य म उसको सहन करने की शक्ति आती गयी। डारविन का विकास-वाद का सिद्धात भी तो यही बताता है। यह क्रिया अनत काल तक चलती जाती लेकिन गत कुछ वर्षों मे परमाणु ऊर्जा के अधिकाधिक उपयोग के फलस्वरूप वातावरण की रेडियोधर्मिता भी तीव्र गति से बढती जा रही है।

रेडियोधर्मिता नियंत्रण

रेडियोधर्मी व्यर्थों को फेंकने के लिए राष्ट्रीय तथा अतर्राष्ट्रीय नियम बने हुए हैं। इनके अनुसार अल्प मात्रा मे इन्हे हम अनियत्रित रूप से फेंक सकते हैं। लेकिन थोडी-थोडी मात्रा मे भी अनियत्रित रूप से फेंकने से वातावरण की रेडियोधर्मिता तीव्र गति से बढती जा रही है। कतिपय वैज्ञानिको की धारणा है कि मनुष्य मे एक विशेष मात्रा तक रेडियोधर्मिता सहन करने की क्षमता है तथा प्रकृति मे रेडियोधर्मिता की मात्रा अभी काफी कम है। अतः रेडियोधर्मी प्रदूषण अभी शोचनीय विषय नही है। लेकिन हाल के प्रयोगो ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रकृति मे रेडियोधर्मिता काफी खतरनाक स्तर तक पहुँच गयी है, तथा इसकी मात्रा म कोई भी वृद्धि और भी हानिकारक सिद्ध होगी। अत' हमे प्रकृति के रेडियोधर्मी प्रदूषण को रोकने का प्रयास करना चाहिए। यह राष्ट्रीय ही नही बल्कि अतर्राष्ट्रीय समस्या है तथा नियत्रण न करने पर इसका मूल्य न केवल हमे वरन् आनेवाली पीढियो को भी चुकाना पडेगा।

रेडियोधर्मी प्रदूषण को आगे के लिए रोकना इसलिए और भी आवश्यक है कि वायुमडल मे व्याप्त रेडियोधर्मिता को एकत्र कर नियत्रित करना सभव नही है। साथ ही साथ एक जगह उत्सर्जित रेडियोधर्मी विकिरण धीरे-धीरे सारे विश्व मे फैल जाते हैं। समय पाकर यह पौधों तथा जानवरो मे होकर मानव-शरीर मे पहुँच जाते हैं जहाँ इनका सचय जाता है। स्ट्राशियम का समस्थानिक स्ट्राशियम-९० मनुष्य की

हड्डियों मे कैल्सियम की जगह तथा सीजियम का समस्थानिक सीजियम-१३७ मांसपेशियो मे पोटेशियम की जगह एकत्र होता जाता है। फलस्वरूप शरीर मे रेडियोधर्मी तत्त्वो की मात्रा बढ़ती जाती है। इन्ही कारणो से मवेशियो के दूध म भी विभिन्न तत्त्वो के रेडियोधर्मी समस्थानिक पाय जाते हैं। प्रकृति मे व्याप्त विभिन्न रेडियोधर्मी तत्त्व किसी न किसी प्रकार अततोगत्वा मानव शरीर मे ही पहुँचते हैं।

इन्ही कारणों से सभी शातिप्रिय देश परमाणु परीक्षणो से असहमत हैं। फिर भी कुछ देश अतर्राष्ट्रीय नियमो का उल्लघन करके केवल स्वार्थ-सिद्धि के लिए मानवता को सकट मे डालने के लिए कटिबद्ध प्रतीत होते हैं। समस्या और भी जटिल इसलिए है क्योकि कोई भी देश यह नहीं बताता कि उसके द्वारा परीक्षण बम की शक्ति क्या थी ? रेडियोधर्मी प्रदूषण दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। हम अपने ही क्रिया-कलापो से अपने वातावरण को दूषित करते जा रहे हैं।

ब्रह्माड मे जीवन की खोज
एन० कंसर

ब्रह्माड के आधुनिक ज्ञान ने ब्रह्माड और इसके असीम विस्तार का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह हमारे पिछले सभी ज्ञान एव अनुमान से सर्वथा भिन्न है। इसका अनुपम विस्तार एव सौंदर्य, इसकी विशालता तथा इसम सर्वव्यापी सभावनाएँ हमार विस्मय का विषय बन गयी हैं।

हमारा जीवन सौरमडल मे एक सीमित क्षेत्र मे परिमित है, जो नक्षत्र-जगत् का एक तुच्छ सा अश है। विज्ञान की वेगमय प्रगति के बावजूद इस विराट् विश्व-सस्थिति मे मनुष्य का स्थान नगण्य है।

जीवन का अस्तित्व, जैसाकि हम मालूम है, ग्रहो पर ही सभव है, और ग्रह सर्वदा किसी-न-किसी तारे से सवद्ध हुआ करते हैं, जिनसे ग्रहो को प्रकाश एव गरमी मिलती है। सूर्य भी एक नक्षत्र ही है जो नक्षत्रो मे हमसे निकटतम है। हमारी पृथ्वी, जो ग्रह है, रोशनी व गरमी करने के लिए इसी से सलग्न है। ब्रह्माड की वृहदता का यह हाल है कि सूर्य को छोडकर दूसरे निकटतम तारे भी हमसे खरबो किलोमीटर दूर हैं। सेंटारी तारा, जो हमसे सर्वाधिक समीप है, कोई ४ प्रकाश-वर्ष दूर है, जबकि प्रकाश का वेग प्रति सेंकड लगभग ३ लाख कि० मी० है। रूसी नक्षत्रवेत्ता 'लूमारूफ' के अनुमान के अनुसार यदि हम एक 'जेट' पर बैठ कर, सूर्य के बाद सबसे पहले सितारे तक पहुँचना चाहे तो लगातार ३० लाख साल तक सफर करना पडेगा। स्वय प्रकाश को एक नक्षत्र से दूसर नक्षत्र तक पहुँचने मे कई-कई साल लग जाते हैं। इस असीम अतरिक्ष को देखते हुए यह नही कहा जा सकता कि जीवन का अस्तित्व केवल भूलोक तक ही सीमित है। हम ज्ञान एव विश्वास की रोशनी म यह सभावना तो स्वीकार करनी ही पडेगी कि इस अपरिमित ब्रह्माड के अन्य भागो मे दूसरे ग्रहो पर जीवन का अस्तित्व है, यद्यपि अभी हम इस स्थिति का ज्ञान नही। परन्तु अतरिक्ष की खोज के इस युग म अब यह विश्वास बढ़ता जा रहा है कि अन्य सौरमडलो के उन ग्रहो पर भी जीवन सभव है, जहाँ परिस्थितियाँ अनुकूल हैं।

जीव तत्त्व की गति व्यवस्था एव सघटन की एक विशेष जटिल एव

दुर्बोध तथा दक्षतम आकृति है। जीवन, जैसा कि हमे ज्ञात है, कई मौलिक आवश्यकताओ पर आश्रित है। गरमी तथा रोशनी के लिए एक सूर्य औसत फासले पर होना चाहिए, काफी पुराना एक ग्रह होना चाहिए जिसमे जीवन और सभ्यता फलफूल सके। नक्षत्र और ग्रह की गति आदि मे अनुकूलता हो, ताकि गरमी और रोशनी की प्राप्ति के साथ ही साथ शांति की शर्तें सुलभ हो सकें, अन्यथा जीवन और उसकी अनिवार्यताएँ स्थिर नही रह सकती। फिर यह भी आवश्यक है कि हमारी पृथ्वी जैसी बृहद् एव विस्तृत जीवनदायक और आर्थिक व्यवस्था उपलब्ध हो जो जीवन को निरतर और स्थिर रख सके।

इन आधार-तत्वो को सामने रखते हुए हमारे सौरमडल के दूसरे ग्रहो पर जो भौतिक तथा रासायनिक स्थितियाँ वर्तमान हैं उनकी खोज-बीन की गयी है, और उनकी तुलना उन परिस्थितियो से की गयी जो जीवन के लिए अनुकूल हैं और इससे यह परिणाम निकाला गया कि इनमे से कतिपय ग्रहो (चन्द्रमा सहित) पर जीवन के मौलिक लक्षणों की सभावना हो सकती है।

सबसे पहले चद्रमा को लीजिए। अतरिक्ष मे यह हमारा निकटतम पडोसी है। चद्रमा के रात और दिन हमारी पृथ्वी की तुलना मे १४ गुना बडे होते हैं। वहाँ न कोई वातावरण है और न हवा-पानी का अस्तित्व ही है अत किसी आवाज का पैदा होना भी असभव है। बात-चीत करने के लिए जटिलतम वायरलेस विधियो की आवश्यकता होगी। चद्रमा पर रोशनी और अँधेरे के अतिरिक्त और कोई रग नही है। सूर्य के सामने आनेवाला भाग प्रकाशित और गरम हो जाता है। यह गरमी १००° सेंटिग्रेड से भी अधिक होती है। जो भाग सूर्य की ओर नही होता वह अधकारमय तथा ठण्डा,—२८५° सेंटिग्रेड तक हो जाता है।

जहाँ तक वातावरण का प्रश्न है, परिस्थितियाँ और भी विपरीत हैं। वातावरण के अभाव म वहां न रगो की चित्र-विचित्रता है, न उसका सुहानापन, न अरुणोदय की लाली है और न सावन की घटाएँ, वरन् दूर-दूर तक वीरान और श्रीहीन नीचे-ऊँचे स्थल फैले हुए हैं। इसलिए चद्रमा पर जीवन का अस्तित्व सदिग्ध है। लेकिन कुछ विज्ञानवेत्ता चद्रमा पर

जीवन की प्रारंभिक आकृतियों की मौजूदगी स्वीकार करते हैं जिसका कारण चंद्रतल पर ज्वालामुखी पर्वतों का अस्तित्व है जो कहीं-कहीं अनुकूल तापक्रम का पता देते हैं। परंतु अपोलो की यात्राओं ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि चंद्रमा पर किसी प्रकार का जीवन नहीं है।

बुध ग्रह में भी जीवन धारण की कोई संभावना प्रतीत नहीं होती, क्योंकि बुध सूर्य की ओर से प्रथम ग्रह है, जिसके बाद शुक्र और पृथ्वी की परिधियाँ आती हैं, इसलिए बुध अति उष्ण एवं तप्त ग्रह है, और वातावरणविहीन भी। चंद्रमा की भाँति अंतरिक्ष में बुध की परिभ्रमण गति भी ऐसी है कि इसका एक भाग सर्वथा सूर्य के विपरीत दिशा में रहता है, जहाँ घोर अंधकार तथा शीत का साम्राज्य है। यहाँ हीरे-जवाहरात के ढेर उपलब्ध हो सकते हैं, सोने-चाँदी की खानें मिल सकती हैं, परंतु बुध में वर्तमान परिस्थितियों में जीवन का आविर्भाव तथा विकास संभव नहीं है।

इसके बाद शुक्र ग्रह आता है जिसके ऊपर हमेशा घने बादल छाये रहते हैं और यह पिंड छिपा रहता है। यही कारण है कि इसकी भौतिक स्थिति के विषय में अधिक ज्ञान हमें प्राप्त नहीं है फिर भी रेडियो तरंगों और रैडार दूरदर्शी की सहायता से जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनके आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि तापक्रम शून्य से ३००° सेंटिग्रेड नीचा होगा। फिर, यह कि ग्रह के वातावरण में नाइट्रोजन तथा कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा पृथ्वी की तुलना में सैकड़ों गुना अधिक है, जिसने शुक्र के माहौल को गरम, जहरीला और प्राणी-प्रतिकूल बना रखा है।

परंतु इसके विपरीत अमेरिका के कुछ वैज्ञानिक शुक्र के वातावरण में जल कण की मौजूदगी प्रमाणित करने में सफल हुए हैं। इसी आधार पर यह अनुमान भी लगाया गया है कि इस ग्रह की संपूर्ण सतह पानी की ठोस मोटी तह से आवृत है, बल्कि कतिपय नक्षत्र वेत्ताओं का यहाँ तक विचार है कि शुक्र ग्रह पर पानी की प्रचुरता है।

शुक्र ग्रह भी प्रायः हमारी पृथ्वी के बराबर है। इस ग्रह के विषय में हमारी कल्पना में एक और चित्र भी आता है। संभव है, अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अधीन वहाँ अपने ढंग पर चेतनायुक्त जीवन

का विकास हुआ हो। यह भी सभव है कि बाह्य आवरण के नीचे शुक्र ऐसे साधनो से भरपूर ग्रह हो जैसी हमारी पृथ्वी है। ऐसी दशा म वहाँ के चेतनायुक्त जीवन के विषय म सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वहाँ का जीवन हमारे मुकाबले में अत्यत न्यून चेतना का परिचायक होगा, क्योकि बाह्य विश्व से पर्दे म होने के कारण उसे अपने विशेष वातावरण से परे विराट विश्व का कोई ज्ञान नही होगा। घने बादलो क ओट म सभव है, अपने जीवन-काल म एक-आध बार उन्हें सूय की हल्की-सी झलक मिल जाती हो। परतु आग, अन्य ग्रहो अथवा तारो-भरी कनात का इन्हे कोई विवेक नही होगा। यदि वहाँ के वैज्ञानिक अधिक साहसी हुए तो उनका यह साहस एव अन्वेषण अपने वातावरण या पहाडो (जो कि ग्रह के उत्तरी भागो म फैले हुए हैं), अथवा सागरो और द्वीपो तक सीमित होगा। अतरिक्ष मे जीवन धारण के विचार से यह गभीर समस्या है और यदि शुक्र ग्रह पर जीवन के लक्षण प्राप्त हो जाते हैं तो यह मानो ब्रह्माड मे जीवन के अस्तित्व तथा इसकी सर्वव्यापकता की घोषणा होगी।

परतु भू-लोक के जीवन धारण एव वातावरण को दृष्टि म रखते हुए तुलनात्मक अध्ययन किया जाये, तो इस प्रकाश म अधिकाश वैज्ञानिको की मान्यता यही है कि शुक्र पर भी जीवन का पाया जाना सदेहयुक्त ही है।

जहाँ तक मगल का प्रश्न है, सौरमडल मे जीवन धारण के दृष्टिकोण से यह अधिक चर्चा का विषय रहा है। एक रूसी खगोलवेत्ता की खोज के अनुसार जीवन के लिए मगल पर परिस्थितियाँ बहुत कठिन हैं, क्योकि इसका वातावरण बहुत सूक्ष्म और झीना है, जैसा हमारी पृथ्वी से २५ १० कि० मी० ऊपर पाया जाता है। आक्सीजन की मौजूदगी सदेहजनक है, जबकि कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा पृथ्वी की तुलना मे दुगनी है। दूरदर्शी मगल का रग लालिमा लिये हुए लोहित वर्ण दिखाता है, जिसका सभावित कारण यह है कि ग्रह के धूलकणो मे लोहे की मात्रा अधिक है, जिसने मगल की सारी आक्सीजन और वातावरण की आर्द्रता को सोखकर भूमि को लोहवण एव शुष्क और नीरस बना दिया है। फलस्वरूप कावन-डाइआक्साइड की प्रचुरता है।

मगन के ध्रुव वफ से ढक रहते हैं परतु वफ की तह अधिक मोट नही होती। वप के कुछ भागो मे इन ध्रुवो की बफपोश चोटियो के किनारे और भूमध्य रेखा की ओर भूरे नीले विस्तृत क्षत्र नजर आते हैं। नक्षत्रविद् इन्हे वानस्पतिक क्षेत्र कहते हैं क्योकि आक्सीजन के अभाव मे भी कुछ वनस्पतिया ऐसी होती हैं जो जी लेती हैं। काई ऐसी ही वनस्पति है जो शुष्क बजर अथवा असाधारण ताप शीत मे भी जीवित रह सकती है। मगल पर ऐसी ही वनस्पति की विपुलता हो सकती है। पृथ्वी पर भी रगिस्तानो और नितात नीरस पवती क्षत्रो मे कुछ-न कुछ वनस्पति और जीव जतु पाये जाते हैं। इसी प्रकार बैक्टीरिया की कुछ किस्म अतिशीत मे भी जीवित पायी जाती हैं। ऐसे जतु एव पौधो की सभावना मगल मे की जा सकती है।

मगल के जो चित्र लिये गय हैं उनसे ज्ञात होता है कि ग्रह का ध्रुवी चक्र पृथ्वी-जैसा है, इसलिए वहाँ की ऋतुएँ भी वही हैं जो हमारी पृथ्वी पर होती हैं।

नवीनतम खोजो से जो तथ्य सामने आय हैं वे आश्चयजनक तो हैं ही, कतिपय ऐसे भी हैं जो अब तक के अन्वेषणो के विरुद्ध भी हैं। इन चित्रा म मगल की सतह भी चद्रमा की तरह ज्वालामुखी से भरपूर दिखायी पडती है। इस प्रकार यहाँ जीवन धारण के विचार को बहुत धक्का लगा, और एक जमाने से जिन काल्पनिक नहरो के आधार पर तरह तरह के अफ्साने विज्ञान साहित्य म राह पा चुके थ, उनका खडन हो गया।

मैरिनर ने मगल पर मीथन और अमोनिया दो ऐसी गैसो का पता दिया है, जो पृथ्वी पर जीव विकास की एक कडी है। इसी आधार पर मगल म जीवन की सभावना के विषय म विभिन्न विचार व्यक्त किय जा रहे हैं। अत कुछ वैज्ञानिका का खयाल है कि मगल पर जीवन यदि होगा, तो वह प्रारभिक रूप म होगा। एक रूसी वैज्ञानिक के अनुसार मगल के वातावरण म आप मौजूद है जो सघन होकर तरल भी बन सकती है तथा इसस एसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जो आक्सीजन की अनुपलब्धि म सादा जिस्म रखन वाले प्राणिया को जीवित रख सके। एक दूसर नक्षत्रवत्ता भी मगल म जीवन-सभावना क हामी हैं। इनका

बिना भी छोटे जीवकोष तथा पौधे जीवित रह सकते है और मगल पर इन्ही की सभावना हो सकती है।

इस प्रकार नक्षत्रविदो का सामान्य विचार यही है कि पृथ्वी स ऊपर उठकर जाने पर—किन्ही विशिष्ट परिस्थितियो मे ही सही—मगल और शुक्र म जीवन धारण के लक्षण दिखायी देंगे, परतु वह उन आकृतियो मे नही होगे जैसे हमारी पृथ्वी पर पाये जाते हैं। जीव-अध्ययन से वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि सौरमडल म जीवन का वृत्त सूय से १० करोड कि० मी स २२ करोड कि० मी० क मध्य म हो सकता है। इस तरह पृथ्वी इस सौर-वातावरण के बीच म है और इसीलिए पूरे सौर-व्यूह मे जीवन-धारण की दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखती है। मगल और शुक्र भी यद्यपि इसी वृत्त म आत हैं परतु पृथ्वी के साथ सर्वथा भिन्न स्थिति म। तो भी इस सौर-वातावरण के प्रभाव से इन दोना ग्रहो म भी किसी प्रकार के जीवा एव वनस्पति का अभाव है।

किसी ग्रह पर जीवन का अस्तित्व यदि चिह्नित एव प्रमाणित हो जाता है तो अतरिक्ष की अथाह गहराइया म अन्य ग्रहो पर जीवन-धारण का विगत सिद्धात सवथा बदल जायेगा। यह सिद्ध हो जाने रा अर्थ यह स्वीकार करना होगा कि हमारे सौर-मडल अथवा अन्य नक्षत्र-व्यूहों म तुच्छ अथवा उच्च और सचेष्ट एव प्रतिष्ठित जीवन वर्तमान है।

वर्तमान युग और गांधीवादी आर्थिक विचारधारा

श्रीमन्नारायण

मुझे पूरा विश्वास है कि विभिन्न समस्याओ के प्रति गाधीजी का दृष्टिकोण अत्यत वैज्ञानिक, युक्तियुक्त और व्यावहारिक था, शुद्ध काल्पनिक और सैद्धातिक हठधर्मिता पर आधारित नही, जैसाकि देश विदेश के कुछ तथाकथित बुद्धिवादी अक्सर कल्पना करते हैं। गाधीजी की कई शाश्वत सत्यो के प्रति दृढ आस्था थी और उसके लिए वे किसी भी हालत मे समझौता करने के लिए तैयार नही थ। उदाहरण के लिए उनका यह दृढ विश्वास था कि ऊंचे लक्ष्यो की प्राप्ति केवल पवित्र और सच्चे साधनो से ही सभव है। वह एक 'व्यावहारिक आदशवादी थे और अपने विभिन्न एव समृद्ध अनुभवो के प्रकाश मे देश की विभिन्न समस्याओ का व्यावहारिक समाधान खोजने का प्रयास किया करते थ। इसलिए मुझे इसमे जरा भी सदेह नही है कि गाधीजी की आर्थिक विचारधारा बुनियादी तौर पर युक्तियुक्त और हमारे समय के सवथा अनुरूप थी। मैं एक कदम और आगे बढकर बिना किसी सकोच के यह कहूँगा कि बापू के विचार मध्ययुगीन और दकियानूसी न होकर अपने समय से बहुत आगे थ और आर्थिक एव राजनीतिक कारणो से बाध्य होकर हमे आज के कुछ विरोधाभासो के समाधान के लिए उनकी ओर वापस लौटना होगा।

यह बडे महत्त्व की बात है कि नयी दिल्ली मे गाधीवादी विचारधारा पर ३० जनवरी स ५ फरवरी, १९७० तक सपन्न अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी प्राय इस बारे मे एकमत थी कि गाधीवादी विचारधारा आधुनिक युग के अत्यत अनुरूप है और गाधीजी के देहावसान के बाद घटित होनेवाली अनेक घटनाओ ने इस अनुरूपता को कम नहीं किया, अपितु बढाया ही है। गोष्ठी की समाप्ति के बाद प्रसारित सदेश म यह कहा गया था

'गाधीजी का जिस सकट का सामना करना पडा था, वह सकट

स्पष्टत अभी समाप्त नही हुआ, वल्कि और भयावह हो गया है और उन्होने जो समाधान सुझाये थे, वे अभी पुराने नही हुए न केवल अपने बल्कि विश्व के समस्त देशो मे आर्थिक विचारधारा, आयोजन और कार्य के क्षत्र मे गाधीजी अब भी एक जबरदस्त चुनौती प्रस्तुत करते हैं।

ऐसा प्राय सोचा जाता है कि महात्मा गाधी मूलत एक धार्मिक तपस्वी थे और परिणामत आधुनिक विज्ञान एव तकनीक के फलो के प्रति नि स्पृह थे। नि सदेह दुर्भाग्यवश यह विचार भ्रात धारणा पर आधारित है।

गाधीजी ने बार-बार इस बात पर बल दिया था कि वे मशीनरी के विरुद्ध नही, वल्कि श्रम की बचत करने वाली विधियो के प्रति उस 'सनक' के विरोधी हैं, जो लाखो लोगो को जबदस्ती अकमण्यता के गर्त मे धकेल देती है। सन् १९४४ मे गाधीजी के प्राक्कथन के साथ 'गाधीवादी योजना का मसौदा प्रकाशित हुआ था। इस मसौदे को तैयार करते समय मैंने एक दिन महात्माजी से मशीन के प्रयोग के बारे मे अपने विचार प्रस्तुत करने की प्रार्थना की थी। उन्होंने उस समय यह घोषणा की थी

'इस सबध म मेरी कोई सनक नही है। मै तो केवल यही चाहता हूँ कि भारत के प्रत्येक समथ नागरिक को उपयोगी रोजगार उपलब्ध कराया जाये। अगर मानव-श्रम को विस्थापित और वेरोजगारी पैदा किये बिना बिजली या आणविक शक्ति का प्रयोग किया जाय, तो मैं इसके विरुद्ध किसी प्रकार की आपत्ति नही करूँगा। बहरहाल मुझ अब भी इस बारे मे आश्वस्त होना है कि भारत जैसे देश मे जहाँ पूजी की कमी और श्रम की बहुतायत है, यह सब सभव हो सकता है।"

(गाधीजी ने आगे कहा

'अगर सरकार खादी तथा ग्रामोद्योगो की सहायता के बिना हमारे देश के लोगो के लिए पूर्ण रोजगार जुटा सके, तो मै इस क्षेत्र म रचनात्मक कायक्रम समाप्त करने के लिए तैयार हो जाऊंगा।'

प्रथम पचवर्षीय योजना के निर्माण के समय आयोग के सदस्यो के साथ इस समस्या पर विचार विमश करते समय आचाय विनोबा भावे तो एक कदम और आगे बढ़ गये

"अगर सरकार काम तलाश करने वाले सब लोगों के लिए रोजगार जुटा सके, तो मैं एक दिन का खाना बनाने के लिए अपने लकडी के चरखे को जलाने मे जरा भी सकोच नही करूँगा और एक भी आँसू नही बहाऊँगा।"

मैं नही सोच सकता कि भारत जैसे विकासशील देश मे यत्रीकरण के बारे मे गाधीवादी विचारधारा के इस स्पष्ट प्रतिपादन मे कोई आधुनिक अर्थशास्त्री दोष निकाल सकता है।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'एशियन ड्रामा ऐन इन्क्वायरी इटू दि पावर्टी आफ नेशन्स' मे प्रो० गुन्नार मिर्डल ने मोटे तौर पर गाधीजी के ग्रामोद्योगो और कुटीर उद्योगो पर बल देने का समर्थन किया है, क्योंकि, 'दक्षिण एशिया के देश अब पश्चिमी ढग के अत्यधिक सगठित उद्योगो के उन छोटे-छोटे द्वीपो के सर्जन का खतरा उठा रहे हैं, जो अवरोध के समुद्र से घिरे रहेंगे।" विद्वान् प्रोफेसर का कहना है

'वर्तमान कुटीर उद्योगो की प्रतियोगिता करने वाले उद्योगो का विकास लाखो लोगों के हाथो से रोटी और रोजी छीन लेगा और उनके पास रोजगार या आय का कोई तात्कालिक विकल्प नही रहेगा। यह आयोजन के दृष्टिकोण से युक्तियुक्त नही होगा । दक्षिण-एशिया के देशो के कुटीर उद्योगो के कामगारों के लिए दशाब्दियों तक किसी वृहत् समायोजन की सभावना नहीं है, विशेष रूप से इसका कारण यह है कि इस शताब्दी के अत तक श्रमिको की सख्या तेजी से बढ़ेगी।''

हाल ही मे इग्लैंड के डा० शूमेचर विकासशील देशो मे 'मध्यवर्ती तकनीक' के प्रवेश की जोरो से वकालत करते रहे हैं, ताकि मानवीय साधनो का पूरा उपयोग किया जा सके। उनका कहना है कि "सफलता का रहस्य बडे पैमाने के उत्पादन मे न होकर, जनता के लिए उत्पादन मे है।" शूमेचर अपने वक्तव्य को जारी रखते हुए कहते हैं :

'ऐसा दावा किया जाता है कि अगर बडे पैमाने के उत्पादन के लिए बाजार की व्यवस्था होती जाये, तो यह फालतू सपत्ति शीघ्रातिशीघ्र सग्रह के लिए सर्वाधिक प्रभावशाली साधन है और फिर यह फालतू सपत्ति बेरोजगार जनता के पास सचरित होकर पहुँच जायेगी। तथापि, यह तथ्य भी सर्वविदित है कि इस प्रकार का सचरण कभी होता नहीं। एक ऐसी अर्थव्यवस्था का उदय होता है जिसमे धनी और अधिक धनी

होता चला जाता है जबकि गरीब का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, या वह और अधिक गरीब होता चला जाता है।'

तीसरी पचवर्षीय योजना को अतिम रूप देते समय योजना आयोग ने कम-से-कम उन सभी व्यक्तियो के लिए, जो योजना अवधि मे श्रमिको मे शामिल हो जायेंगे, उत्पादक रोजगार की व्यवस्था का भरसक प्रयास किया, परतु उसने पिछली योजना से बेरोजगार चले आ रहे व्यक्तियो की बेरोजगारी दूर करने के लिए कोई साहसपूर्ण पग नही उठाये। राष्ट्रव्यापी ग्राम्य योजनाओ के अतर्गत बडे महत्त्वाकाक्षी कार्यक्रम सचालित किये गये, जिनमे निम्न कार्यक्रम भी सम्मिलित थे, जैसे छोटी सिंचाई की योजनाएँ, भूमि का सुधार और सरक्षण, वन-रोपण, गाँवो म सडको का निर्माण आदि। ग्राम्य आवास को भी बहुत ऊँची प्राथमिकता दी गयी। इन सबके बावजूद, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अब भी ५० लाख से ऊपर व्यक्ति लाभदायक रोजगार से वचित रह जायेंगे। इसलिए योजना आयोग के सदस्य, जिनमे से कई गाधीजी स सहमत नही थे, यह मानने के लिए विवश हो गये कि गाँवो म ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योगो के साहसिक राष्ट्रीय कार्यक्रम के अलावा और कोई चारा नही है। खादी और ग्रामोद्योग आयोग को यह आश्वासन दिया गया कि जो कुछ सगठन की दृष्टि से सुकर था, उसे आर्थिक दृष्टि से भी सभव बनाया जायेगा। इस प्रकार का निश्चित आश्वासन योजना आयोग ने अन्य किसी भी क्षेत्र या परियोजना को नही दिया था।

हमे यह स्वीकार करना होगा कि महात्माजी के विचार दकियानूसी एव अव्यवहार्य होने के बजाय आधुनिक समय की चुनौती के सवथा अनुरूप थे। आज जबकि हमारे देश म पाँचवी पचवर्षीय योजना लागू की जा रही है, बेरोजगारी और अल्पबेरोजगारी का भूत अब भी हमारे ऊपर मँडरा रहा है। यह सवथा निर्विवाद है कि इस सोपान म भी इस भयकर समस्या का समुचित समाधान यही है कि देश-भर म, विशेष रूप स गाँव म ग्रमोद्योगो, कुटीर-उद्योगो और लघु उद्योगो का जाल बिछा दिया जाय।

यह बात बडे महत्त्व की है कि सयुक्त राज्य अमरीका क एक तूफानी मतदान म ७८ प्रतिशत लोगो ने काम की गारटी की व्यवस्था करने के पक्ष म मत दिया, जबकि केवल ३६ प्रतिशत क अलग मत न

निधनो के लिए वार्षिक आय की गारटी के पक्ष मे मत दिया। इसका प्रमुख कारण यह है कि अमरीकी लोग अब 'तकनीकी समाज के मानव को अध पतित करनेवाले पक्षो' से पूर्णत अवगत हो रहे हैं। वे अमरीकी राष्ट्र के लिए 'सामुदायिक भावना' के विकास को अत्यत श्रेयस्कर समझते हैं। "इग्लैंड में प्रगतिशील आर्थिक विचारधारा के लोग अत्यधिक केंद्रीकृत समाज के बारे में चिंतित दिखायी देते हैं, जहाँ धनवानो का अपशोषण करके अधिक न्याययुक्त वितरण के बजाय 'निर्धनो का शोषण' किया जाता है और इसके लिए अत्यत खर्चीले तकनीकी उपाय अपनाये जाते हैं तथा अप्रत्यक्ष कराधान के अतर्गत ऊँची दरो पर कर वसूल किये जाते हैं, जिनका भार आनुपातिक दृष्टि से निर्धन वर्गों को ही अधिक सहन करना पडता है।"

प्रो० जे० के० गालब्रेथ ने विश्व मे उन कुछ थोडे विशाल व्यापारिक निगमो के सजन के विरुद्ध आवाज उठायी है, जो राज्य को एक अधीनस्थ स्थिति मे पहुँचा देते हैं और शासन का गठबधन 'विशेषज्ञो, योजना-निर्माताओ तथा तकनीशियनो से निर्मित तकनीकी ढाँचे' के साथ कर देते हैं। प्रो० गालब्रेथ का कहना है कि "प्रमुख निगमो को उपभोक्ताओ की भलाई की जरा भी चिंता नही है—वे तो केवल अपनी सुरक्षा, विकास, सुविधा, प्रतिष्ठा, तकनीकी श्रेष्ठता और आर्थिक लाभो की ही चिंता करते हैं।' इस प्रकार की औद्योगिक प्रणाली के खतरो से बचने के लिए प्रो० गालब्रेथ ने 'अन्य लक्ष्यों' की जोरदार ढग से वकालत की है, ताकि नया औद्योगिक राज्य समाज के विशाल उद्देश्यो के प्रति सचेष्ट' हो सके। निस्सदेह ये लक्ष्य गांधीवादी विचारधारा और कार्यक्रमो के अनुरूप नैतिक एव मानवीय होगे।

महात्मा गांधी ने, ग्राम्य वातावरण म सादी एव कमोबेश आत्म-निभर जिंदगी का समथन किया। इसका मुख्य कारण यह था कि उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से यह देख लिया था कि नगरो का अत्यधिक कृत्रिम और केंद्रित जीवन अमानवीय हिंसा और आक्रामक राष्ट्रवाद को जन्म देगा, जिसके परिणामस्वरूप अतर्राष्ट्रीय तनावो मे वृद्धि होगी। इसीलिए उन्होंने भारत म आदश ग्रामो की स्थापना पर बल दिया, जहाँ लोग 'सादा जीवन और उच्च विचार' के आदर्श का अनुसरण

कर सकते है। महात्माजी आधुनिक विज्ञान के प्रशसक अवश्य थे, परतु वे इसके 'बिल्कुल नये सिरे से नवीकरण' के समर्थक थे। प्रत्येक व्यक्ति यह जानकर स्वभावत हैरत मे पड जायेगा कि सन् १६७० मे सयुक्त राज्य अमरीका का प्रतिरक्षा बजट ७,६८,००० लाख डालर का था। इसके बाद सोवियत रूस का नबर आता है, जिसने युद्ध व्यय की मदो के लिए ४,००,००० लाख डालर की व्यवस्था की। अस्त्र-शस्त्रों पर व्यय किये जाने वाले सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत की दृष्टि से देखें, तो सोवियत सघ का १५·२ प्रतिशत सूची मे सर्वोच्च है। इसके बाद सयुक्त राज्य अमरीका का नबर आता है, जो अपने सकल राष्ट्रीय उत्पाद का ६ ३ प्रतिशत प्रतिरक्षा पर व्यय करता है। विश्व मे अस्त्र-शस्त्रो पर व्यय की जाने वाली कुल राशि १६,५०,००० लाख डालर है। इसमे चीन का प्रतिरक्षा-व्यय शामिल नही है, जो कि अज्ञात है। अगर इस विपुल धनराशि मे काफी बडे परिमाण मे कटौती की जाये और इस विकासशील देशो के लाखो अर्ध-नग्न और अर्ध-क्षुधार्त लोगो के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने मे व्यय किया जाये, तो धनी और निर्धन राष्ट्रो के बीच विद्यमान खाई को ठोस तरीके से भरा जा सकता है और तीसरे विश्वयुद्ध की सभावना को बडे विश्वास के साथ दूर किया जा सकता है। इस प्रकार गाधीजी की अहिंसा की विचारधारा सनक या कोरा सिद्धात मात्र नही थी, वरन् वही एकमात्र तर्कसगत जीवन-पद्धति है जो विश्व को रहने योग्य बना सकती है।

आर्थिक एव राजनीतिक सत्ता का विकेंद्रीकरण अहिंसा की एक स्वाभाविक उपसिद्धि है। गाधीजी के विचार मे समाज मे हिंसा का कारण आर्थिक शोषण है और आत्मनिर्भर ग्राम समुदायो के सगठन के माध्यम से विकेंद्रीकरण की साहसिक नीति का अनुसरण करते । विश्व को भावी युद्धो की विभीषिका से बचाया जा सकता है। गाधी . के शब्दो मे "आत्मनिर्भरता का मतलब सकीर्णता नही है। मनुष्य जितना आत्मनिर्भर है, उतना पर-निर्भर भी है। जब समाज को व्यवस्था मे रखने के लिए निर्भरता आवश्यक हो जाती है, तब यह निर्भरता नहीं रहती, बल्कि सहयोग का रूप धारण कर लेती है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के बराबर होता है।" इस प्रकार के सहयोगी राष्ट्र-मडल

के लिए गांधीजी ने जीवन-पर्यंत अविरल काम किया। वे परमाणु बम की प्रभावशालिता मे विश्वास नहीं रखते थे और जाति, भाषा या धर्म के किसी भी भेद के बिना सारे विश्व को अपना परिवार समझते थे। जैसाकि डॉ० आर्नाल्ड टायनबी का कहना है, "महात्माजी ने राजनीति के क्षेत्र मे मानव जाति को नैतिक पाठ पढ़ाया और वह भी आणविक युग के प्रारंभ होने के अवसर पर।"

ग्रामो की आत्मनिर्भरता और विश्व-भ्रातृत्व के सबध मे गाधीजी के विचार कुछ असगत और विरोधाभासपूर्ण प्रतीत हो सकते हैं। जब मैंने एक दिन सेवाग्राम मे गाधीजी से इस आभासी विरोध का स्पष्टीकरण करने के लिए कहा, तो उन्होंने उत्तर दिया :

"भोजन, वस्त्र और आवास की अपनी प्रारभिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुझे *दुनिया का कोना-कोना छानने की आवश्यकता नही* है। सेवाग्राम मे सादगी और सतोष की जिंदगी व्यतीत करते हुए मै न केवल समस्त मानवता के साथ, बल्कि अनत सत्ता के साथ एकाकार होने की आकाक्षा रखता हूँ।"

आजकल प्रतिदिन समाचार-पत्रों मे समाजवाद की चर्चा सुनते-सुनते हमारे कान पक गये हैं। प्रोफेसर जोड का कहना है, 'समाजवाद उस टोप के समान है, जिसकी आकृति बिल्कुल समाप्त हो चुकी है, क्योंकि हर कोई इस टोप को पहनता है।" बहरहाल, गाधीजी की समाजवाद सबधी धारणा बहुत भिन्न थी, परतु वर्तमान विचारधारा की तुलना में बहुत प्रगतिशील थी। वह 'सपत्ति' और 'परिग्रह' मे भेद करते थे। उनकी दृष्टि मे बुराई सपत्ति मे न होकर परिग्रह-वृत्ति मे थी। जब गाधीजी के एक ऐश्वर्यशाली मित्र लाखो की सपदा के त्याग और व्यापारिक कार्यकलाप से सन्यास लेने के अवसर पर उनसे आशीर्वाद लेने गये, तो बापू ने कहा, 'मैं नही चाहता कि आप अपनी लाखो की सपत्ति या व्यापार का परित्याग करें। मैं तो यह चाहता हूँ कि आप अपनी सपत्ति और व्यापार दोनो का निर्धनो के हित मे प्रयोग करें।" महात्मा गाधी की यह हार्दिक इच्छा थी कि पूंजीपति राष्ट्र के ट्रस्टी बनें और पूरी ईमानदारी तथा कुशलता के साथ अपने व्यापार का सचालन जनता-जनार्दन के कल्याण के लिए करें।

कभी-कभी ऐसा कहा जाता है कि ट्रस्टीशिप के छद्म वेष मे गाधीजी पूँजीवादी प्रणाली को एक नया रूप देना चाहते थे। यह सर्वथा भ्रामक विचार है। गाधीजी ने अनेक बार यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया था कि वे स्वैच्छिक प्रयास द्वारा पूँजीपतियो को अपने सुधार का एक अवसर और देना चाहते हैं। अगर वे अपना सुधार करने मे असफल सिद्ध हुए तो लोकतन्त्री राज्य को पूँजीपतियो के लाभो को प्रतिबधित करने और मजदूरी तथा वस्तुओ के मूल्य निर्धारित करने के सबध मे खुली छूट होगी। सन् १६३२ में जब गाधीजी आगा खाँ महल मे नजरबद थे, उन्होने अपने अतिम मसौदे मे यह स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि ट्रस्टीशिप का सिद्धात 'सपत्ति के निजी स्वामित्व के अधिकार को वही तक स्वीकृति प्रदान करता है, जहाँ तक समाज व्यक्ति के निजी हित के लिए इसके रखने की इजाजत दे इसमे स्वामित्व के अधिकार और सपत्ति के प्रयोग को विनियमित करने की दृष्टि से कानून बनाने की हर्गिज मनाही नही है।" यह भी स्पष्ट शब्दो मे बता दिया गया है कि 'गाधी-वादी अर्थव्यवस्था के अतर्गत किस प्रकार की वस्तुओ का उत्पादन किया जाये, इसका निर्धारण वैयक्तिक सनक या लोभ से न होकर सामाजिक आवश्यकता की कसौटी पर किया जायेगा।"

मेरा यह दृढ विश्वास है कि गाधीजी का ट्रस्टीशिप का विचार अस्पष्ट और प्रतिक्रियावादी न होकर समाजवाद के वतमान सिद्धातो से कही अधिक प्रगतिवादी है। भारत म और अन्यत्र भी आधुनिक व्यापार और उद्योग मे गाधीजी के ट्रस्टीशिप सबधी विचारो को मूर्त रूप देने की दिशा म कुछ प्रयास किये गये हैं। मुझे इसमे जरा भी सदह नही कि अगर बापू के विचारो को अमली जामा पहनाया जाये तो व न केवल विश्व को एक बहतर किस्म का समाजवाद प्रदान करेंगे बल्कि दुनिया को पारस्परिक वैर-भाव और खून-खराबे स भी बचायेंग। गाधीजी का मानवीय प्रकृति की सदाशयता म विश्वास कभी नही डग-मगाया और उन्होने सपत्तिशाली वर्ग स प्रत्येक अवसर पर यह अनुरोध किया कि वह स्वच्छा से दूसरो के लिए त्याग करें।

गाधीजी चाहत थ कि प्रत्यक व्यक्ति अपने स समाजवाद का श्रीगणेश करे और जबदस्ती दूसरे की सपत्ति अपन अधिकार में न ले।

उन्होने यह घोषणा की कि 'समाजवाद को व्यावहारिक रूप देने की दिशा मे पहला कदम यह है कि हम अपने हाथो और पैरो का प्रयोग करना सीखें, प्रात काल उठकर अपना बिस्तर स्वय लपेटें, अपने कपडे स्वय धोएँ, बर्तन साफ करने म अपनी माताओ और बहनो की मदद करें और अपनी जरूरत के कपडे के लिए प्रतिदिन कताई करें।' उन्होने आगे कहा, "अगर हम समाजवाद के सबध मे लबी-चौडी बातें करने और दूसरो को इसका उपदेश देने के स्थान पर स्वयमेव इसे व्यवहार मे लायेंगे, तो हम अपन निकट पडोस मे समाजवादी समाज की स्थापना करेंगे और समाजवाद मे दीक्षित होनेवाले सर्वप्रथम हम ही होगे।" गाधीजी के शब्दो मे, 'समाजवाद स्फटिक की तरह शुद्ध है और इसीलिए इसकी प्राप्ति के लिए ऐसे साधनो की आवश्यकता है, जो स्फटिक के सदृश ही शुद्ध हो। अपवित्र साधनो से साध्य भी अपवित्र हो जाता है। इसलिए धनिको का सर धड से जुदा करने से धनियो और निर्धनो मे समानता नही लायी जा सकती और न ही विध्वसात्मक कार्रवाई से मालिक और मजदूर के बीच समता लायी जा सकती है।"

महात्मा गाधी हिंसा और वर्ग-युद्ध के साम्यवादी तरीको के कट्टर विरोधी थे। उनका कहना है कि, "रूसी साम्यवाद भारत के लिए घातक होगा अगर साम्यवाद बिना हिंसा के आता है तो इसका स्वागत है।" गाधीजी से एक बार किसी ने प्रश्न किया, "परतु भारतीय साम्यवादी भारत मे स्टालिन की किस्म का साम्यवाद चाहते हैं और अपनी उद्देश्य सिद्धि के लिए आपका नाम इस्तेमाल करना चाहते हैं।" उन्होने बडो दृढता से जवाब दिया, "वे सफल नही होगे।" भारत मे आजकल समाजवाद को साम्यवाद के साथ गडबडा दिया गया है और राष्ट्रीय नेतागण एक-दूसरे पर दोषारोपण कर रहे हैं। इसलिए समीचीन यही होगा कि हम इस विषय मे गाधीजी के स्पष्ट विचारो को हृदयगम करें और अपने को गर्त म गिरने से बचायें। भारत को अहिंसक एव लोकतत्री पद्धति से ही समाजवाद के पथ का अनुसरण करना है। वर्ग-युद्ध और पारस्परिक घृणा का मार्ग आत्मघाती सिद्ध होगा।

अतर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त इतिहासकार डॉ० आर्नाल्ड टायनबी ने अपने हाल के एक प्रकाशन मे विश्व की युवा पीढ़ी से निम्न शब्दो मे

यह अनुरोध किया है कि वह गाधीजी की अहिंसा और सत्याग्रह की भावना को आत्मसात् करते हुए हिंसा को कुचल डालें और प्रतिक्रिया-वादी शक्तियो का प्रतिरोध करें। "अपने को दूसरो की स्थिति मे रखते हुए उन्हे समझने का यत्न करें और यह देखें कि वे लोग उस प्रकार की विचारधारा क्यो रखते हैं और वे काम क्यो करते हैं, जिनसे आपका जबर्दस्त विरोध है। अपने अभिभावको की पीढी के सदस्यो का विरोध जारी रखें। उनका प्रतिरोध करने और जहाँ तक उनके विचार और आदर्श आपका गलत प्रतीत हो, उन्हे परास्त करने का प्रयास करें, परतु यह सब गाधीवादी भावना के साथ और बिना किसी घृणा के करें।"

उन्होने आगे कहा, 'सबसे बढ़कर धैर्यशाली बनने का प्रयत्न करें और हिंसा से दूर रहे। महान् दर्शनो और धर्मों के नेताओ से प्रेरणा प्राप्त करें। बुद्ध, ईसा मसीह और अन्य महान् आत्माओ की विनम्रता, धैर्य और सहिष्णुता का अनुसरण करने का प्रयास करें।"

वातावरण का प्रदूषण

औद्योगीकरण और नगरीकरण के क्षेत्र मे अधाधुध दौड का ही यह परिणाम है कि आज विश्व को वायु और जल के प्रदूषण की गभीर समस्या का सामना करना पड रहा है।

कार्नेल विश्वविद्यालय, अमरीका मे परिस्थिति विज्ञान के प्रोफेसर डॉ० लेमाट कोल का कहना है कि प्रदूषण की मूलभूत समस्या यह है कि "हम अध श्रद्धा के कारण वृद्धि और प्रगति को एक समझ लेते हैं।"

'अर्थशास्त्रियो का कहना है कि अगर कपनियो को जीवित रहना है तो उनकी वृद्धि होनी चाहिए। हम इस बात पर बडा गर्व अनुभव करते हैं कि हमारा सकल राष्ट्रीय उत्पाद चार और पाँच प्रतिशत वार्षिक के बीच की दर स बढ़ रहा है, परतु हम इस तथ्य की उपेक्षा कर दते हैं कि प्रति प्रतिशत कूडा-कर्कट का उत्पादन भी इसी दर से हो रहा है। हमस यह कहा जा रहा है कि हमारी विद्युत् उत्पादन क्षमता प्रति वर्ष दस प्रतिशत की दर से बढनी ही चाहिए, परतु हम यह भूल जाते हैं कि यह सब ऊर्जा वातावरण मे भाप के रूप म समा जाती है अगर वे सातो के हाथो म प्रदूषण के बिल थमा दिये जायें तो हमे

अपने वायुमडल मे कुछ आश्चर्यजनक सुधार दिखायी देंगे। परतु मैं आपको यह भी बता दूं कि इस प्रकार की हिसाब-किताब की पद्धति तभी कारगर हो सकती है, जब हम शुद्ध तकनीकी निर्णयो को ध्यान मे न रखते हुए राजनीतिक एव आचार-शास्त्रीय निर्णयो को भी ध्यान मे रखें।"

इग्लैंड मे सरकार ने हाल ही मे सभी सभव उपायो से वायु और जल के प्रदूषण को रोकने के लिए एक स्थायी आयोग की नियुक्ति की है और मोटरगाडियो द्वारा उत्पन्न दूषित वाष्पो तथा द्रवो की रोकथाम के लिए कानून बनाये हैं। एक अग्रेजी द्वैमासिक पत्रिका ने अपने हाल के एक अक मे 'प्रदूषण की राजनीति' पर बड़े विस्तार से प्रकाश डाला है और यह व्यक्त किया है कि आधुनिक विज्ञान और तकनीक ने, जिससे यह आशा की जाती थी कि वह सभी समस्याओ का सतोषजनक समाधान ढूंढ लेगा, समाज को एक अत्यत कठिन और उलझन-भरी स्थिति मे डाल दिया है।

कभी-कभी ऐसा ख्याल किया जाता है कि रूस मे शायद स्थिति बेहतर हो। परतु यह एक भ्रम है। लदन 'इकोनॉमिस्ट' के ५-११ सितबर १९७० के अक के अनुसार "चूंकि सोवियत सघ पूंजीवादी देश नहीं है, इसलिए प्राय ऐसा सोचा जाता है कि वहां कम प्रदूषण होगा। पश्चिम मे प्रदूषण का दोष प्राय उस आर्थिक प्रणाली पर डाला जाता है जो इस बात का ख्याल नही रखती कि प्रदूषण समाज के लिए कितना महंगा है। तथापि ऐसा मालूम होता है कि सोवियत सघ भी उतना ही बुरा है जितने कि हम।"

हमारे देश मे एक उच्चस्तरीय समिति इस कार्य मे सलग्न है। अभी भी समय है कि भारत सरकार दिनोदिन फैलते हुए नगरों मे वायु और जल के प्रदूषण को रोकने के लिए विशेष कदम उठाये और इस सवाल को अहमियत दे।

केवल रोटी के सहारे नहीं

निष्कर्ष मे, बाइबिल की इस विख्यात उक्ति को मैं उद्धृत करना चाहूंगा कि 'मनुष्य केवल रोटी के सहारे ही जिदा नही रहता।' हमारे प्राचीन ऋषि और मुनि इस बात को दोहराते हुए कभी नहीं थकते थे,

कि "केवल धन-सपत्ति मानव को सतुष्ट नही कर सकती ।" गाधीजी ने अपने सादगी के आदर्श को सदा सर्वोच्च स्थान दिया । वे उन सभी आर्थिक और राजनीतिक गतिविधियो के विरोधी थे, जो नैतिक एव धार्मिक मूल्यो से शून्य थी । इस सबध मे, स्टालिन की पुत्री स्वेतलाना द्वारा अपने हाल के प्रकाशन मे वर्णित निम्न विचार-सरणि से मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ ।

"ससार के सभी महान् धर्मों मे एक उच्च नैतिक शिक्षा के हमे दर्शन होते हैं । सभी धर्म यह उपदेश देते हैं कि मनुष्य किसी की हत्या न करे, चोरी न करे, दूसरो की भलाई करे; अगर वह यह चाहता है कि दूसरे उसे हानि न पहुँचायें तो वह किसी को हानि न पहुँचाये । उसे यश और ऐश्वर्य के पीछे नही भागना चाहिए, क्योकि ये क्षणिक हैं । केवल आत्मा ही शाश्वत है • धार्मिक भावना का मधुर स्वर ही जीवन का सगीत है ।"

उसने फिर आगे कहा है : "मेरे लिए विश्व का सर्वोत्तम गिरजाघर आकाश का तारा-खचित गुवद है ।"

भविष्य की रूपरेखा का यह दिग्दर्शन है और गाधीजी की दिव्य दृष्टि ने हमारे समुख मानवता का भविष्य उद्घाटित कर दिया है ।

गाधीजी भविष्य के हैं, भूत के नही । उनका देहावसान नही हुआ; उनका सदेश शाश्वत है और वह तब तक अमर रहेगा, जब तक विस्तृत नील गगन मे सूर्य भगवान् अपनी प्रखर द्युति से द्युतिमान हैं । जैसाकि उन्होंने स्वय लिखा था, "जब तक मुझमे विश्वास की ज्योति प्रज्वलित है और मेरा विश्वास है कि अगर मैं एकाकी भी हूँ तो यह ज्योति जलती रहेगी, मैं कब्र म भी जीवित रहूँगा और अद्भुत बात तो यह है कि वहाँ से भी बोलता रहूँगा ।'

अपनी हाल की एक रचना मे लुई फिशर ने यह घोषणा की है "अगर मनुष्य को जीवित रहना है, अगर सभ्यता को जीवित रहना है और स्वातन्त्र्य, सत्य एव शालीनता के पुष्पो में विकसित होना है, तो बीसवीं शताब्दी का अवशिष्ट और उसके बाद का काल न तो लेनिन या ट्राट्स्की का होगा, न मार्क्स या माओ या हो या च्या, बल्कि महात्मा गांधी का ।"

गरीबी और आयोजन

डा० के० एन० राज

भारत मे आयोजन तथा आर्थिक विकास की जिम्मेदारी जिन लोगो के ऊपर है उनके सामने सबसे अहम् सवाल इस समय यह है कि जनसाधारण की गरीबी को—कम से कम उसके अत्यधिक उग्र रूपो को—कैसे समाप्त किया जाये। 'गरीबी हटाओ' नारे का राजनीतिक फरमान स्पष्ट और वाध्यतामूलक है। लेकिन इसे ठोस नीतियो और कार्यक्रमो के रूप मे कार्यान्वित करना होगा। साथ ही, यह काम एक ऐसे समय पर होना है जब, कई प्रकार के कारणो से यह आवश्यक हो गया है कि भारत विदेशी सहायता पर कम से कम अवलबित हो और अपने ससाधनो के पूरे पूरे उपयोग पर निभर करे।

गरीबी असल मे एक सापेक्ष चीज है। १९६४ मे सयुक्त राज्य के राष्ट्रपति को प्रस्तुत किये गये एक आधिकारिक प्रतिवेदन के अनुसार, उस देश की जनसख्या का कम से कम पाँचवा हिस्सा अब तक भी गरीबी की हालत म है। अगर गरीबी का वही मापदड भारत म भी लागू किया जाये तो यहाँ की जनसख्या का बहुत कम प्रतिशत गरीबी की सीमारखा मे आयेगा। साफ है कि हमे वही मापदड अपनाने होगे जो भारतीय परिस्थिति के अधिक अनुकूल हो, देखने मे चाहे वे जितने भी कठोर लगें।

कुछ दिनो से उपयुक्त लक्षणो की तलाश जारी है जिनके आधार पर भारत मे कितनी गरीबी है, यह जाना जा सके और गरीबी की समस्या का समाधान किया जा सके। ठीक एक दशक पहले योजना आयोग के पर्सपेक्टिव प्लानिंग डिवीजन द्वारा 'निम्नतम निर्वाह स्तर के के लिए आयोजन का तात्पय' विषय पर तैयार किये गये निवध म इस प्रश्न पर कुछ विचार किया गया था। उसमे जो लक्षण गिनवाये गये थे उनमे से एक था पोषण सलाहकार समिति द्वारा निर्दिष्ट 'सतुलित आहार' का अभाव। इस मापदड को अपनाते हुए और खाद्य के अलावा अन्य वस्तुओ के सामान्य उपभोग-स्तर की व्यवस्था करते हुए, यह अनुमान लगाया गया था कि एक परिवार को निर्दिष्ट न्यूनतम जीवन-

स्तर का निर्वाह करते हुए १९६०-६१ के मूल्यो पर प्रति माह ३५ रु० प्रति व्यक्ति खर्च करने होंग। लेकिन उस समय देश की जनसख्या का पाँचवाँ हिस्सा भी यह खर्च करने की स्थिति मे नही था। इसलिए पूरी जनसख्या के वास्ते ऐसे जीवन-स्तर की व्यवस्था का लक्ष्य बनाना आने वाले कुछ समय के लिए एक वास्तविक लक्ष्य ही प्रतीत होता है।

इस व्यावहारिक कठिनाई को सामने रखते हुए ही पर्सपेक्टिव प्लानिंग डिवीजन ने अपेक्षाकृत नीचे मापदड अपनाना स्वीकार किया था। इन मापदडो का उल्लेख भी उपभोग के न्यूनतम मासिक व्यय के रूप मे किया गया था, हालांकि उस व्यय के ठीक-ठीक आंकडे क्या होंगे, यह स्पष्ट शब्दो मे नही बताया गया था। यह सुझाव दिया गया था कि पाँच व्यक्तियो के प्रत्येक परिवार के लिए निम्नतम राष्ट्रीत औसत १०० रु० अर्थात् प्रति माह प्रति व्यक्ति २० रु० से कम नही होना चाहिए।

योजना आयोग ने अब इस मापदड को स्वीकार कर लिया है। 'पाँचवी योजना का दृष्टिकोण' विषय पर उसने दो महीने पहले जो निबध राष्ट्रीय विकास परिषद् के सामने प्रस्तुत किया है उसमे कहा गया है :

"जब हम विकास के एक लक्ष्य के रूप मे गरीबी हटाने की बात करते है तो हमारे दिमाग मे कोई सापेक्ष अवधारणा नही बल्कि गरीबी के निरपेक्ष स्तर की परिभाषा होती है। गरीबी की इस सीमा-रेखा को उपभोग के निम्नतम स्तर के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है। उपलब्ध आंकडो से पता चलता है कि १९६०-६१ के मूल्यो पर निर्वाह के समुचित निम्नतम स्तर के लिए प्रति माह प्रति व्यक्ति २० रु० का उपभाग आवश्यक है। वर्तमान मूल्यो मे इस राशि को करीब १.८८ से गुणा करना होगा।

निम्नतम निर्वाह स्तर तय करने के लिए कौन-से मापदड अपनाये जायें, यह बात कार्यान्वयन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसलिए किसी निर्णय पर पहुँचने से पहले अच्छी तरह सोच-विचार कर लेना जरूरी होता है। उदाहरण के लिए, पोषण-विशेषज्ञो द्वारा निर्धारित 'समुचित आहार' का प्रयोग कई बार बहुत भ्रामक हो सकता है। जब गरीबी इतनी व्यापक हो जैसी भारत म है, तो कम-से-कम शुरू मे तो

यह चेष्टा होनी चाहिए कि जनता के लिए ऐसे आहार की व्यवस्था की जाये जिससे यथासभव कम मूल्य पर आवश्यक पोषण मिल सके, और साथ ही उसमे स्वादुता का भी ध्यान रखा जाये। लेकिन पोषण-विशेषज्ञ मूल्य वाली बात पर अक्सर उतना ध्यान नही देते हैं जितना उन्हे देना चाहिए। 'सतुलित आहार' मे सम्मिलित कुछ चीजें अक्सर इस प्रचलित विश्वास पर आधारित होती हैं कि पोषण के लिए क्या वाछनीय है। फलत ऐसी खाद्य-वस्तुओ की तुलना मे जो सुलभ और सस्ती है और साथ ही पोषण के लक्ष्य को समान रूप से पूरा कर सकती हैं, महँगे खाद्य पदार्थों को तरजीह दे दी जाती है।

कुछ ऐसे ही कारणो से, यह तय करने के लिए कि निर्दिष्ट पोषण-सबधी मापदडो की पूर्ति हो रही है या नही, नमूने के सर्वेक्षणो द्वारा इकट्ठे किये गये उपभोग-व्यय के आँकडो का प्रयोग भी जोखिम से भरा हुआ है। जिस देश मे खाद्य-वस्तुओ की बहुत अधिक विविधता हो और साथ ही उनके मूल्यो मे भी बहुत अधिक अतर हो, व्यय के आँकडो को उनके समतुल्य पोषण के आँकडो के साथ रखने से कभी-कभी बडे विचित्र परिणाम निकल सकते हैं।

इस बात को प्रोफेसर दाडेकर के उदाहरण से समझा जा सकता है जिन्होने घोर परिश्रम से तथ्य जुटाकर इस क्षेत्र मे मार्ग-दर्शन किया है। उनकी कसौटी के अनुसार, जो लोग ऐसा आहार लेने मे समर्थ नही हैं जिससे उन्हे पोषण सबधी निम्नतम आवश्यकता की पूर्ति के लिए २२५० कैलोरी प्रतिदिन प्राप्त हो सकें, निम्न स्थिति के गरीब हैं। फिर उन्होने कुल जनसख्या मे ऐसे लोगो का प्रतिशत बताया है जो इस आवश्यकता की पूर्ति नही करते, और यह कार्य नेशनल सैम्पुल सर्वे द्वारा एकत्र आँकडो की सहायता से किया गया है। अनुमान लगाया गया है कि ४० प्रतिशत से कहीं अधिक लोगो को जो आहार मिलता है वह कैलोरी की दृष्टि से भी अपर्याप्त है। घोर अर्ध-पोषण के स्तर का यह अनुमान निर्णायक रूप से उस पद्धति पर निर्भर है जो खाद्य-सामग्री से सबधित व्यय के आँकडो को उनके कैलोरी समतुल्यो मे बदलने के लिए अपनायी जाती है। लेकिन जो आँकड़े उपलब्ध हैं वे वास्तव मे न तो इस प्रकार का प्रयोग करने के लिए ही पर्याप्त हैं और न उनके कारण

इन प्रयोगो से निकलनेवाले नतीजो पर ही विश्वास किया जा सकता है। आश्चर्य नही कि गरीबी के राज्यानुसार अनुमानो का अध्ययन करने से सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

उदाहरण के लिए, जो अनुमान प्रस्तुत किये गय हैं उनके अनुसार उत्तर प्रदेश की लगभग १८ प्रतिशत ग्रामीण जनसख्या को ही कैलोरी के मामले मे अपर्याप्त आहार प्राप्त होता है जबकि केरल मे यह अनुपात ६० प्रतिशत था। प्रति व्यक्ति आय दोनो राज्यो की लगभग समान है और यह विश्वास करने का भी कोई कारण नही है कि केरल के मुकाबले उत्तर प्रदेश मे आय का वितरण गरीबो के पक्ष मे ज्यादा है। पिछले दिनो प्रोफेसर पी० जी० के० पणिक्कर ने केरल के लिए उपलब्ध आँकडो की सहायता स इस विषय पर कुछ और कार्य किया था जिससे वास्तव मे यह सकेत मिलता है कि अर्ध-पोषण को अगर कैलोरी की कमी के रूप मे देखा जाय तो इस प्रदेश म अर्ध पोषण देश के दूसरे अधिकाश भागो की तुलना मे बहुत कम है। इस अध्ययन से यह भी प्रतीत होता है कि इसका मुख्य कारण शायद यह है कि पोषण-सबधी सारी आवश्यक शर्तें (सिर्फ कैलोरी सबधी शर्तें ही नही) केरल मे अपेक्षाकृत कम मूल्य चुकाकर पूरी की जा सकती हैं। प्रोफेसर दाडेकर स्पष्टतया ऊँचे मूल्यो की बात को ध्यान म रखकर चले थे।

इस प्रकार तैयार किय गये गरीबी के अनुमानो से कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण बातें उभरती है। प्रोफेसर दाडेकर का तर्क है कि इस बुरी तरह अधपेट रहकर भोजन की अपेक्षा विश्राम को अधिक महत्त्व देनेवाले बहुत लोग नही हैं। घोर अर्ध-पोषण के इस मापदड से गरीबी का जो स्तर सामने आता है वह पर्याप्त रोजगार की कमी' के कारण है। इसका अर्थ है कि समाधान मुख्यतया अधिक पर्याप्त रोजगार के अवसर प्रदान करन मे निहित है। बताया गया है कि इस उद्देश्य की पूर्ति बडे पैमाने के सावजनिक निर्माण कायक्रमो द्वारा सर्वोत्तम ढग से की गयी है।

ऊपर के तर्कों म कुछ बातें ऐसी हैं जो विवादास्पद हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, अगर लोग अर्धपोषित हैं तो इसका यह अथ आवश्यक नही है कि वे आलसी हैं। उनका अर्ध-पोषण और उनकी गरीबी कारण खाद्य-वस्तुओ की बहुत अधिक लागत हो सकती है या फिर

यह कि उनकी उत्पादनशीलता बहुत कम है। अगर यह बात है तो काम के घंटे या दिन बढाकर समस्या का कोई प्रभावी समाधान नही किया जा सकता है। इसके लिए कोई ऐसा रास्ता तलाश करना होगा जिससे उनकी वास्तविक आय को बढाया जा सके। ज्यादा 'उपयुक्त रोजगार' के द्वारा यह प्रयोजन तभी पूरा किया जा सकता है जब इसका अर्थ अधिक उत्पादनशील रोजगार हो या फिर इसे केवल काम के पुर्नवितरण का साधन माना जाये और उत्पादनशीलता के साथ इसे बहुत अधिक न जोडा जाये। मोटे तौर पर यही बात है जो इस विशय सदर्भ म मुझे कहनी है।

सावजनिक निर्माण कार्यों का एक अलग महत्त्व है और गरीबी दूर करने के लिए निम्नतम निर्वाह स्तर का जो विचार ऊपर सुझाया गया है वह कहाँ तक उपयुक्त है, यह एक अलग सवाल है। क्या हर आदमी को निर्दिष्ट मात्रा मे निम्नतम कैलोरी उपलब्ध करा देना ही काफी है? अगर स्थानीय रूप से उपलब्ध मजदूरो और भवन निर्माण सामग्रियो को लेकर पक्के मकान बनाने की कोई कम खर्चीली विधि निकाली जा सके और उसे व्यवहार मे लाया जा सके, तो क्या निम्नतम निर्वाह स्तर के एक अग के रूप में आवास-सबधी भी कुछ मापदड लागू करना सभव नही होगा? मकान को आम तौर पर इतनी बडी जरूरत समझा जाता है कि गरीब आदमियों को भी कुछ अधिक बचत करने के लिए सहमत किया जा सकता है बशर्ते कि उनकी निम्नतम आवश्यकताएँ समुचित रूप से कम लागत पर पूरी की जा सकें। अलावा इसके, वेहतर मकानो की व्यवस्था करने के लिए बनायी गयी योजनाओ को बडी आसानी से सार्वजनिक निर्माण कार्यों मे सम्मिलित किया जा सकता है। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि वाछनीय निम्नतम निर्वाह स्तर के उपादानो पर गभीरतापूवक विचार किया जाये और यह देखा जाये कि उन्हे उपलब्ध कराने वाली योजनाओ को किस हद तक विकास प्रयत्नो का अभिन्न अग बनाया जा सकता है।

अब अगर यह मान लेते हैं कि गरीबी की समस्या से जूझने के लिए इस समय उपलब्ध प्रमुख साधन सावजनिक निर्माण कार्यों के माध्यम से अधिक रोजगार की व्यवस्था करना ही है, तो मापदडो के

सवाल पर सिर्फ इतना विचार करने की जरूरत है कि उसका संबध उन कार्यो से मिलने वाली मजदूरी की दर से है। व्यवहार मे, पसंदगी के अवसर इस मामले म कम ही रहेगे। इसलिए निम्नतम मजदूरी के आस-पास किसी दर पर काम करने के अधिकार को स्वीकार किया जा सकता है और तब आदमी कार्यक्रम को सगठित करने की ओर ध्यान दे सकता है जिसमे यह लक्ष्य रहे कि इस तरह के कामो के लिए अपने-आपको प्रस्तुत करने वाले लोगो से कैसे अधिक-से अधिक उत्पादनशील काम कराया जाये। दूसरे शब्दो मे, हमारी चिंता सिर्फ इतनी होनी चाहिए कि हर क्षेत्र मे विद्यमान निम्नतम मजदूरी के आसपास दर पर मजदूर मिलते रहे और हम इन मजदूरो की उपलब्धि के पैमाने को गरीबी का अनपढ सूचकाक मान लें।

'नेशनल सैम्पुल सर्वे' असल मे इस तरह के आंकडे इकट्ठे करता रहा है कि कितने लोग रोजगार की तलाश मे थे और कितनो को वह नही मिला, साथ-ही साथ यह भी कि कितने लोग सक्रिय रूप से काम की तलाश मे नही थे लेकिन अगर उन्हे अतिरिक्त रोजगार मिलता तो वे उसे स्वीकार करने के लिए तैयार थे। ये आंकडे कहाँ तक निर्भर-योग्य हैं, निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। लेकिन साठवें दशक के आरभ मे इकट्ठे किये गये इस प्रकार के आंकडो से पता चलता है कि देहाती क्षेत्र मे लगभग ४ से ५ प्रतिशत मजदूर औसतन पूरी तरह से बेरोजगार थे। जिन लोगो के पास बहुत मामूली रोजगार था और इसलिए जो अतिरिक्त काम की तलाश मे थे उनकी सख्या भी कुल मजदूरो के ४ प्रतिशत के बराबर थी। इस प्रकार जो लोग अतिरिक्त रोजगार की तलाश मे थे उनकी सख्या उस समय भी देहाती क्षेत्र के कुल मजदूरो के ८ से ६ प्रतिशत से कम नही थी। अगर रोजगार तथा अर्ध-रोजगार की दर आज भी लगभग उतनी ही मानी जाये जितनी उस समय थी तो अब जिस तरह के सार्वजनिक निर्माण कार्यों का प्रस्ताव किया जा रहा है उनमे लगभग १.३ करोड से लेकर १.६ करोड मजदूरो को नियोजित करने के लिए हमे तैयार रहना चाहिए। और अगर बेरोजगारी की दर इस बीच बढ़ गयी है, जैसाकि सभव है, तो निस्सदेह और अधिक लोगों के लिए रोजगार की व्यवस्था करनी होगी।

असल में, हालांकि प्रोफेसर दाडेकर ने अपनी कसौटी पर ४० प्रतिशत से अधिक देहाती जनसख्या को गरीबी की सीमा-रेखा से नीचे बताया था, उनका प्रस्ताव यह था कि १० प्रतिशत लोगो को, जो सबसे ज्यादा गरीब हैं, 'सामाजिक सहायता' के भरोसे छोडा जा सकता है। इतना ही नही, उनका खयाल था कि "आज खेती मे जितने लोग अर्ध-रोजगार की स्थिति मे हैं उनमे से हरेक को सार्वजनिक निर्माण कार्यों मे नही लगाना पडेगा, कुछ लोगो के लिए ही पूरे रोजगार की व्यवस्था करनी होगी ताकि बचे हुए लोगो को खेती मे पूर्ण रोजगार मिल सके।"

अगर हम हर मामले मे लगाये गये अनुमानो के विस्तार मे न जायें, तो सार्वजनिक निर्माण कार्यों मे कुल जितने लोगो को रोजगार देने की जरूरत होगी उनकी सख्या मे, चाहे प्रोफेसर दाडेकर द्वारा सुझाये गये तरीके से देखें और चाहे सीधे-सीधे यह जानकारी हासिल करके कि कितने लोग मजदूरी की वर्तमान दरो पर अतिरिक्त काम करने के लिए तैयार हैं, कोई लबा चौडा फर्क नही होना है। जो सवाल ज्यादा महत्त्व-पूर्ण है वह यह कि इस तरह के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए आव-श्यक ससाधन किस सीमा तक जुटाये जा सकते हैं। उसका लक्ष्य चाहे तो निम्नतम जीवन-स्तर की व्यवस्था करना बताया जाये, और चाहे पूर्ण रोजगार के अवसर प्रदान करना बताया जाये, उसकी व्यवहार्यता निश्चित रूप से इस बात पर निर्भर करेगी कि ससाधन जुटाने का काम कितने प्रभावशाली ढग से किया जाता है। और यही वह बिंदु है जहाँ आकर आयोजन के प्रति हमारा पूरा दृष्टिकोण और अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए अपनाये गये साधन प्रासगिक हो जाते हैं।

प्रोफेसर दाडेकर ने जिस पैमाने पर सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम की कल्पना की थी उसके लिए उन्होंने अनुमान लगाया था कि अकेले मजदूरी के रूप मे ही प्रतिवर्ष लगभग ८०० करोड रु० खर्च करने होंगे और यह भी इस धारणा के आधार पर था कि दैनिक मजदूरी की दर औसतन मर्दों के लिए रु० २.४० पैसे और स्त्रियो के लिए रु० १.६० पैसे से अधिक नहीं होगी, लेकिन जितने लोगों को भी इस कार्यक्रम के अतर्गत लिया जायेगा उन्हे वर्ष में ३०० दिन के लिए पूर्णकालिक रोज-गार देना होगा। यह वास्तव में सभव है कि अगर मजदूरी की दर

उपर्युक्त सीमा के अदर ही रहती है तो उपलब्ध होने वाले मजदूरो की सख्या अनुमान से कही कम रहेगी। और अगर इनकी सख्या अधिक भी रहती है तो यह कार्यकारी वर्ष के कुछ हिस्से के लिए ही होगी। इन सब मामलो म दरअसल हमारा ज्ञान और अनुभव पर्याप्त नही है जिसके आधार पर कि ज्यादा सही अनुमान लगाने की कोशिश की जा सके। इसलिए जो अनुमान ऊपर दिये गये हैं उनसे शुरुआत की जा सकती है और उसमे इस प्रकार के निर्माण कार्यों को चलाने के लिए अपेक्षित सामग्रिया की सभावित लागत जोडी जा सकती है। इस प्रकार कुल लागत लगभग १००० करोड रु० से लेकर १२०० करोड रु० प्रति वर्ष तक हो जायेगी। स्पष्ट ही योजना आयोग भी अब कुछ इसी प्रकार के अनुमानो को आधार बनाकर चल रहा है, क्योकि पांचवें योजना काल मे 'रोजगार कायक्रमो' के लिए प्रस्तावित व्यय की राशि प्रारभिक तौर पर ७००० करोड रु० से ८००० करोड रु० तक रखी गयी है।

इस बात मे अधिक सदेह नही है कि अगर इस तरह का निर्माण कायक्रम कल्पनाशील ढग से तैयार किया जाता है और उसे यथासभव दक्षता और नमनशीलता के साथ कार्यान्वित किया जाता है, तो ग्रामीण क्षेत्र मे गरीबी और बेरोजगारी पर उसका उल्लेखनीय प्रभाव पडेगा। कुछ राज्यो मे फिलहाल कई तरह के प्रयोग किये जा रहे हैं। हालांकि तथाकथित रोजगार कार्यक्रमो के लिए निर्धारित राशियो का काफी बडा हिस्सा अधिकाशतया प्रशासनिक कारणो से व्यर्थ जा रहा है, लेकिन साथ ही जो लोग इन कार्यक्रमो को बनाने और कार्यान्वित करने की पद्धतियो को सुधारने का प्रयत्न करने के लिए तत्पर हैं वे उपयोगी अनुभव भी प्राप्त कर रहे हैं।

उदाहरण के लिए, केरल के एक जिले मे उस क्षेत्र म स्थापित एक विकास बैंक की सहायता से बेकार मजदूरो को जुटाने और उन्हे उत्पादनशील योजनाओ मे काम पर लगाने के लिए एक अग्रगामी परियोजना पर काम किया जा रहा है। योजनाएँ विभिन्न पचायतो द्वारा तैयार की गयी हैं, लेकिन उनकी स्वीकृति कुछ निश्चित सिद्धातो के आधार पर बैंक से लेनी होती है। यह स्वीकृति मिलने के बाद उस क्षेत्र मे जो लोग अदक्ष मजदूरो के लिए प्रचलित निम्नतम मजदूरी पर काम करने के

लिए तैयार हो उन्हे रोजगार दिया जाता है, लेकिन यह शर्त रखी जाती है कि लगभग दो-तिहाई से लेकर तीन-चौथाई मजदूरी ही तत्काल नकद के रूप मे दी जायेगी, और बाकी एक-चौथाई बैंक मे उनके नाम से खोले गये तीन-वर्षीय स्थिर जमा खाते मे जमा कर दी जायेगी, जिस पर उन्हे साढे बारह प्रतिशत वार्षिक ब्याज मिलेगा। चूँकि इन योजनाओ मे भर्ती होने वाले मजदूर सिर्फ उन्ही दिनो मे काम करने के लिए स्वतन्त्र हैं जब वे अन्यथा खाली रहते हैं, इसलिए आस्थगित भुगतान की इस पद्धति का सबधित क्षेत्र मे मजदूरी की दरो पर कोई बुरा प्रभाव नही पडेगा। जिन लोगो को इन योजनाओ से अधिक स्थायी लाभ होता है उन्हे इसी प्रकार बैंक को किस्तो मे भुगतान करना होगा, जिससे बैंक इन योजनाओ पर होने वाला पूरा खर्च अगर नही तो उसका एक बडा हिस्सा अवश्य प्राप्त कर सकें।

अभी इस प्रयोग का आरभिक काल है और कहा नही जा सकता कि इसम कौन-सी कठिनाइयाँ आयेंगी और उन्हें किस प्रकार हल किया जा सकता है। इस परियोजना की मूलभूत बातो पर सबधित लोगो की (जिनमे भर्ती होने वाले सभावित मजदूर भी शामिल हैं) प्रतिक्रिया काफी अनुकूल प्रतीत होती है जिससे काफी हद तक आशान्वित हुआ जा सकता है। कुछ लोगो को यह भी दिखायी देने लगा है कि इस परियोजना स स्थानीय जनसख्या के लगभग सभी वर्गों को लाभ पहुँचेगा, किंतु यह लाभ बराबर मिलता रहे इसके लिए शायद यह जरूरी होगा कि अनुबधित शर्तों को पूरा किया जाये।

अब सवाल यह रह जाता है कि गरीबी और बेरोजगारी का मुकाबला करने के लिए कितने बडे पैमाने पर इस तरह के कार्यक्रम बनाये जाते हैं और उन्ह कार्यान्वित करने के लिए कितना ठोस प्रयत्न किया जाता है। यह ठीक है कि ऊपर उल्लिखित आस्थगित भुगतान की प्रणाली से उपलब्ध ससाधनों मे कुछ सीमा तक वृद्धि की जा सकती है, लेकिन उन सभावित बाधाओ की उपेक्षा नही की जा सकती, जो कुछ विशेष प्रकार के ससाधनो की अनुपलब्धि और एक निर्दिष्ट ढाँचे के अतर्गत उनके उपयोग की कठिनाइयो से उपस्थित होगी।

इस मामले मे हाल ही योजना आयोग ने जो दृष्टिकोण अपनाया है

वह भयकर रूप से अवास्तविक प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए आयोग ने सुझाव दिया है कि पाँचवी योजना का कुल परिव्यय चौथी योजना के परिव्यय से लगभग दुगुना होगा। इसका मतलब यह है कि १९७०-७१ के मूल्यो के आधार पर यह परिव्यय ५०,००० करोड रु० के आसपास बैठगा। मान लीजिए कि हम उत्पादन की वृद्धि दर और अथव्यवस्था मे आतरिक बचत की दर के बारे मे समुचित रूप से आशावादी अनुमान लगा लेते हैं यानी यह मान लेते हैं कि १९७३ ७४ के मध्यावधि मूल्याकन म निर्धारित लक्ष्य पूरे कर लिये जायेंगे (जो बहुत ही अनहोनी बात है), कि पाँचवी योजना के दौरान ६ प्रतिशत प्रति वष की वृद्धि दर प्राप्त की जा सकेगी (जो प्राप्त की जा सकती है लेकिन वतमान रुख को देखते हुए निश्चित रूप से सभव प्रतीत नहीं होती है), और कि १९७३ ७४ से लेकर १९७८ ७९ के बीच आतरिक बचत शुद्ध आतरिक उत्पादन के ११ प्रतिशत से बढ़ाकर १६ प्रतिशत की जा सकेगी (जिसकी प्राप्ति दूसर सार लक्ष्यो की तुलना मे सबसे ज्यादा कठिन सिद्ध होगी)। पाँचवी योजना म विनियोजन से उपलब्ध होनेवाले कुल ससाधन लगभग ३५,००० करोड रु० स अधिक नहीं होग, क्योकि योजना परिव्यय का एक बडा हिस्सा स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य एसी ही सेवाओ पर खच हो जायगा जिसका कोई उत्पादनशील उपयोग नहीं होगा।

असल म न तो चौथी योजना क दौरान अब तक प्राप्त की गयी उत्पादन वृद्धि की दर ही बहुत आशाजनक रही है और न सावजनिक तथा निजी क्षत्रो म होनेवाली बचत की दर से भविष्य के लिए कोई आश्वासन मिलता है।

यह सही है कि निकट अतीत म कुछ एसी घटनाएँ हुई हैं जिनसे भविष्य के प्रति पहले की तुलना म अब अधिक आशाजनक दृष्टिकोण अपनाने का औचित्य समझ म आता है। तथाकथित हरित क्रांति निश्चित रूप स उन घटनाओं म स एक है हालांकि अब तक उल्लेखनीय प्रगति केवल गेहूँ और कुछ दूसरी फसलों के मामल में ही की जा सकी है, और कुल मिलाकर कृषि उत्पादन की वृद्धि-दर में कोई स्पष्ट बढ़ोतरी अभी तक नहीं हुई है। पिछले दो सालों में इस्पात के उत्पादन में समुचित

आधार नही बनाया जा सकता कि ससाधनो की उपलब्धि मे भयकर बाधाएँ आयेंगी। अगर यह सही है, और अगर गरीबी का मुकाबला करने के लिए विकास प्रक्रिया के एक अभिन्न अग के रूप मे कोई प्रभावी कार्यक्रम बनाना है तो उपलब्ध ससाधनो का बहुत सावधानी के साथ नरक्षण और उपयोग करना आवश्यक होगा जिससे अर्थव्यवस्था की पर्याप्त रूप से ऊँची वृद्धि-दर कायम रखी जा सके और साथ ही विदेशी सहायता पर निर्भरता भी कम की जा सके।

['योजना' से साभार अनूदित]

यह लेख डा० राज के महाराष्ट्र चेम्बर ऑफ कॉमर्स, बम्बई, के तत्वावधान में आयोजित वालचंद स्मृति व्याख्यान के अतर्गत २४ जुलाई, १९७२ को पढ़े गये निबंध पर आधारित है।

हिंदी-साहित्य और उसका वैशिष्ट्य

डॉ० श्यामसुदर दास

भौगोलिक कारणा से अथवा जलवायु के फलस्वरूप या अन्य किसी कारण स, प्रत्येक देश अथवा जाति के साहित्य मे कुछ न-कुछ विशेपता होती है। जब हम यूनानी साहित्य, अग्रेजी साहित्य अथवा भारतीय साहित्य का नाम लेत हैं और उनके सबध मे विचार करते हैं तो उनम स्पष्ट रीति से कुछ ऐसी विशेपताएँ दिखायी देती हैं जिनके कारण उनके रूप कुछ भिन्न जान पडते हैं तथा जिनके फलस्वरूप उनके स्वतत्र अस्तित्व की सार्थक्ता भी समझ मे आ जाती है। यह सभव है कि कोई विशेष कलाकार किसी विशेप समय और विशेष परिस्थितियो से प्रभावान्वित होकर विदेशीय या विजातीय कला का अनुकरण करे तथा उनके विचारो की आँख मूँदकर नकल करना आरभ कर दे, परतु साहित्य के साधारण विकास मे जातीय भावा तथा विचारो की छाप किसी-न-किसी रूप मे अवश्य रहती है, और इसका एक कारण है।

प्रत्येक सभ्य तथा स्वतत्र देश का अपना स्वतत्र साहित्य तथा अपनी स्वतत्र कला होती है। भारतवर्ष मे भी साहित्य तथा अन्यान्य कलाओ का स्वतत्र विकास हुआ और उनकी अपनी विशेपताएँ भी हुई। भारतीय साहित्य तथा कला की विशेपताओ पर साधारण दृष्टि से विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन पर भारतीय आध्यात्मिक तथा लौकिक विचारो की गहरी छापें हैं। हम लोग प्राचीनकाल से आदर्शवादी रहे हैं। क्षणिक और परिवर्तनशील वर्तमान, चाहे वह कितना ही समृद्ध क्यो न हो, हमारा अतिम लक्ष्य कभी नही रहा। उसके भीतर से होकर सदा हमारी दृष्टि भविष्य के पूण आनदमय अमर जीवन पर ही लगी रहा है। यही कारण है कि हमारे साहित्य तथा अन्य ललित कलाओ मे आदशवादिता की प्रचुरता देख पडती है। यह कोई आश्चय की बात नही है, क्योकि साहित्य और कलाएँ हमारे भावो तथा विचारो का प्रतिबिंब मात्र हैं। साराश यह कि जहाँ ससार की उन्नत जातियो की कुछ अपनी विशेपताएँ होती हैं, वहाँ उनके साहित्य आदि पर भी उन विशेपताओ का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पडे बिना नही रह सकता।

इन्हीं साहित्यिक विशेपताओ के कारण 'जातीय साहित्य' का व्यक्तित्व निर्धारित होता है।

हम यह जानत हैं कि हिंदी-साहित्य का वशगत सवध प्राचीन भारतीय साहित्यो से है, क्योकि सस्कृत तथा प्राकृत आदि की विकसित परपरा ही हिंदी कहलायी है। जिस प्रकार पुत्री अपनी माता के रूप की ही नही, गुण की भी उत्तराधिकारिणी होती है, उसी प्रकार हिंदी ने भी सस्कृत, पालि तथा प्राकृत आदि साहित्यो मे अभिव्यजित आय जाति की स्थायी चित्तवृत्तियो और उसके विचारो की परपरागत सपत्ति प्राप्त की है। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य मे जातीय साहित्य कहलाने की पूरी याग्यता है।

हिंदी की विशपताएँ

समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बडी विशपता उसके मूल मे स्थित समन्वय की भावना है। उसकी यह विशपता इतनी प्रमुख तथा मार्मिक है कि केवल इसी के बल पर ससार के अन्य साहित्यो के सामने वह अपनी मौलिकता की पताका फहरा सकती है और अपने स्वतत्र अस्तित्व की साथकता प्रमाणित कर सकती है। जिस प्रकार धार्मिक क्षत्र मे भारत के ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के समन्वय की प्रसिद्धि है तथा जिस प्रकार वण एव आश्रम-चतुष्य के निरूपण द्वारा इस देश मे सामाजिक समन्वय का सफल प्रयास हुआ है, ठीक उसी प्रकार साहित्य तथा अन्यान्य कलाओ मे भी भारतीय प्रवृत्ति समन्वय की ओर रही है। साहित्यिक समन्वय से हमारा तात्पर्य सुख-दु ख, उत्थान-पतन हर्ष विपाद आदि विरोधी तथा विपरीत भावो के समीकरण तथा एक अलौकिक आनद मे उनक विलीन होने से है। साहित्य के किसी अग का लेकर देखिए, सवत्र यही समन्वय दिखायी देगा। भारतीय नाटको मे सुख और दु ख के प्रवल घात प्रतिघात दिखाये गये हैं पर सबका अवसान आनद मे ही किया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि भारतीयों का ध्येय सदा से जीवन का आदर्श स्वरूप उपस्थित करके उसका उत्कर्ष बढ़ाने और उसे उन्नत बनाने का रहा है। वर्तमान स्थिति से उसका इतना सबध नहीं है जितना भविष्य की सभाव्य उन्नति से है। हमारे यहाँ यूरोपीय ढग के दुखात नाटक इसीलिए नही दीख पडते। यदि आजकल दो-चार ऐसे

नाटक दिखायी भी पडने लगे हैं तो वे भारतीय आदर्श से दूर और यूरोपीय आदर्श के अनुकरण मात्र है। कविता के क्षेत्र मे ही देखिए। यद्यपि विदेशी शासन से पीडित तथा अनेक क्लेशो से सतप्त देश निराशा की परम सीमा तक पहुँच चुका था, और उसके सभी अवलबो की इतिश्री हो चुकी थी, पर फिर भी भारतीयता के सच्चे प्रतिनिधि तत्कालीन महाकवि तुलसीदास अपने विकार-रहित हृदय से समस्त जाति को आश्वासन देते हैं—

> भरे भाग अनुराग लोग कहैं रामअवध चितवन चितई है।
> विनती सुनि सानद हेरि हँसि करुनावारि भूमि भिजई है॥
> रामराज भयो काज सगुन सुभ राजाराम जगत विजई है।
> समरथ बडो सुजान सुसाहब सुकृत-सेन हारत जितई है॥

आनद की कितनी महान् भावना है। चित्त किसी अनुभूत ऐश्वय की कल्पना मे मानो नाच उठता है। हिंदी-साहित्य के विकास का समस्त युग विदेशीय तथा विजातीय शासन का युग था। इस कारण भारतीय जनता के लिए वह निराशा तथा सताप का युग था, परतु फिर भी साहित्यिक समन्वयो का भी अनादर नही हुआ। आधुनिक युग के हिंदी कवियो मे यद्यपि पश्चिमी आदर्शों की छाप पडने लगी है और लक्षणो के देखत हुए इस छाप के अधिकाधिक गहरी हो जाने की सभावना हो रही है, परतु जातीय साहित्य की धारा अक्षुण्ण रखने वाले कुछ कवि अब भी वर्तमान हैं।

यदि हम थोडा-सा विचार करें तो उपर्युक्त साहित्यिक समन्वय का रहस्य हमारी समझ मे आ सकता है। जब हम थोडी देर के लिए साहित्य को छोडकर भारतीय कलाओ का विश्लेषण करते हैं तब उनमे भी साहित्य की ही भाँति समन्वय की छाप दिखायी पडती है। सारनाथ की बुद्ध भगवान् की मूर्ति मे ही समन्वय की यह भावना निहित है। बुद्ध की वह मूर्ति उस समय की है जब वह छ महीने की कठिन साधना के उपरात अस्थिपजर मात्र ही रहे होगे, परतु मूर्ति मे कही कृशता का पता नहीं, उसके चारों ओर एक स्वर्गीय आभा नृत्य कर रही है।

इस प्रकार साहित्य तथा कलाओ मे भी एक प्रकार का आदर्शात्मक साम्य देखकर उसका रहस्य जानने की इच्छा और भी प्रबल हो जाती

है। हमारे दर्शनशास्त्र हमारी इस जिज्ञासा का समाधान कर देते हैं। भारतीय दर्शनो के अनुसार परमात्मा तथा जीवात्मा मे कुछ भी अतर नही, दोनो एक ही है, दोनो सत्य हैं, चेतन हैं तथा आनदस्वरूप हैं। बधन मायाजन्य है। माया अज्ञान है, भेद उत्पन्न करने वाली वस्तु है। जीवात्मा मायाजन्य अज्ञान को दूर कर अपना सच्चा स्वरूप पहचानता है और आनदमय परमात्मा मे लीन हो जाता है। आनद म विलीन हो जाना ही मानव-जीवन का चरम उद्देश्य है। जब हम इस दार्शनिक सिद्धात का ध्यान रखते हुए उपर्युक्त समन्वय पर विचार करते हैं, तब उसका रहस्य हमारी समझ मे आ जाता है तथा उस विषय मे और कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नही रह जाती।

भारतीय साहित्य की दूसरी बडी विशेषता उसमे धार्मिक भावों की प्रचुरता है। हमारे यहाँ धर्म की बडी व्यापक व्याख्या की गयी है और जीवन के अनेक क्षेत्रो मे उसको स्थान दिया गया है। धर्म मे धारण करने की शक्ति है अत केवल अध्यात्म पक्ष मे ही नही, लौकिक आचारो विचारों तथा राजनीति तक मे उसका नियत्रण स्वीकार किया गया है। मनुष्य के वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को ध्यान म रखते हुए अनेक सामान्य तथा विशेष धर्मों का नियत्रण स्वीकार किया गया है। वेदो के एकेश्वर-वाद, उपनिषदो के ब्रह्मवाद तथा पुराणो के अवतारवाद और बहुदेववाद की प्रतिष्ठा जन-समाज मे हुई है। और तदनुसार हमारा धार्मिक दृष्टि-कोण भी अधिकाधिक विस्तृत तथा व्यापक होता गया है। हमारे साहित्य पर धर्म की इस अतिशयता का प्रभाव दो प्रधान रूपो म पडा। आध्या-त्मिकता की अधिकता होने के कारण हमारे साहित्य म एक ओर तो पवित्र भावनाओ और साधारण लौकिक भावो तथा विचारो का विस्तार नहीं हुआ। प्राचीन वैदिक साहित्य से लेकर हिंदी के वैष्णव साहित्य तक म हम यही बात पाते हैं। सामवेद की मनोहारिणी तथा मृदु गभीर ऋचाओं से लेकर सूर तथा मीरा आदि की सरल रचनाओ तक म सर्वत्र पराक्ष भावो की अधिकता तथा लौकिक विचारो की न्यूनता देखने म आती है।

उपर्युक्त मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि साहित्य म उच्च विचार तथा पवित्र भावनाएँ तो प्रचुरता म भर गयी, परतु उसम लौकिक जीवन की अनेकरूपता का प्रदर्शन न हो सका। हमारी कल्पना अध्यात्म

पक्ष मे तो निस्सीम तक पहुंच गयी; परंतु ऐहिक जीवन का चित्र उपस्थित करने से वह कुछ कुंठित-सी हो गयी। हिंदी की चरम उन्नति का काल भक्ति-काव्य का काल है, जिसमे उसके साहित्य के साथ हमारे जातीय साहित्य के लक्षणों का सामंजस्य स्थापित हो जाता है।

साहित्य की देशगत विशेपताएँ

यद्यपि भारतीय साहित्य की कितनी ही अन्य जातिगत विशेपताएँ हैं परंतु हम उसकी दो प्रधान विशेपताओं के उपर्युक्त विवेचन से ही संतोष करके, उसकी दो-एक देशगत विशेपताओं का वर्णन करके यह प्रसंग समाप्त करेंगे। प्रत्येक देश के जलवायु अथवा भौगोलिक स्थिति का प्रभाव उस देश के साहित्य पर अवश्य पड़ता है और यह प्रभाव बहुत-कुछ स्थायी भी होता है। संसार के सब देश एक ही प्रकार के नहीं होते। जलवायु तथा गर्मी-सर्दी के साधारण विभेदों के अतिरिक्त उनके प्राकृतिक दृश्यों तथा उर्वरता आदि में भी अंतर होता है। यदि पृथ्वी पर अरब तथा सहारा जैसी दीर्घकाय मरुभूमियां हैं तो साइबेरिया तथा रूस के विस्तृत मैदान भी हैं। यदि यहाँ इंग्लैंड तथा आयरलैंड जैसे जलावृत द्वीप हैं तो चीन जैसा विस्तृत भूखंड भी है। इन विभिन्न भौगोलिक स्थितियों का उन देशों के साहित्य से संबंध होता है, इसी को हम साहित्य की देशगत विशेपता कहते हैं।

हिंदी की देशगत विशेपताएँ

भारत की शस्यश्यामला भूमि में जो निसर्ग-सिद्ध सुपमा है, उससे भारतीय कवियों का चिरकाल से अनुराग रहा है। यों तो प्रकृति की साधारण वस्तुएँ भी मनुष्य-मात्र के लिए आकर्षक होती हैं, परंतु उसकी सुंदरतम विभूतियों में मानव-मनोवृत्तियां विशेप प्रकार से रमती हैं। अरब के कवि मरुस्थल में बहते हुए किसी साधारण-से झरने अथवा ताड़ के लंबे-लंबे पेड़ों में सौंदर्य का अनुभव कर लेते हैं, तथा ऊँटों की चाल में ही सुंदरता की कल्पना कर लेते हैं, परंतु जिन्होंने भारत की हिमाच्छादित शैलमाला पर संध्या की सुनहली किरणों की सुपमा देखी है, अथवा जिन्हें घनी अमराइयों की छाया में कल-कल ध्वनि से बहती

निर्झरिणी तथा उसकी समीपवर्तिनी लताओ की वसतश्री देखने का अवसर मिला है, साथ ही जो यहाँ के विशालकाय हाथियो की मतवाली चाल देख चुके हैं उन्ह अरब की उपर्युक्त वस्तुओ मे सौंदर्य तो क्या, हाँ उलट नीरसता, शुष्कता और भद्दापन ही मिलेगा। भारतीय कवियो को प्रकृति की सुरम्य गोद मे क्रीडा करने का सौभाग्य प्राप्त है। वे हरे-भरे उपवनो मे तथा सुदर जलाशयो के तटो पर विचरण करते हुए प्रकृति के नाना सश्लिष्ट तथा सजीव चित्र जितनी मार्मिकता, उत्तमता तथा अधिकता से अकित कर सकते हैं, एव उपमा-उत्प्रेक्षाओ के लिए जैसी सुदर वस्तुओ का उपयोग कर सकते हैं, वैसा रूखे-सूखे देशो के निवासी कवि नही कर सकते। यह भारतभूमि की ही विशेषता है कि यहाँ के कवियो का प्रकृति-वर्णन तथा तत्सभूत सौंदयज्ञान उच्चकोटि का होता है।

प्रकृति के रम्य रूपो से तल्लीनता की जो अनुभूति होती है, उसका उपयोग कविगण कभी-कभी रहस्यमयी भावनाओ के सचार मे भी करते हैं। यह अखड भूमडल तथा असख्य ग्रह-उपग्रह, हिम-राशि अथवा जल, वायु, अग्नि, आकाश कितने रहस्यमय तथा अज्ञेय हैं। इनकी सृष्टि सचालन आदि के सबध मे दार्शनिको अथवा वैज्ञानिको ने जिन-जिन तत्त्वो का निरूपण किया है वे ज्ञानगम्य अथवा बुद्धिगम्य होन के कारण शुष्क तथा नीरस हैं। काव्य जगत् मे इनकी शुष्कता तथा नीरसता से काम नही चल सकता, अत कविगण बुद्धिवाद के चक्कर मे न पडकर व्यक्त प्रकृति के नाना रूपो मे एक अव्यक्त किंतु सजीव सत्ता का साक्षात्कार करते तथा उसस भावमग्न होते हैं। इसे हम प्रकृति सबधी रहस्यवाद कह सकते हैं, और व्यापक रहस्यवाद का एक अग मान सकते हैं। प्रकृति के विविध रूपो मे विविध भावनाओ के उद्रेक की क्षमता होती है, परतु रहस्यवादी कवियो को अधिकतर उसके मधुर रूप से प्रयोजन होता है, क्योकि भावावेश के लिए प्रकृति के मनोहर रूपो की जितनी उपयोगिता होती है, उतनी दूसरे रूपो की नही होती। यद्यपि इस देश की उत्तरकालीन विचारधारा के कारण हिंदी मे बहुत थोडे रहस्यवादी कवि हुए हैं, परतु कुछ प्रेमप्रधान कवियो ने भारतीय मनोरम दृश्यो की सहायता से अपनी रहस्यमयी उक्तियो को अत्यधिक सरस तथा हृदयग्राही बना दिया है। यह भी हमारे साहित्य की एक देशगत विशेषता है।

राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रीय एकता

लक्ष्मीनारायण सुधांशु

हिंदी विरोधी लोगो की हिंदी को एकमात्र राष्ट्रभाषा मानने के विरुद्ध मुख्य दलील यह है कि हिंदी से राष्ट्रीय एकता कमजोर पड जायेगी। उनकी विचार पद्धति मे भारत मे भाषागत एकता अंग्रेजी के माध्यम से है और अंग्रेजी के हटाने से भारत की राष्ट्रीय क्षति होगी। यदि हिंदी-विरोधी लोगो का यह तर्क सही है तो भारत जैसे बहुभाषी देश के लिए, जिसमे केवल भाषागत अनेकता ही नही है, अन्यान्य प्रकार की भी अनेकताएँ हैं, यह एक गभीर समस्या है।

यदि हम शात चित्त से इस पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हिंदी के राष्ट्र भाषा बन जाने से देश पर जो पहला प्रभाव पडेगा, वह उसकी एकता पर नही, उसकी व्यवस्था पर और वह भी प्रशासनिक व्यवस्था पर पडेगा। इसी प्रकार यह भी प्रमाणित हो जाता है कि अब तक जो तथाकथित भाषागत एकता हमारे देश म रही है, वह सचमुच एकता नही, केवल प्रशासन विषयक व्यवस्था अथवा सुविधा है जिसे अंग्रजी राज्य ने, अंग्रेजी भाषा भाषी प्रशासको ने अपनी सुविधा के लिए इस पर लाद दिया था। हमारे देश की एकता नही, अंग्रेज शासको की प्रशासनिक एकता रही है।

राष्ट्रीय एकता के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष होते हैं—सांस्कृतिक और भावात्मक। भाषागत एकता सांस्कृतिक पक्ष के अतर्गत आती है। साथ ही भावात्मक एकता म भी भाषा का प्रबल प्रभाव रहता है। किसी देश की संस्कृति के माध्यम हैं—धर्म, कला, दर्शन, साहित्य और भाषा। धार्मिक मान्यताएँ, कलात्मक अनुभूतियाँ, दार्शनिक प्रतिभा, साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और इन सबकी अभिव्यक्ति के माध्यम आदि का सम्यक स्वरूप उस देश की संस्कृति का सूचक है। जब तक इन माध्यमो मे एकता नहीं होगी, उस संस्कृति मे भी एकता का विकास नही हो सकेगा। भारत मे सौभाग्य स इन माध्यमों में यथेष्ट एकता रही है। केवल भाषा की दृष्टि से पिछली कुछ शताब्दियो स राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया में कुछ पड रही है। किंतु अन्य माध्यम, विशेष रूप से धार्मिक और दार्श

इतने प्रबल हैं कि भाषागत व्यवधान या अधिक प्रभाव नही हो सका। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि प्राकृत और अपभ्र श भाषाओं ने बहुत दूर तक उत्तर भारत म भाषा-वैभिन्न्य को प्राय नियत्रित रखा। लेखन-काय सस्कृत या तत्कालीन प्राकृत और अपभ्र श म होत रह। तक्षशिला स बगाल तक बोली जाने वाली प्राकृत भाषाएँ एक-दूसरे से इतनी भिन्न नही थी जितनी आजकल की पजाबी और बँगला। मूल आय भाषाओ से इनका इतना स्वतत्र विकास नही हो पाया था कि जनसाधारण को किसी अन्तर्क्षेत्रीय माध्यम की आवश्यकता पडती। इसके अतिरिक्त उस समय के लोगो की आवश्यकताएँ भी सीमित थी। बौद्धिक अभिरुचियाँ या जिज्ञासाएँ बहुत अधिक नही थी। दैनिक जीवन की बातें लोग सहज ज्ञान स जान जाते थे। जिन्हे अधिक समथ और समृद्ध भाषा की आवश्यकता होती थी, वे सस्कृत का व्यवहार करते थे। एक प्रकार से सस्कृत हमारी भाषागत एकता की माध्यम थी।

भावात्मक एकता प्रत्येक देश मे अपने-अपने ढग की होती है। कभी कभी यह इतनी विचित्र भी होती है कि आज के वैज्ञानिक युग मे उसे भावुकता या जोश भी कहा जा सकता है, जैसे भारत म अग्रेजो के अधिकार के विरुद्ध राष्ट्रीय भावना। इस राष्ट्रीय भावना ने आधी शताब्दी तक भावात्मक एकता का काम किया। आज चीन के आक्रमण ने भी देश मे भावात्मक एकता की यही स्थिति उत्पन्न कर दी है। आवश्यकता के अनुसार प्रत्यक देश मे ऐसी एकता आशातीत तीव्रता प्राप्त कर लेती है। भारत भी इसका अपवाद नही है। इस एकता मे सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है इसकी भावना की व्यापकता। जब तक देश का बच्चा-बच्चा राष्ट्रीय भावना के साथ तादात्म्य स्थापित नही कर सकता तब तक यह एकता अपूर्ण ही मानी जायेगी। सास्कृतिक एकता कुछ अर्थों मे एक वर्ग विशष या केवल वयस्क नागरिको तक ही सीमित रह सकती है। उतने मे ही वह पूर्ण प्रभावशालिनी है। परतु भावात्मक एकता राष्ट्रनिर्माण का अद्भुत एव सुदृढ तत्त्व है। उसका सबध इतिहास के हर अध्याय से होता है।

आधुनिक युग मे स्थिति क्रातिकारी रूप से बदल रही है। एक माँ से जन्मी भाषाओ के रूप बहुत भिन्न हो गये हैं। लोगो की आवश्यकताएँ,

जिज्ञासाएँ और अभिलाषाएँ भी बदल रही हैं। इसके लिए उन्हे उपयुक्त माध्यमो की आवश्यकता है। कला और दर्शन के माध्यम मे नाना प्रकार के प्रयोगो द्वारा जिस प्रकार एक सर्वग्राह्य और सर्वमान्य तत्त्व की खोज तेजी से चल रही है, वह भाषा के क्षेत्र मे भी है। एक भाषा या एकाधिक भाषा-भाषी देशो मे यह खोज अपेक्षाकृत सहज है, पर भारत जैसे बहुभाषा-भाषी और बहुलिपि वाले देश मे यह खोज बहुत कठिन है। दुर्भाग्यवश गुलामी के कारण भारत पर एक बहुत ही शक्तिशाली और आक्रामक भाषा ने अधिकार जमा लिया है। फलस्वरूप भारतवासी भावात्मक एकता की दिशा मे अपनी एक भाषा की खोज मे पथभ्रष्ट और विवेकशून्य हो गये हैं, यहाँ तक कि हमारे कुछ नेता भी राष्ट्रभाषा के महत्त्व और मूल्य को आज तक नही समझ पाये हैं। साहित्य, दर्शन और कला की व्यापकता आज के युग मे जन-जन तक पहुँच रही है। विज्ञान के व्यापक प्रभाव ने इसमे और भी योग दिया है। अतएव सास्कृतिक एकता के लिए वही भाषा ईमानदारी से काम कर सकती है, जो उस सस्कृति की सहगामिनी रही हो, उसके साथ हँसी और रोयी हो, जो देश मे किसानो के घर से लेकर ससद् भवन तक व्याप्त हो। सस्कृति और भावना का दर्पण तथा माध्यम वही भाषा हो सकती है, जिसमे वहाँ की बहू-बेटियाँ रोती और गाती हो। ऐसी भाषा वही हो सकती है, जो केवल पाठशालाओ मे ही नही पढायी जाती हो, बल्कि समाज और जीवन मे भी स्वत. विद्यमान हो। निश्चय ही भारत मे यह भाषा अग्रेजी अथवा फारसी नही हो सकती, हिंदी, तमिल या बँगला हो सकती है। भारत की राष्ट्र भाषा एक भारतीय भाषा हो, इस पर विवाद नही होना चाहिए। मतभेद केवल इस पर हो सकता है कि वह भाषा हिंदी हो या अन्य कोई भारतीय भाषा। वस्तुत. जो हिंदी का विरोध कर रहे हैं, उनको विरोध की सारी प्रेरणा अग्रेजी से मिली है, तमिल या मराठी से नही। केवल अपनी अग्रेजी-भक्ति को जाने या अनजाने छिपाने के लिए ही वे राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं। यदि हिंदी के अतिरिक्त कोई दूसरी भारतीय भाषा इस काम को करने मे समर्थ हो तो उस पर सबको सहानुभूतिपूर्वक विचार करना चाहिए। जब तक अग्रेजी हटायी नही जाती तब तक किसी भारतीय भाषा को समुचित विकास का अवसर नहीं मिल सकेगा। यदि

वे स्वय एक बार अपने अर्द्ध चेतन मन को टटोलें तो उन्हे इसकी प्रतीति हो जायेगी। ऐसे लोगो का हिंदी-विरोध कई कारणो से है—यथा राजनीतिक, प्रशासकीय, मानसिक और वैयक्तिक।

अब प्रश्न है कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा क्यो हो ? इसके समर्थन मे दो पक्षो पर विचार होना चाहिए। एक तो राष्ट्रीय एकता सबधी और दूसरा इस वैज्ञानिक और व्यावहारिक युग मे उपयोगिता सबधी। किसी देश की राष्ट्रभाषा वहाँ की उस भाषा को होना चाहिए . (१) जिसमे अधिक से अधिक देशवासियो के हृदय और मस्तिष्क को प्रभावित करने की क्षमता हो, (२) जिसमे अधिक से अधिक अतर्क्षेत्रीय तत्त्व विकसित हो, (३) जिसका स्वरूप अधिक से अधिक अतर्जातीय अर्थात् राष्ट्रीयता के निकट हो, और (४) जो सीखने तथा बोलने मे सहज हो, जिससे अन्य भाषाभाषी भी उसे सरलता से अपना सकें। हिंदी म ये सभी योग्यताएँ हैं। यह लगभग २० करोड भारतीयों की अपनी भाषा है, जो देश की लगभग ४४ प्रतिशत आबादी के बराबर है। अग्रेजी भाषा हमारे देश के ऊपर इस प्रकार लद गयी है कि वह हटाये नही हटती। सारे देश मे केवल एक प्रतिशत व्यक्तियो द्वारा समझी जाने वाली भाषा ने हमारी पराधीनतामूलक प्रवृत्ति के कारण इतना महत्त्व प्राप्त कर लिया है कि वह हमारे सिर पर भूत की तरह नाच रही है। अग्रेजी भाषा वे ही लोग बाल या समझ सकते हैं जिन्होंने अग्रेजी पढी-लिखी हो, किंतु हिंदी या किसी अन्य भारतीय भाषा के सबध मे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जिन्होने हिंदी या किसी अन्य भारतीय भाषा को पढा-लिखा नही भी है वे भी अपने-अपने क्षेत्र मे उस भाषा में बोल सकते हैं और उसे समझ सकते हैं। राष्ट्रीय एकता के विचार से भारतीय भाषा के पक्ष मे यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है।

हिंदी ही एक भारतीय भाषा है जो पाँच राज्यो की राजभाषा और एक राज्य की दो में से एक राजभाषा है। बिहार और राजस्थान, मध्य प्रदेश और हिमाचल प्रदेश आचार-व्यवहार म एक-दूसरे से कुछ भिन्नता रखते हुए भी हिंदी के द्वारा एक सूत्र मे आबद्ध हैं। तमिल और मलयालम, असमिया और उडिया मे यह योग्यता नही है। हिंदी भाषी क्षेत्र के लोग किसी जाति विशेष के नाम से नही पुकारे जाते। बँगला बोलने

वाले बगाली और पजाबी बोलनेवाले पजाबी कहलाते हैं। परतु उत्तर प्रदेश या मध्य प्रदेश के निवासी को क्या कहा जाये ? वस्तुत हिंदी-भाषी क्षेत्र का स्वरूप मिश्रित है, जिसमे कई जातियो, कई भाषा भाषी लोगो के चरित्र और स्वभाव का प्रतिबिंब और भावनाएँ परिलक्षित होती है। आज से नही, इतिहास के आरभ से आर्यावत का आतरिक, सास्कृतिक और भावनात्मक निर्माण ऐसे ही तत्त्वो से हुआ है। हिंदी भारत की सरलतम भाषा है। हिंदी की लिपि भी भारतीय सस्कृति की प्रतिनिधि भाषा सस्कृत की देवनागरी लिपि है। महाराष्ट्र को लेकर यह आधे से अधिक भारतीयो की लिपि है। देवनागरी लिपि के समान वैज्ञानिक, नियमित और व्यवस्थित लिपि शायद ही कोई हो। यो यह सच है कि प्रत्येक लिपि मे अपनी क्षेत्रगत ध्वनियो की विशेषताएँ कुछ रहती ही हैं।

सक्षेप मे, *यदि हम राष्ट्रीय एकता को भलीभाँति समझें, अपने देश* मे व्याप्त और अपेक्षित एकता को तुलनात्मक दृष्टि से देखें, यदि राष्ट्रीय एकता और प्रशासकीय व्यवस्था के भद को भलीभाँति जानें, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि राष्ट्रीय एकता और जबदस्ती लादी हुई विदेशी भाषा का यदि कोई सबध हो सकता है, तो वह राष्ट्रीय फूट और लज्जा का ही होगा। यदि भारतीय भाषाओ मे से ही किसी को राष्ट्र-भाषा का पद दिया जा सकता है, तो हिंदी को छोडकर कोई दूसरी भाषा उसकी शर्तें पूरी नही करती।

परिशिष्ट

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

जन्म . १९०७ ई०

हिंदी साहित्य के इतिहास को भारतीय सास्कृतिक भावधारा के सदर्भ मे परखने वाले आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी के शीर्षस्थानीय साहित्यकार हैं। द्विवेदीजी का अध्ययन-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। इनके कृतित्व मे आये सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और बंगला के उद्धरणो की बहुलता इसका प्रमाण है। शातिनिकेतन मे द्विवेदीजी गुरुदेव और आचार्य क्षितिमोहन सेन के निकट सपर्क मे रहे तथा उन्हे यही वह नवीन आस्था और विश्वास की जीवन-दृष्टि मिली जो साहित्य को मात्र सौंदर्यानुभूति की वस्तु न मानकर उसे मानव के आत्यन्तिक हित का साधन स्वीकार करती है। यही वजह है कि द्विवेदीजी के सपूर्ण सृजन-कर्म मे मानव की श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित करने का अभूतपूर्व प्रयास है।

विषय-वैविध्य की दृष्टि से द्विवेदीजी का लेखन-क्षेत्र भी बहुत व्यापक है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' जैसे श्रेष्ठ उपन्यास के लेखक आप ही हैं। इनकी अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं—'सूर साहित्य', 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'कबीर', 'चारु चंद्रलेख', 'अशोक के फूल', 'कल्पलता', 'आलोकपर्व' आदि।

'अशोक के फूल' और 'कल्पलता' संग्रह के कतिपय निबंध ललित निबंधों की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। यदि निबंध मे कारयित्री प्रतिभा का प्रभाव देखना है तो ये दोनो सकलन पर्याप्त हैं। इन निबंधो मे लेखक के व्यक्तित्व की छाप सुस्पष्ट है। विषय-अभिव्यंजना मे अध्ययन की व्यापकता, लोकमंगल की दृष्टि और हास-परिहासमयी शैली का सहज समन्वय दर्शनीय है।

'शिरीष के फूल' द्विवेदीजी के 'कल्पलता' सग्रह मे आये ललित

निबधो का सुदर प्रतिनिधित्व करता है। इस निबध का आरभ बडे सहज और हल्के ढग से हुआ है, लेकिन द्विवेदीजी की भावधारा मे हमारी सास्कृतिक स्मृतियाँ साकार हो उठती हैं। पुराण, धर्म, दर्शन सभी कुछ इतनी सरलता से यहाँ समन्वित होते चले जाते हैं और लेखक केवल शिरीष के फूल को केंद्र मानकर भारतीय सस्कृति, साहित्य एव जातीय जीवन की मोहक झाँकी प्रस्तुत करता जाता है। बीच-बीच मे आने वाले हास-परिहास और व्यग्य-विनोदमूलक वाक्य, यथा—'मैं तुदिल नरपतियो की बात नही कह रहा हूँ, वे चाहे तो लोहे का पेड बनवा लें' निबध को और भी अधिक सवेदनीय बना देते हैं।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि विचार-गाभीर्य, सुसबद्ध विचार-शृखला, विषय की स्पष्टता, विश्लेषण की सूक्ष्मता, प्रवाहपूर्ण पुष्ट-समर्थ भाषा द्विवेदीजी के निबधों की कुछ अविस्मरणीय विशेषताएँ हैं।

शिरीष के फूल

निर्धूम=धुआँ रहित। लहक उठना=लहराना, उत्कठित होना। निर्घात=निडर, निभय। कालजयी अवधूत=वह योगी जिस पर समय का कोई प्रभाव नही पडता। मगलजनक=शुभ, कल्याणकारी। पुन्नाग=जायफल। घनमसृण हरीतिमा=सघन कोमल हरियाली। परिवेष्टित=आच्छादित, आवृत। तुदिल=बडा पेट वाला। धकिया-कर=धक्का देकर। सपासप=तीव्र गति से, अबाध। दुरत=अपार, प्रचड, दुस्तर। अनासक्त=जो किसी विषय मे आसक्त न हो। अना-विल=पवित्र। उपालभ=उलाहना। कार्पण्य=कजूसी, कृपणता। शुभ्र=उज्ज्वल। कृषीवल=किसान। निर्दलित इक्षु-दड=रस से परिपूर्ण गन्ना, अमर्दित गन्ना। अभ्रभेदी=गगनचुबी, बहुत ऊँचा। अतिक्रम=पार।

प्रश्न —

१ शिरीष के फूल को देखकर लेखक के हृदय मे जिन भावो का उदय हुआ, उन्हे अपनी भाषा मे लिखिए।

२ शिरीष के फूल को माध्यम बनाकर लेखक ने हमे कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण विचार-सूत्र प्रदान किये हैं ? मानव जीवन मे उनकी क्या उपयोगिता है ? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।
३ भारतीय साहित्य और जीवन मे शिरीष के फूल के महत्त्व को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

विद्यानिवास मिश्र

जन्म · १६२५

आधुनिक हिंदी निबंध को जिन्होंने अपनी अनुभूति से समृद्ध कर साहित्य को शाश्वत के साथ साथ सामयिक प्रेरणा-स्रोतो से सम्पृक्त किया है, उन निबधकारो मे विद्यानिवास मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। मिश्रजी निबध के क्षेत्र मे अपने को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'अनुवर्ती अनुज' मानते हैं। यही कारण है कि उनके निबधो मे आचार्य द्विवेदी की सामजस्यमूलक प्रवृत्ति के ललित पक्ष पर अत्यधिक बल दिया गया है। लेकिन साथ ही उनके निबधो का वैचारिक आधार भी अत्यधिक सुदृढ है। मिश्रजी के प्राय सभी ललित निबध लोकजीवन, सामयिक समस्याओं और प्राकृतिक उपादानो को लेकर लिखे गये हैं। उनके निबधो मे विषयो की विविधता द्रष्टव्य है। प्रत्येक निबध मिश्रजी के व्यक्तित्व की छाप से युक्त है। प्रस्तुतीकरण की सरलता, व्यग्य का तीखापन और सवेदना पाठक को तो अभिभूत करत ही हैं, लक्ष्य-बेधन मे भी पूर्ण समर्थ हैं। कहना न होगा कि मिश्रजी के निबधो मे जो आचलिकता का पुट है उससे उनके निबध और भी अधिक सहज सवेदनीय बन गये हैं।

मिश्रजी के प्रकाशित निबध सकलन हैं— छितवन की छाँह', 'कदब की फूली डाल', 'तुम चदन हम पानी', 'आँगन का पछी और बनजारा मन' तथा 'मैंने सिल पहुँचाई'।

प्रस्तुत सकलन मे मिश्रजी का 'प्रभुत्व-ज्वर अस्पताल' ललित निबध उनके 'आँगन का पछी और बनजारा मन' से लिया गया है। इस

निबंध के द्वारा लेखक ने स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् पनपी प्रभुत्व-ज्वर से ग्रसित नयी भारतीय नौकरशाही पर आघात किया है। इस नौकरशाही के 'ससार मे केवल एक ही सीमित सत्य है शक्ति को आत्मसमर्पण से पाना, उस ससार की एक ही क्रिया है क्रिया का निषेध। जितना ही जो क्रिया से बचता है उतना ही वह अधिक सक्रिय कहा जाता है, और जितना ही जो काम बढ़ाता जाता है उतना ही वह अधिक कामचोर गिना जाता है। उस ससार मे एक ही सुख है अपने अधीनस्थ लोगो के प्राण सूत्र उँगलियो मे बाँध रखने की तृप्ति। उस ससार मे एक ही स्थिति है कुर्सी, और एक ही गति है मेज।' मिश्रजी के ये शब्द आज भी सत्य हैं। देश के शासन तत्र पर नौकरशाही हावी है। आज भी ससद और विधान सभा मे प्रजातात्रिक नीतियो एव योजनाओ की असफलता का श्रेय इस नौकरशाही को ही दिया जाता रहा है, जो प्रभुत्व-ज्वर से बुरी तरह ग्रस्त है।

यह निबंध अपनी विषय-स्थापना, दृष्टिभाव और शैली मे बेजोड है।

प्रभुत्व-ज्वर अस्पताल

भिषग्=वैद्य। भवरोग=सासारिक रोग। खुमार=नशा। जरसी सस्कृति=अमेरिकी सस्कृति। प्राणातक कष्ट=अत्यधिक कष्ट, असह्य वेदना। पेचीदी=जटिल। चगे=स्वस्थ।

प्रश्न :—

१ 'प्रभुत्व-ज्वर अस्पताल' से लेखक का क्या तात्पर्य है, अपने शब्दो मे लिखिए।

२ प्रस्तुत पाठ के आधार पर देश मे व्याप्त नौकरशाही के आचरण का विश्लेषण सक्षेप मे कीजिए।

डॉ० शिवप्रसाद सिंह

कहानीकार, आलोचक और निबंध लेखक डॉ० शिवप्रसाद सिंह व्यक्तित्व के सस्पर्श से युक्त निबध लिखने वाले नये लेखको मे उल्लेख्य हैं। अच्छे ललित निबध लेखक के लिए अनिवार्य गुण विद्वत्ता, फक्कडपन, यायावरी वृत्ति, लोककथा प्रेम, सूक्ष्म विचार-शक्ति, और गद्य काव्य की शैली' सभी उनमे मौजूद है। आधुनिक दृष्टि-सपन्न साहित्यकार होते हुए भी आप परपरा के प्रति पूर्ण आस्थावान हैं। गरीबो की हिमायत, जमीदारो की निंदा, रूढ़ियो का विरोध आपके कृतित्व के प्रमुख स्वर हैं। आपकी प्रतिबद्धता मनुष्य की मनुष्यता के प्रति है क्योकि मनुष्यता से बडा कोई मजहब नही।'

आपके दो ललित निबध सग्रह— शिखरो का सेतु' एव 'कस्तूरी मृग' प्रकाशित हैं। 'मुरदा सराय' आपका बहुचर्चित कहानी-सग्रह है। 'सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' तथा 'आधुनिक परिवेश और नव-लेखन' आपके समीक्षा ग्रथ हैं।

प्रस्तुत निबध 'हिप्पियो का 'हैवन'—वाराणसी' 'कस्तूरी मृग' सग्रह से लिया गया है। हिप्पी दुनिया के सर्वाधिक विकसित एव शक्तिशाली जनतत्र वाले देश अमरीका की गत दिनो चर्चित वह पीढी है जिसने वहाँ की वर्तमान समाज-व्यवस्था और राजनीतिक-आर्थिक तत्र सबको नकार दिया है। गाँजा, चरस तथा एल० एस० डी० जैसे मादक द्रव्य उनके पाथेय हैं। हमारे देश के लोग चाहे उन्हे हेय दृष्टि स देखते हो लेकिन डॉ० शिवप्रसाद सिंह उनसे बहुत अधिक प्रभावित हैं—'उनके भीतर विद्यमान रहस्य को जानने की अबाध अभीप्सा से।' लेखक का प्रश्न है उन लोगो से जो हिप्पियो को निकृष्ट या मरभुखे मानते हैं, कितने हैं ऐसे लोग जो अपनी सभ्यता और सस्कृति को मुमूर्ष देखकर एक नयी जीवत सस्कृति की खोज में इस तरह दर दर की ठोकरें खाते फिरें ?' और हिप्पियो के प्रति लेखक का यह भाव 'बुराई के भीतर छिपी अच्छाई स आँख मूद लेना भविष्यत मानवता की आचार-सहिता को स्वीकार्य नहीं होगा', उसी प्रतिबद्धता का परिणाम है जहाँ मनुष्यता से बडा कोई मजहब नहीं।'

कहना न होगा कि डॉ० शिवप्रसाद सिंह के निबधो मे ज़िंदगी की 'साखी' हैं, उनके भावबोध मे माटी के स्पर्श की सोधी गध है और हैं जीवन से टकराती हुई समस्याओ की खट्टी-मीठी अनुभूतियाँ।

हिप्पियों का 'हैवन'—वाराणसी

खोते=घोसला। गाउटी=गमछा। त्राटक= योग की एक मुद्रा। आक्रांत=भयभीत। चाकचिक्य=चमक-दमक । मार्बिड=अस्वस्थ। अभीप्सा=इच्छा, कामना। खुदक्का=धक्का। गुरियो=छिद्रवाले माला के बीज। गुहार=पुकार। आइसिस=मिस्र की एक देवी। देमेतर=ग्रीक देवी जो कृषि और विवाह की सरक्षिका है। मेडोना= कुमारी मरियम, क्राइस्ट की माँ। रास सामरा=पश्चिमी सीरिया मे स्थान विशेष। ईस्तर=असीरिया और बेबीलोनिया की प्रेम और युद्ध की अधिष्ठात्री देवी। सेरेस=रोम की कृषि की अधिष्ठात्री देवी। फ्लावर जेनरेशन=हिप्पी। मुमूर्ष=जो मरण के समीप हो। गलीज= हेय, निकृष्ट।

प्रश्न :—

१. प्रस्तुत पाठ के आधार पर हिप्पी पीढी के जन्म के कारणो को स्पष्ट कीजिए।

या

'हिप्पीवाद' से आप क्या समझते है, सक्षेप मे लिखिए।

२. हिप्पियो की कौन-कौन-सी विशेषताओ ने लेखक को प्रभावित किया है और क्यो ? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।

हरिशंकर परसाई

जन्म २२ अगस्त, १६२४

हरिशकर परसाई हिंदी व्यग्य लेखन के क्षेत्र मे एक अत्यत सुपरिचित नाम

है। परसाईजी ने आधुनिक हिंदी व्यग्य लेखन को एक सर्वथा नवीन मोड दिया है। आपका हास्य व्यग्य हिंदी के अन्य व्यग्यकारो से भिन्न और विशिष्टता लिये हुए है। अपनी रचनाओ मे परसाईजी ने स्थितियो को इतने सही और सशक्त ढग से उभारा है कि व्यग्य केवल शाब्दिक चमत्कार और घटनाओ का वर्णन मात्र न रहकर सामाजिक और राजनीतिक चेतना से सपन्न हो गया है। परसाईजी का लेखन सोद्देश्य है, इसलिए उनके साहित्य मे सामयिक जीवन की विसगतियो और विरूपता का चित्रण ऐसे सहज रूप मे हुआ है कि स्थितियो के अतराल मे निहित व्यग्य अपने-आप उभरकर सामने आ जाता है। आज के जीवन और समाज मे व्याप्त अर्तविरोधो, विसगतियो, भ्रष्टाचार और ढोग की कलई खोलने और भद्रता के मुखौटे धारण करनेवालो को बेनकाब करने म परसाईजी बेजोड हैं।

एक लबे अर्से तक महाविद्यालयो मे अध्यापन करने के उपरात सप्रति, परसाईजी जबलपुर मे एक दशाब्दी से स्वतत्र लेखन कर रहे हैं। आपकी बहुप्रशसित पुस्तकें हैं— हँसते है रोते हैं', 'जैसे उनके दिन फिरे' (कहानी-सग्रह), 'रानी नागफनी की कहानी', 'तट की खोज' (उपन्यास), तब की बात और थी', 'भूत के पाँव पीछे', 'बेईमानी की परत', 'पगडडियो का जमाना', 'सदाचार का तावीज', 'ठिठुरता हुआ गणतत्र', शिकायत मुझे भी है', तथा 'अपनी-अपनी बीमारी' (निबध-सग्रह) इसके अतिरिक्त आपकी हास्य-व्यग्यमयी रचनाएँ पत्र पत्रिकाओ म निरतर प्रकाशित हो रही हैं।

प्रस्तुत सकलन मे परसाईजी का प्रसिद्ध व्यग्य निबध ठिठुरता हुआ गणतत्र' लिया गया है। इस निबध मे लेखक ने आज की भारतीय जनता की असहाय एव करुण स्थिति का चित्र यथार्थवादी ढग से अकित करने के साथ-साथ देश के विभिन्न सत्ताकामी राजनीतिक दलो की स्वार्थपरता और एक-दूसर पर कीचड उछालने की प्रवृत्ति, राज्य सरकारो के भ्रष्ट कारनामो और मिथ्याचार तथा नौकरशाही की लाल फीताशाही पर तीखा एव सार्थक प्रहार किया है। सार्थक प्रहार इसलिए कि यह निबध पाठक की चेतना को न केवल झकझोरता ही है वरन् इस सडी-गली व्यवस्था को आमूल-चूल बदलने की प्रेरणा भी देता है।

ठिठुरता हुआ गणतन्त्र

अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष=एक अतर्राष्ट्रीय सस्था जो सदस्य देशो की विदेशी मुद्रा विनिमय मे सहायता करती है। भारतीय सहायता क्लब=पश्चिम के विकसित राष्ट्रो की एक सस्था जो भारत को आर्थिक सहायता प्रदान करती है। तले=नीचे। इडीकेटी काग्रेस=इदिरा गाधी के नेतृत्व वाला काग्रस दल, नयी काग्रस। सिंडिकेट काग्रस=सगठन काग्रेस। सेक्युलर=धम निरपेक्ष। अशुमाली=सूय। सातवाँ बडा=प्रशात महासागर मे अमरीकी जहाजी बडा। मोटो=उद्देश्य। धौलधप्पा=मारपीट। प्रतिबद्ध=वँधे हुए। स्पिरिट=भावना। फरमान=आदेश। मुल्तवी=स्थगित।

प्रश्न —

१ ठिठुरता हुआ गणतन्त्र' व्यग्य निबध समसामयिक भारतीय जीवन मे व्याप्त विसगतियो, भ्रष्टाचार और ढोग पर तीखा प्रहार है, सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

२ प्रस्तुत निबध के आधार पर देश के विभिन्न राजनीतिक दलो के समाजवादी दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।

३ इस निबध मे भारतीय दफ्तरो मे व्याप्त लालफीताशाही को सही ढग से उजागर किया गया है स्पष्ट कीजिए।

भगवतीशरण सिंह

जन्म १० नवबर १९१९

भगवतीशरण सिंह भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रमुख सदस्य हैं और सप्रति भारत सरकार के जहाजरानी विभाग के मत्री के साथ सयुक्त हैं। आपके साहित्य जीवन का समारभ प्रसाद परिषद् वाराणसी के माध्यम से हुआ। आपने अनेक कहानियाँ और निबध लिखे हैं। प्रकृति-दशन ने सदैव भ्रमण के लिए प्ररित किया है। शिकार और गोल्फ

आपके प्रिय खेल हैं। 'जगल और जानवर' आपकी शिकार-सबधी कथाओ की सद्य प्रकाशित पुस्तक है। इस पुस्तक के प्रकाशन से हिंदी मे शिकार सबधी विश्वसनीय पुस्तक के अभाव की पूर्ति हुई है।

इस पुस्तक मे दस शिकार-कथाएँ हैं। भाषा सहज, सरल, प्रवाहमय है, शैली मे एक निष्कपट आत्मीयता है, उपलब्धि और असफलता दोनो के प्रति लेखक के मन मे एक सा भाव है, और कही पर अतिरजना नही। राजा जसजीतसिह, कुँवर प्रेमराजसिह जैसे धुरधर शिकारियो और लड्डन मियाँ जैसे पारखी चरित्रो के साथ लेखक ने उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश के जगलो का चप्पा-चप्पा छाना है।

प्रस्तुत सकलन मे उनकी 'दक्षिणी सबलगढ का घायल शेर' शिकार-कथा जगल और जानवर' पुस्तक से सकलित की गयी है। 'सबलगढ का घायल शेर' आदमी के साहस से ज्यादा जानवर के शौर्य के प्रति सम्मान जगाता है। और लेखक का यही बडप्पन है कि उसने जानवर के व्यक्तित्व को अपने व्यक्तित्व के सामने छोटा नही किया है, अपने अह मे इतना चूर नही हुआ कि करुणा के स्थलो पर भी स्याही फेर दे। लेखक जगल के जानवरो के चारित्रिक अध्ययन मे दक्ष है, यह कथा इसका प्रमाण है।

दक्षिणी सबलगढ का घायल शेर

गुलदार=एक प्रकार का कबूतर। हादसा=दुघटना। माकूल=उचित। इदमित्थम्=ऐसा ही। मचान=बाँसा का टट्टर बाँधकर बनाया हुआ स्थान जिस पर बैठकर शिकार खेलते हैं। अभिशप्त=शापित। मृगया=शिकार। निमिष=पलक मारने भर का समय। प्रतिशोध=बदला। नैसर्गिक=प्राकृतिक। आदमखोर=नरभक्षी।

प्रश्न :—

१ 'दक्षिणी सबलगढ का घायल शर' एक मार्मिक शिकार निबध है, उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

२ प्रस्तुत लेख मे मनुष्य के साहस से अधिक महत्त्वपूण जानवर के साहस को माना गया है, तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।

३ प्रस्तुत लेख 'दक्षिणी सबलगढ़ का घायल शेर' जगली जानवरो की चारित्रिक विशेषताओ पर अच्छा प्रकाश डालता है, स्पष्ट कीजिए।

'सिद्धेश'

कलकत्ता हमारे देश का सबसे बडा शहर है और बडे शहरो मे आम आदमी की जो दयनीय हालत है उसका इस रिपोर्ताज म यथार्थ एव मार्मिक चित्रण हुआ है। केवल कलकत्ता का ही नही, अन्य महानगरो एव बडे शहरो के चरित्र का भी इसके आधार पर अदाज लगाया जा सकता है।

आज की नयी पीढ़ी और विशेषतया विद्यार्थी वर्ग ग्रामीण और कस्बाती जीवन को छोडकर बडे शहरो की रगीनी मे खो जाना चाहता है। लेकिन यह वर्ग वहाँ की चमक-दमक से ही परिचित है, उसकी असली नारकीय स्थिति को वह नही जानता। इस दृष्टि से युवा पीढी के सिद्धहस्त लेखक श्री सिद्धेश का प्रस्तुत रिपोर्ताज नयी पीढी को शहर-बोध कराने मे सहायक हो सकता है। कलकत्ता के रहने वाले श्री 'सिद्धेश' चर्चित कहानीकार और रिपोर्ताज-लेखक हैं।

कलकत्ता कितना अमीर, कितना ग़रीब

तल्ले वाले=मजिलवाले। हाकर्स=खोमचेवाले। औकात=क्षमता। तब्दीली=परिवर्तन। फ्री लाइफ=सब प्रकार के नियत्रण से रहित जीवन।

प्रश्न :—

१. 'साधारण लोगो को अब राजनीति या सरकार या भविष्य के प्रति किसी प्रकार के आश्वासन से कोई मतलब नही रह गया है। वे अधिक-से-अधिक वर्तमान मे जीने पर ही विश्वास करने लगे हैं।' इस उक्ति की सत्यता पर 'कलकत्ता कितना अमीर, कितना

गरीब' रिपोर्ताज के आधार पर विचार कीजिए।

२ 'कलकत्ता कितना अमीर, कितना गरीब' किसी भी महानगर की समसामयिक स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है, स्पष्ट कीजिए।

हरिवंश वेदालंकार

श्री हरिवश वेदालकार गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी, हरिद्वार के स्नातक हैं। व्यवसाय से हिंदी-सस्कृत के योग्य अध्यापक तथा स्वभाव से घुमक्कड श्री वेदालकार को गुरुकुल के पवित्र वातावरण, गगा, हिमालय और झरनो की नैसर्गिक सुषमा ने जीवन के प्रभात से ही आकृष्ट किया है। परिणामत इन्होने काश्मीर, दार्जिलिग एव सपूर्ण हिमालय का पैदल ही भ्रमण किया है। नैनीताल, अल्मोडा, मसूरी, शिमला, कुल्लू आदि की यात्राएँ अनेक बार कर चुके हैं। गगोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ जैसे तीर्थ-स्थलो का तथा हिमालय के उस पार कैलाश-मानसरोवर का दर्शन श्री वेदालकार की यायावरी वृत्ति की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं।

'मानसरोवर की लहरो में' श्री वेदालकार का 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के सेलानी विशेषाक मे प्रकाशित ताजा यात्रा-विवरण है। इस यात्रा-विवरण मे अनत महिमा से विभूषित सरोवर—मानसरोवर—के सौंदर्य का साक्षात्कार लेखक ही नही, पाठक भी करता है। कारण है कि श्री वेदालकार ने यात्रा के दौरान पग-पग पर उपस्थित होनेवाली मुसीबतो एव नाना प्रकार की परिस्थितियो मे अपनी सूझ-बूझ से तर्कपूर्ण सामजस्य खोज लिया है। लेखक के इस यात्रा-वर्णन मे साहित्यिक यात्रावृत्त के सभी गुण—बनजारो की मस्ती, पुरातत्वखोजियो की लगन, ऐतिहासिक दृष्टि, प्रकृति के साथ अबाध रूप से आँख-मिचौनी खेलनेवाला जुझारू सकल्प विद्यमान हैं।

मानसरोवर की लहरों मे

ककुद=शिखर, चोटी। गगनभेदी=आकाश का स्पर्श करने वाले।

तुषार=बर्फ। परितृप्त=सतुष्ट। रजोविहीन=धूल रहित। उपत्यका =घाटी। जल समाधि=डूबना।

प्रश्न —

१ मानसरोवर की लहरो म एक सुदर यात्रा विवरण है, सोदाहरण समझाइए।

२ अनत महिमा विभूषित मानसरोवर की यात्रा म लेखक और उसके मित्रो को किस किस प्रकार की कठिनाइयो का सामना करना पडा, उल्लेख कीजिए।

३ इस यात्रा विवरण म लेखक की बनजारा वृत्ति और जुझारू सकल्प की सुदर अभिव्यक्ति हुई है, स्पष्ट कीजिए।

अगरचद नाहटा

जन्म १६ मार्च, १६१२

अगरचद नाहटा राजस्थानी साहित्य और जैन सस्कृति के साधक-व्याख्याता हैं। नाहटा जी ने गत ४५ वर्षों क अथक परिश्रम से राजस्थान के दूरस्थ स्थानो से अनेक अज्ञात लेकिन महत्त्वपूर्ण पाडुलिपियो को खोजकर साहित्य भडार को और भी अधिक सपन्न किया है। प्राचीन साहित्य और लोक-साहित्य के उद्धारको मे नाहटा जी का नाम प्रमुख है।

नाहटा जी ने लगभग ४० ग्रथो का प्रणयन एव सपादन कार्य किया है। आपकी कतिपय उल्लेखनीय कृतियाँ हैं— 'बीकानेर जैन-लेख सग्रह', 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह', 'युगप्रधान जिनचद्र सूरि', 'ज्ञानसार ग्रथावली', 'सभा शृगार एव भक्तमाल' आदि। विभिन्न उच्चस्तरीय शोध-पत्रिकाओ मे आपके अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आप शोध सबधी अनेक सस्थाओ के निदेशक एव सचालक हैं विभिन्न पत्रिकाओ के सपादक अथवा परामर्शदाता। बीकानेर आपकी साहित्यिक गतिविधियो का केंद्र रहा है

प्रस्तुत लेख 'राजस्थानी कला और साहित्य की गौरवपूर्ण परपरा' मे नाहटा जी ने राजस्थान के प्राचीन गौरव, राजस्थानी चित्रकला के विकास, उसकी विभिन्न शैलियो एव विशेषताओ के उल्लेख के साथ-साथ राजस्थानी साहित्य की परपरा, यहाँ के ग्रथ-भडारो एव उपलब्ध साहित्य के विभिन्न रूपो पर बहुत ही स्वच्छ एव वर्णनात्मक शैली मे प्रकाश डाला है। महत्त्वपूर्ण सूचनाओ के कारण इस लेख का राजस्थानी कला और साहित्य मे अभिरुचि रखने वालो के लिए विशेष महत्त्व है।

राजस्थानी कला और साहित्य की गौरवपूर्ण परंपरा

पुरातत्व=प्राचीन काल सबधी विद्या। देवल=देवालय। सवर्द्धन=वृद्धि करना। भित्ति-चित्र=दीवारो पर अकित चित्र। मेघाच्छन्न=बादलो से ढँका। ऋचाएँ=वैदिक मत्र। सलिलार्णव=पानी का समुद्र।

प्रश्न —

१ राजस्थान के विभिन्न नामो का उल्लेख करते हुए कला और साहित्य के क्षेत्र मे यहाँ के योगदान का मूल्याकन कीजिए।

२ राजस्थानी चित्रकला के विकास पर प्रकाश डालते हुए उसके सविधान को स्पष्ट करने वाली विशेषताओ पर प्रकाश डालिए।

३ 'साहित्य की दृष्टि से यह प्रदेश अथाह सागर है', नाहटा जी के इस कथन का आशय स्पष्ट करते हुए यहाँ के विभिन्न ग्रथ-भडारो का परिचय दीजिए।

महादेवी वर्मा

जन्म १९०७ ई०

महादेवीजी आजकल प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रिंसिपल हैं। चित्रकला और सगीत कला मे दक्षता प्राप्त करके जीवन को कलामय बनाने मे

आप पूर्ण सफल हुई हैं। बौद्ध दर्शन और उपनिषदो के अध्यात्म तत्त्व की ओर अभिरुचि होने से रहस्यात्मक रचना की ओर आपकी निसर्गतः प्रवृत्ति हुई और वर्तमान युग के कवियो म आप रहस्य-भावना का अकन सर्वश्रेष्ठ रीति से करने में समर्थ हैं।

उनके कविता सग्रह हैं 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'साध्यगीत' और 'दीपशिखा'। गद्य-सग्रह हैं 'अतीत के चलचित्र', 'शृखला की कडियाँ', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी', 'साहित्यकार की आस्था', 'स्मृति-चित्र आदि।

महादेवी जी एक सफल गद्य-लेखिका एव शैलीकार भी हैं। उनके सस्मरणो मे गद्य का उदात्ततम एव रमणीयतम रूप उपलब्ध होता है। इन सस्मरणो मे उन्होंने उन पददलित एव पीडित आत्माओ पर लिखा है, जो समाज द्वारा सदैव उपेक्षित रही हैं। इनमे भी प्रमुख स्थान अभिशप्त नारी-जीवन को मिला है। वैसे तो उनका सपूर्ण काव्य वेदनामय है किंतु इन सस्मरणो मे उनकी वेदना का स्वर अधिक मुखर हुआ है। यहाँ कल्पना के स्थान पर अनुभूति की सघनता है। इन सस्मरणों की भाषा कवित्वमयी है। चित्रमयता उनकी शैली की प्रमुख विशेषता है। इन सस्मरणात्मक निबधों म सस्मरण, कहानी और निबध तीनो के तत्त्वो का सम्मिश्रण हुआ है। कहानी की घटनात्मकता एव चरित्र चित्रण, लेखिका के जीवन को प्रभावित करनेवाली सस्मरणात्मकता और आत्माभिव्यक्ति तथा निबध की अनौपचारिकता इनमे विद्यमान है। उनकी भाषा पुष्ट एव परिष्कृत है।

प्रस्तुत सग्रह मे सकलित सस्मरणात्मक निबध 'सुँधनी साहु' 'स्मृति-चित्र' के 'मेरे साथी' से उद्धृत है। इस सस्मरण म लेखिका ने छाया-वाद के सर्वश्रेष्ठ कवि प्रसाद के प्रभावशाली व्यक्तित्व, उनकी बाह्य रूप-रेखा और आतरिक गुणो का आत्मानुभूतिपूर्ण चित्राकन किया है। प्रसादजी के प्रति व्यक्त लेखिका का ममत्व हमारे हृदय पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ता है।

सुँघनी साहु

निष्कप=स्थिर। स्वगत=अपने-आपसे कहना। स्थविर=पूज्य

बौद्ध भिक्षु । महाप्रयाण=मरण । अंत.सलिला=भीतर-ही-भीतर बहनेवाली नदी । गोपनशील=अंतर्मुखी प्रवृत्ति वाला । विपन्नता= गरीबी । सौहार्द=मैत्री भाव । संश्लिष्ट=मिला जुला । समष्टि= समूह, जगत् । श्रेय=मगलदायक । प्रेय=प्रिय ।

आनदवादी=शैव दर्शन की वह विचारधारा जो जगत् को दु खपूर्ण न मानकर आनदमय स्वीकार कर कर्म का सदेश देती है ।

प्रश्न :—

१. प्रस्तुत सस्मरण के आधार पर प्रसाद के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए ।
२. 'सुंघनी साहु' सस्मरण मे महादेवी जी की आत्मीयता प्रसाद के प्रति छलकी पडती है, उपयुक्त उदाहरण देते हुए इस कथन की सार्थकता स्पष्ट कीजिए ।

गोपालदास

श्री गोपालदास आकाशवाणी के केंद्र-निदेशक के रूप मे सेवामुक्त हो चुके हैं । सन् १९५० के लगभग जब इलाहाबाद का साहित्यिक वातावरण अत्यधिक सजीव था तब श्री गोपालदास प्रयाग केंद्र के निदेशक थे और वहाँ के नवलेखन की धूम से उनका आतरिक जुडाव था । यह वही समय था जब साहित्य मे नवीन विधाओ के साहसी प्रयोग किये जा रहे थे । श्री गोपालदास की सस्मरण कृति—'जीवन की धूप-छाँव से' भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है ।

यह सस्मरण 'एक जो चली गयी' श्री गोपालदास की उस नन्ही प्यारी पुत्री मधूलिका का सस्मरण है जो वहाँ के प्रत्येक साहित्यकार का स्नेहभाजन थी और नौ वर्ष की अल्पायु मे ही काल द्वारा निगल ली गयी थी । प्रस्तुत सस्मरण उसी बालिका की असाध्य बीमारी, साहस, प्रत्युत्पन्न मतित्व, साहित्यिक रुचि और प्रबल इच्छाशक्ति का प्रामाणिक वर्णन है । इस सस्मरण को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो आज भी पिता का वेदनापूरित हृदय उस दिवगता से कह रहा हो—'मेरा यह

सस्मरण तुम्हारा स्मरण है, क्योंकि तुम्हारे अभाव को मैं आज भी बहुत तीव्रता से अनुभव करता हूँ। अपनी सबल भाव-प्रवणता और वर्णन की मौलिकता के कारण 'एक जो चली गयी' सस्मरण हिंदी-साहित्य की सस्मरण विधा मे एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर माना जायेगा, इसमे सदेह नही।

एक जो चली गयी

विलसना=शोभा पाना। मासूमियत=भोलापन। पुरुष पुरातन की वधू=लक्ष्मी। विद्रूप=भोडा, हास्यास्पद। अकारथ=व्यर्थ। एंबुलेंस=रोगीवाहन। पौ=प्रात काल।

प्रश्न :—

१. मधूलिका नाम की सार्थकता के सदर्भ मे इस सस्मरण के केंद्रीय पात्र के चारित्रिक गुणो पर प्रकाश डालिए।
२ इस सस्मरण के उन मार्मिक स्थलो का उल्लेख कीजिए जिनसे पिता के मर्म की व्यथा प्रकट होती है।

हरिवंशराय बच्चन

श्री हरिवशराय बच्चन 'मधुशाला' के लोकप्रिय कवि हैं। कुछ दिन पूर्व बच्चन जी की आत्मकथा के दो खण्ड—'क्या भूलूँ-क्या याद करूँ' तथा 'नीड का निर्माण फिर' प्रकाशित हुए हैं जो हिंदी आत्मकथा साहित्य की प्रौढ़ता के प्रमाण है। इस आत्मकथा मे बच्चन जी के कुशल गद्य लेखक का साक्षात्कार भी पाठक को होता है।

'याद रहा बचपन' बच्चन जी के प्रथम आत्मकथा खड 'क्या भूलूँ-क्या याद करूँ' से लिया गया है। प्रस्तुत आत्मकथाश लेखक की शैशव-कालीन सुमधुर यादो के तटस्थ एव मार्मिक वर्णन के कारण बहुत ही प्रभावशाली बन गया है। साथ ही समाज मे उस समय व्याप्त

प्रथा के प्रति लेखक का दृष्टिकोण भी स्वस्थ रूप मे व्यक्त हुआ है। चम्मा का बालक बच्चन के प्रति सहज स्नेह मानो इसका प्राण है। हिंदू तथा मुसलमानो का उदार दृष्टिकोण भी इस आत्मकथा की एक और विशेषता है। भाषा की सहजता, वर्णन की सूक्ष्मता, सामाजिक परिवेश का चित्रण आदि प्रस्तुत आत्मकथाश की कुछ अन्य उल्लेख्य एव स्मरणीय उपलब्धियाँ हैं।

याद रहा बचपन

समाई=सामर्थ्य। निराकरण=दूर करना। पगत=पक्ति। नागवार=असह्य। अजाब=जादू। आसेब=भूतपिशाच।

प्रश्न :—

१. प्रस्तुत आत्मकथाश मे अछूत प्रथा पर बच्चन जी के जो विचार हैं, स्पष्ट कीजिए।
२ इस पाठ के आधार पर आप जिन सामाजिक मान्यताओ से परिचित होते हैं, उनका उल्लेख सक्षेप मे कीजिए।
३. 'आज भी प्रत्येक माँ अपनी सतान की कल्याण-कामना से वही मनौतियाँ मानती है जो बच्चन के लिए उनकी माँ ने मानी' अपने पढ़े हुए पाठ के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

सत्येंद्र शरत

जन्म १० अप्रैल, १९२९

सत्येंद्र शरत ने एकाकी लेखन द्वारा अपने युग की सामाजिक चेतना को सशक्त वाणी दी है। स्वतत्रता-प्राप्ति के पश्चात् जन्मी नयी परिस्थितियो और आर्थिक दबावो मे आज के औसत आदमी की स्थिति का यथार्थवादी ढग से चित्रण करने वाले श्री शरत एकाकी मे न तो पूर्व-कथा देने के पक्षपाती हैं, न ही पात्रो का परिचय। इनके पात्र स्वय निज

की बातचीत द्वारा अपना परिचय पाठकों और दर्शकों को देते हैं। हाँ, कुछ निर्देश प्रभाव व्यजना के लिए अवश्य प्रयुक्त किये गये हैं। कलात्मक-अभिव्यक्ति, नाटकीयता, सहज एव प्रौढ भाषा तथा सवाद शरत के एकांकियों की अन्य उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। आपके प्रकाशित सग्रह हैं— तार के खभे, 'इद्र धनुष और नीलकमल'।

श्री शरत के इस सकलन मे लिए गये एकाकी— समानातर रेखाएँ —मे लेखक ने आज के आर्थिक दबाव के कारण टूटते परिवार के सकट मे अपने आत्मसम्मान और स्वतत्र व्यक्तित्व की स्थापना की समस्या को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। सयुक्त परिवारो का टूटना आज के समाज की ऐतिहासिक अनिवार्यता है। लेकिन भावुकता एव निरर्थक मोह ऐसा होने मे बाधक हैं। परिणाम सामने है पारस्परिक सबधो मे दिन प्रतिदिन बढती कटुता। अत म होता वही (परिवार का टूटना) है, लेकिन एक ट्रेजेडी के रूप मे जहाँ सद्भावना पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है।

एकाकीकार श्री शरत ने बडे ही नाटय कौशल से इस समस्या को अपने स्वतत्र व्यक्तित्व की स्थापना का रूप दिया है। अपने प्रति बडे भाई की शिकायत सुनकर अशोक का आत्मसम्मान उसे अलग होने का निणय लेने के लिए बाध्य करता है—' भाई साहब एक मजबूत दरख्त की आड मे न कोई गोली चलाना सीख सकता है, न गोली से बचना। भाई साहब मुझे खुले मैदान मे छोड दीजिए ' और माँ से भी कहता है—' तुमने अपने बडे लडके को आदमी बना लिया है। तुम चाहती हो, तुम्हारा छोटा लडका अधकचरा रह जाये ? उसे भी तो जमाने की गर्म सर्द हवा खाकर आदमी बनने दो "

इस प्रकार एकाकी का अत आज के युग की एक विकट सामाजिक समस्या को मानवीय आत्मसम्मान के धरातल पर अवस्थित कर देता है।

समानातर रेखाएँ

यथासाध्य=भरसक। भरमाई=भ्रमित। सुरखाब के पर=अति-रिक्त विशेषता। सयुक्त=साथ। आवृत=ढका हुआ। गभीरता। सिडी=झक्की। आसरा=सहारा, अवलब।

प्रश्न :—

१ 'समानातर रेखाएँ' एकांकी मे लेखक ने आज के आर्थिक दबाव के कारण टूटते परिवार के सकट मे अपने आत्मसम्मान और स्वतत्र व्यक्तित्व की स्थापना की समस्या को यथार्थवादी ढग से प्रस्तुत किया है, सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ।

२. 'समानातर रेखाएँ' का अशोक आज के नवयुवको के लिए अच्छा आदर्श प्रस्तुत करता है, इस कथन को ध्यान मे रखते हुए अशोक का चरित्र-चित्रण कीजिए ।

३ 'समानातर रेखाएँ' एकाकी की वर्णित समस्याएँ सभी मध्यवर्गीय लोगो की आज की समस्याएँ हैं, सक्षेप मे स्पष्ट कीजिए ।

विष्णु प्रभाकर

जन्म : १२ जून, १९१२

श्री विष्णु प्रभाकर के नाट्य लेखन मे रेडियो की प्रेरणा मूल कारण रही है। और यही वजह है कि इनके नाटको मे रेडियो-शिल्प बहुत स्पष्ट नजर आता है । प्रभाकर जी की दृष्टि मानवतावादी है । इसीलिए यथार्थ पर आधारित आदर्श इनकी कृतियो का प्रमुख स्वर है । इनके कई रेडियो नाटक-सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ प्रसिद्ध नाटक हैं—'मीना कहाँ है ?' 'युगसधि', 'प्रकाश और परछाई', 'सम-विषम रेखा', 'साँप और सीढ़ी', 'अशोक', 'जहाँ दया पाप है' आदि ।

इस सकलन मे लिया गया रेडियो एकाकी 'ममता का विष' प्रभाकर जी का प्रसिद्ध रेडियो एकाकी है और इसकी सपूर्ण परिकल्पना देखने वालो के लिए नही, सुनने वालो के लिए है । तानपूरा के सगीत से प्रभाव को गहरा किया गया है, सियार आदि की बोलियो और घटे की गूँज से वातावरण को सजीवता प्रदान की गयी है ।

मनोवैज्ञानिक चित्रण प्राय प्रभाकर जी के सभी नाटको की विशेषता है। इस एकाकी के माध्यम से भी लेखक ने मानव मनोविज्ञान के जटिल पक्ष को प्रस्तुत किया है। माँ के चौदह बेटो मे से केवल उसके पास

रह गया है एक। कुछ तो बचपन मे राम ने बुला लिए, कुछ बडे होकर बम-पार्टी मे चले गये, दो समुद्र पार विदेश चले गये। केवल एक सुशील रह गया है, जो कालेज का छात्र है और अवकाश मे घर आया हुआ है। माँ की इच्छा है सुशील उसकी आँखो के आगे रहे। सुशील का भविष्य और माँ की ममता का द्वन्द्व नाटक के पीछे नेपथ्य मे चलते हैं। माँ का अमृत, जहाँ मौत के मुँह मे से भी बच्चे को खीच लाता है, वही वह जहर बनकर उसका सर्वनाश भी कर सकता है। नाटक मे डाक्टर का यह वाक्य—"वह उसे अपना समझती है—केवल अपना। यही स्वार्थ है, यही ममता का विष है"—नाटक के उद्देश्य को बहुत अधिक स्पष्ट कर देता है जिससे कलात्मकता की हानि हुई है। लेकिन नाटक का कथासगठन बहुत ही सशक्त है और श्रव्य शिल्प की दृष्टि से यह एक बहुत सफल नाटक है।

ममता का विष

मद=धीमी। सृजन=निर्माण। देसावर=विदेश, परदेश। मिन्नतें=मनौतियाँ। दूभर=मुश्किल। नारमल=साधारण, ठीक। अतराल=दूर। चिलमची=देग के आकार का एक बर्तन।

प्रश्न :—

१ 'ममता का विष' रेडियो एकाकी की शिल्पगत विशेषताओ का वर्णन सक्षेप मे कीजिए।

२ 'माँ का अमृत, जहाँ मौत के मुँह मे से भी बच्चे को खीच लाता है, वही वह ज़हर बनकर उसका सर्वनाश भी कर सकता है" उक्ति को 'ममता का विष' रेडियो रूपक के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

डॉ० उमाकांत सिन्हा

डॉ० उमाकात सिन्हा भारत के विशेष योग्यता प्राप्त मेधावी वैज्ञानिक हैं। आपका अध्ययन-अनुसधान क्षेत्र आनुवंशिकी तथा सूक्ष्म जैविकी है।

डॉ० सिन्हा पटना विश्वविद्यालय के एम० एस-सी० तथा ग्लासगो विश्वविद्यालय के पी-एच० डी० हैं। पटना विश्वविद्यालय से ही आपने अध्यापक का जीवन प्रारभ किया और आजकल दिल्ली विश्वविद्यालय से सबद्ध है। अपनी प्रतिभा और योग्यता के बल पर डॉ० सिन्हा विभिन्न योजनाओ के अतर्गत अनेक बार ग्लासगो तथा इटली आदि की यात्रा कर चुके हैं। देश-विदेश की ख्याति-प्राप्त पत्रिकाओ मे आपके लगभग २५ लेख प्रकाशित हो चुके है। सप्रति, आप विज्ञान की प्रसिद्ध पत्रिका 'बौटेनिका' के प्रधान सपादक है।

प्रस्तुत लेख 'परमाणु युग का अभिशाप रेडियोधर्मी प्रदूषण' 'विज्ञान प्रगति' पत्रिका के स्वास्थ्य सकट विशेषाक से लिया गया है। इस लेख मे डॉ० सिन्हा ने परमाणु विस्फोट के फलस्वरूप वायुमडल म व्याप्त रेडियोधर्मिता का जीवो और प्रकृति पर कितना हानिकर प्रभाव पडता है, स्पष्ट करने का प्रयास किया है। क्या कोई भी वैज्ञानिक सन् १९४५ मे हिरोशिमा-नागासाकी पर हुए प्रथम परमाणु बम विस्फोट के उन दूरगामी एव दीर्घकालिक परिणामो की कल्पना कर सका होगा? निश्चय ही नही। रेडियोधर्मी प्रदूषण दैहिक व आनुवशिक कुप्रभाव तो डालता ही है, लेकिन यदि मानव इसका सदुपयोग करे तो कृषि, चिकित्सा एव उद्योगो के क्षेत्र मे अभूतपूर्व उपलब्धियाँ कर सकता है। और इस प्रकार परमाणु बमो द्वारा हुई हानि कोई अथ नही रखेगी। लेकिन वर्तमान समय मे विश्व के शक्तिशाली राष्ट्र अपनी शक्ति के प्रदशन एव स्वार्थ सिद्धि के कारण परमाणु बमो का निरतर परीक्षण कर मानव-जीवन को अधिक कष्टकर एव रोगपूण बना रहे हैं। उस दिन की प्रतीक्षा है जब रेडियोधर्मिता मानव के सुख की साधक बनेगी और एक बेहतर दुनिया निर्मित होगी।

परमाणु युग का अभिशाप रेडियोधर्मी प्रदूषण

नेस्तनाबूद=नष्ट-भ्रष्ट। अयनकारी विकिरण=ऐसे विकिरण जो परमाणु (पदार्थों) को धन तथा ऋण अयनो में विभक्त कर दें। विकिरण=इस क्रिया के अतर्गत एक तत्त्व द्वारा एक निश्चित प्रकार के

कणो का उत्सर्जन होता है। क्रोमोसोम=कोशिका जो कि प्रत्येक जीवित पदार्थ का एक आवश्यकीय भाग है उसके भीतर एक गोल रचना केंद्रक होता है। केंद्रक के चार भाग होते हैं। इनमे सबसे प्रमुख क्रोमोसोम होते हैं। साधारणतया ये दिखलायी नही पडते, क्योकि ये जाल के सदृश एक रचना बनाते हैं। लेकिन कोशिका के विभाजन के समय यह जाल टूट जाता है और धागे एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं, इन्ही धागो को क्रोमोसोम कहते हैं। ये धागे पैतृक गुणो के वाहक होते हैं। जीन= क्रोमोसोम मे अनेक जीन पाये जाते हैं जो उसमे एक पक्तिबद्ध क्रम मे होते हैं। पैतृक गुण वास्तव मे जीन के द्वारा ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढी मे जाते हैं। साधारणतया ये स्थायी होते हैं लेकिन किन्ही विशेष परिस्थितियो मे परिवर्तित भी हो जाते हैं। रासायनिक दृष्टि से जीन मुख्यत. डी० एन० ए० नामक पदार्थ के बने होते है। उत्परिवर्तन= साधारणतया जीन स्थायी होते हैं लेकिन किन्ही प्राकृतिक एव कृत्रिम कारणो से उनमे जो परिवर्तन होता है वही उत्परिवर्तन कहलाता है। उत्परिवर्तन से उत्पन्न विभिन्नताएँ वशगत होती हैं। एक्स-किरण= वे किरणें हैं जिनकी तरग-दीर्घता मानव के मास को तो भेद जाती है, लेकिन हड्डियो को नही। न्यूट्रान=यह कण परमाणु की नाभि मे पाया जाता है। यह आवेश रहित तथा इसकी सहती प्रोटोन की सहती के बराबर होती है। प्रोटोन पर घनात्मक आवेश होता है। अल्फा=इस कण मे दो प्रोटोन, दो न्यूट्रान होते हैं तथा ये घन-आवेशित होते हैं। बीटा=इसके कण ऋणात्मक आवेश के होते हैं जिन्हे इलैक्ट्रान कहते हैं। गामा=इन किरणो की अवभेदन क्षमता एक्स-किरणो से अधिक होती है तथा इनमे किसी प्रकार का आवेश नही होता। समस्थानिक= ऐसे तत्त्व जिनकी परमाणु सख्या समान हो, लेकिन परमाणु भार अलग-अलग हो। नाभि मे उपस्थित प्रोटोन की सख्या परमाणु सख्या कहलाती है। प्रोटोन और न्यूट्रान की कुल सख्या परमाणु भार को प्रदर्शित करती है। सैमारा=सूर्य की परिक्रमा करने वाला तारा।

प्रश्न :—

१. रेडियोधर्मी प्रदूषण स्वास्थ्य के लिए किस प्रकार हानिकर होते हैं,

सक्षेप मे समझाइए ।
२. रेडियोधर्मी प्रदूषण से आप क्या समझते हैं ? इसे रोकने के लिए आप कौन-कौन से उपाय सुझायेंगे ?
३ रेडियोधर्मी तत्त्व मानव जीवन को सुखी बनाने म किस प्रकार सहायक हैं, स्पष्ट कीजिए ।

एन० कैसर

श्री एन० कैसर ने वैज्ञानिक विषयो पर अनेक लेख लिखे हैं जो समय-समय पर विभिन्न पत्र पत्रिकाओ म प्रकाशित होते रहे हैं। प्रस्तुत लेख उनकी स्पष्ट तथा रोचक लेखन शैली का ज्वलत उदाहरण है।

ब्रह्माड में जीवन की खोज

ब्रह्माड=आकाश मडल । सौर मडल=सूर्य से सबधित चक्र। ग्रह=सूर्य के प्रकाश से चमकते हैं। तारे=जो स्वय के प्रकाश से चमकते हैं। बृहदता=महानता। परिभ्रमण=घूमना। आविर्भाव=उत्पत्ति। खगोलवेत्ता=वह ज्योतिषी जिसे आकाश के नक्षत्रो और ग्रहो का ज्ञान प्राप्त हो। आर्द्रता=नमी, गीलापन। ध्रुव=भूगोल विद्या मे पृथ्वी के दोनो सिरे जहाँ समस्त देशातर रेखाएँ केंद्रित होती हैं। तारीकी=काला, धुंधला, अँधेरा।

प्रश्न —
१ किसी भी ग्रह पर जीवन की उपस्थिति के लिए किन-किन परिस्थितियो का होना अनिवार्य है, अपने पठित पाठ के आधार पर स्पष्ट कीजिए ।
२ मगल ग्रह पर जीवन की सभावना के बारे मे लेखक का क्या अभिमत है, सक्षेप मे बतलाइए ।
३ ब्रह्माड मे स्थित ग्रह और तारो के सबध मे खोज हुई है, निबध के आधार पर सक्षेप मे प्रकाश डालिए ।

४. क्या ब्रह्माड मे जीवन का अस्तित्व हो सकता है ? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।

श्रीमन्नारायण

जन्म · १९१२ ई०

श्री श्रीमन्नारायण भारतीय स्वतत्रता-सघर्ष के प्रसिद्ध सेनानी और देश के प्रमुख गाधीवादी चिंतक मनीषी हैं। आपने दीर्घ समय तक विभिन्न पदो—महासचिव भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस, वरिष्ठ सदस्य योजना आयोग, राजदूत नेपाल—पर रहकर निष्ठापूर्वक देश की अमूल्य सेवा की है। कुछ दिन पूर्व आप गुजरात के राज्यपाल पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। भारत के तीन राष्ट्रनेताओ—महात्मा गाधी, पण्डित नेहरू, आचार्य विनोबा भावे—से आपका निकट सबध रहा है जिसकी छाप आपके कृतित्व पर स्पष्ट है। सन् १९४४ मे आपने 'गाधीवादी योजना' का मसौदा तैयार किया था।

श्रीमन्नारायण जी ने न केवल भारत की आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं पर ही अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं, वरन् अनेक रोचक यात्रा-वृत्तान्त, सस्मरण एव प्रेरणात्मक प्रसगो को भी शब्दबद्ध किया है। आपका 'बिन मांगे मोती मिले' सग्रह ललित निबधो की विधा म महत्त्व-पूर्ण योगदान है। आपकी मान्यता है कि समाज मे व्याप्त बुराइयो का मूल विश्व मे तेजी से फैल रहा भौतिकता का वातावरण है। अत· सतुलित समाज-व्यवस्था के प्रादुर्भाव के लिए यह अनिवार्य है कि आर्थिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास का भी प्रयास किया जाये।

'वर्तमान युग और गाधीवादी आर्थिक विचारधारा' लेख मे लेखक ने सोदाहरण गाधीजी की आर्थिक विचारधारा को वर्तमान युग के सदर्भ मे विश्लेषित किया है। लेखक की स्थापना है कि 'देश की विभिन्न समस्याओं के प्रति गाधीजी का दृष्टिकोण अत्यत वैज्ञानिक, युक्तियुक्त और व्यावहारिक था।' देश और विदेश के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और चिंतक अब यह तीव्रता से अनुभव करने लगे हैं कि गाधीजी द्वारा विभिन्न आर्थिक समस्याओ के जो समाधान सुझाए गये थे वे कभी पुरान

नही हुए। वस्तुस्थिति तो यह है कि 'न केवल अपने बल्कि विश्व के समस्त देशो मे आर्थिक विचारधारा, आयोजन और कार्य के क्षेत्र मे गाधीजी अब भी एक जबर्दस्त चुनौती प्रस्तुत करते हैं।' अतः गाधी जी भविष्य के हैं, भूत के नहीं। और उनके द्वारा दिया गया सदेश शाश्वत है।

वर्तमान युग और गांधीवादी आर्थिक विचारधारा

शाश्वत=हमेशा रहने वाला। निःस्पृह=कामना रहित। ध्वस्त=निश्चित। समायोजन=प्रबंध, एकत्र करना। नवीकरण =नवीनी-करण। विकेंद्रीकरण=किसी केंद्रीभूत व्यवसाय या सत्ता का भिन्न-भिन्न भागो मे विभाजित होना। सदाशयता=जिसका भाव उदार हो। आत्मसात्=अपने मे लीन कर लेना, अपना बना लेना। सहिष्णुता =सहनशीलता।

प्रश्न :—

१. "प्राय. ऐसा कहा जाता है कि गाधीजी आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक के फलो के प्रति निःस्पृह थे। किंतु यह विचार भ्रात धारणा पर आधारित है।" श्रीमन्नारायण के उपर्युक्त कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

२ पूर्ण एवं उपयोगी रोजगार की प्राप्ति हेतु महात्मा गाधी ने क्या कार्यक्रम प्रस्तुत किया ? स्पष्ट कीजिए।

३. "महात्मा गाधी के विचार दकियानूसी एवं अव्यावहारिक न होकर आधुनिक समय की चुनौती के सर्वथा अनुरूप थे।"
क्या आप उपर्युक्त कथन से सहमत हैं ?

४. "गाधीजी भविष्य के हैं, भूत के नही।" इस उक्ति को पठित निबध के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

डॉ० के० एन० राज

डॉ० के० एन० राज की गणना देश के वरिष्ठ अर्थशास्त्रियो मे होती है।

विचार अभिव्यक्त किये हैं, उनको अपनी भाषा मे लिखिए।
२. निम्नतम निर्वाह-स्तर के सबध मे अर्थशास्त्रियो की आम धारणा क्या है और डॉ० राज का सोचने का तरीका उससे किस अर्थ मे भिन्न है ?
३. अर्द्ध-पोषण और बेरोजगारी तथा अर्द्ध-रोजगार की समस्याओ के समाधान के लिए डॉ० राज ने क्या सुझाव दिये हैं ? स्पष्ट कीजिए।

श्यामसुंदर दास

जन्म १८७५ ई० स्वर्गवास . १९४५ ई०

श्यामसुदर दास की गणना इस युग के हिंदी भाषा के प्रमुख उन्नायकों मे की जाती है। उनकी साहित्य-सेवा का सर्वोत्तम प्रतीक उनके द्वारा स्थापित 'नागरी प्रचारिणी सभा' है, जो विभिन्न रूपो मे हिंदी का प्रचार तथा उसे समृद्ध बनाने का कार्य कर रही है।

सर्वप्रथम हिंदी मे गभीर विषय को लेकर आपने ही ग्रथो की रचना की। उनके द्वारा प्रणीत एव सपादित ग्रथो की सख्या सत्तर से भी अधिक है। इनमे से मौलिक ग्रथ लगभग सत्रह है जिनमे से मुख्य-मुख्य ये हैं साहित्यालोचन, भाषा विज्ञान, हिंदी भाषा और साहित्य, गोस्वामी तुलसीदास, रूपक रहस्य और भाषा रहस्य।

श्यामसुदर दास की गद्य शैली सुबोध एव सरल है। उसमे अध्यापक का रूप अधिक मुखर एव प्रधान है तथा विषय-प्रतिपादन की पूर्ण क्षमता विद्यमान है। उनकी भाषा पुष्ट एव प्राजल है। तत्सम शब्दो की अधिकता होते हुए भी दुरूह नही है। निबधकार की दृष्टि से उनकी शैली विचार-प्रधान ही है, व्यक्तित्व-प्रधान नही। उनके निबधो की प्रमुख विशेषता है उनका समन्वयात्मक दृष्टिकोण तथा उनकी बोधगम्यता। निबधो मे विस्तार है, गहराई नही। उनमे विषय-वस्तु का स्थूल रूप ही प्रतिपादित हुआ है, सूक्ष्म विश्लेपणात्मक चितन अथवा जागरूक कल्पना का अभाव ही है।

प्रस्तुत सग्रह मे सकलित हिंदी साहित्य और उसका वैशिष्टय उनके हिंदी-साहित्य' की प्रस्तावना है। यह लेख उनकी गद्य शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है। इस लेख मे उन्होंने भारतीय साहित्य एव इतिहास की भूमिका मे हिंदी साहित्य की विशषताओ का दिग्दर्शन कराया है। इस निवध मे विचारो की प्रौढता, चिंतन की गहनता एव मनन की गभीरता है।

हिंदी-साहित्य और उसका वैशिष्ट्य

आश्रम चतुष्य=भारतीय धमशास्त्र के अनुसार जीवन के चार सोपान माने गय हैं। उन्हे आश्रम कहते हैं। आश्रम चार हैं ब्रह्मचय, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास। अन्यान्य कलाओ=और और कलाएँ जैसे—चित्रकला, स्थापत्य आदि। विजातीय=अन्य जाति वालो का। अक्षुण्ण=अटूट। सारनाथ—वाराणसी के पास एक स्थान जो बौद्ध भग्नावशेषो के लिए विख्यात है। निहित=छिपा हुआ। अस्थिपिंजर=हड्डियो का ढाँचा, कंकाल। आदर्शात्मक साम्य=नमूने की बराबरी, ऊँची समता। जिज्ञासा=जानने की इच्छा। एकेश्वरवाद=ईश्वर एक है, इसको मानने वाला दार्शनिक सिद्धात। ब्रह्मवाद=ब्रह्म ही एकमात्र सत्य तत्त्व है वह अद्वितीय है उसके अतिरिक्त कुछ नही है यह सिद्धात ब्रह्मवाद है। अवतारवाद=भगवान भक्तो के कल्याण के लिए रूप विशष म प्रकट होता है इस विश्वास को मानकर चलने वाला सिद्धात अवतारवाद है। बहुदेववाद=अनेक देवताओ की सत्ता मे विश्वास करने वाला सिद्धात। अतिशयता=प्रचुरता। ऋचाओ=ऋग्वेद क मत्रो। भावा=अलौकिक या अप्रत्यक्ष (ससार की नहीं, प्रत्युत अन्य लोक की) परोक्ष भावनाओ। जलावृत=जल स घिरे। निसग सिद्ध=प्रकृति से प्राप्त। पूत=पवित्र। ऐहिक—लौकिक सासारिक। सश्लिष्ट=मिला-जुला। अभिव्यजन=प्रकट करना।

प्रश्न —

१ क्या हिंदी-साहित्य को जातीय साहित्य कहा जा सकता है ? स्पष्ट करते हुए हिंदी-साहित्य की देशगत विशषताओ का उल्लेख कीजिए।

२. हिंदी साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन प्रस्तुत पाठ के आधार पर कीजिए ।

डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु

जन्म १८ जनवरी, १९०८

डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधाशु हिंदी-साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार है। इन्होने काफी अर्से तक बिहार विधान सभा के अध्यक्ष पद पर रहते हुए राष्ट्रभाषा हिंदी के लिए बहुत कुछ किया है। सप्रति डॉ० सुधाशु बिहार हिंदी ग्रथ अकादमी के अध्यक्ष के रूप मे हिंदी-साहित्य और भाषा के सवर्द्धन मे सलग्न हैं।

श्री सुधाशु की अब तक अनेक मौलिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ प्रमुख कृतियाँ है—'भारती प्रेम' (उपन्यास), 'गुलाब की कलियाँ', 'रस रग' (कहानियाँ), 'वियोग' (निबध), 'काव्य मे अभिव्यजनावाद', *'जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धात'* (आलोचना), 'साहित्यिक निबध', 'सपर्क भाषा हिंदी' (आलोचनात्मक निबध), तथा 'व्यक्तित्व की झाँकियाँ'।

'राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रीय एकता' लेख सुधाशु जी की कृति 'साहित्यिक निबध' से लिया गया है। इस निबध मे लेखक की मान्यता है कि राष्ट्रभाषा हिंदी के द्वारा ही राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ किया जा सकता है। आज भी जब कुछ अग्रेजी-परस्त लोग हिंदी के स्थान पर अग्रेजी की वकालत करते हैं (क्योकि हिंदी के राष्ट्रभाषा बनने पर उन्हे राष्ट्रीय एकता की क्षति की आशका है) तो उनकी दृष्टि मे प्रशासन विषयक व्यवस्था अथवा सुविधा ही मुख्य है, राष्ट्रीय एकता नही। क्योकि देश मे भावात्मक एकता को मजबूत बनाने मे भाषा के प्रबल प्रभाव से कौन इकार कर सकता है।

हिंदी ही राष्ट्रभाषा क्यो हो ?' इस प्रश्न पर विचार करते हुए लेखक ने अन्य राष्ट्रभाषाओं की इस पद के लिए योग्यता पर सतर्क होकर खुले *। से विचार किया है। लेकिन जिस आधार पर कोई भी भाषा राष्ट्र-*

भाषा का दर्जा पा सकती है, हिंदी को छोड़कर कोई दूसरी भाषा उसकी शर्तें पूरी नहीं करती।

राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रीय एकता

बहुभाषी=अनेक भाषाओं वाला। प्रशासनिक=प्रशासन से संबंधित। कलात्मक=सुंदर। दार्शनिक भंगिमा=दर्शन संबंधी विचार। सम्यक्=उचित, सही। यथेष्ट=पर्याप्त। व्यवधान=रुकावट। प्राकृत=भारत की प्राचीन भाषाओं में से कोई जिसका प्रयोग संस्कृत नाटकों आदि में स्त्रियों, सेवकों और साधारण व्यक्तियों की बोलचाल में दिखायी देता है। अपभ्रंश=प्राकृत भाषाओं का वह परवर्ती रूप जिससे भारत की आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास माना जाता है। तादात्म्य=मेल। आबद्ध=बँधा हुआ।

प्रश्न :—

१. "यदि भारतीय भाषाओं में से ही किसी को राष्ट्रभाषा का पद दिया जा सकता है, तो हिंदी को छोड़कर कोई दूसरी भाषा उसकी शर्तें पूरी नहीं करती।" लेखक के प्रस्तुत निष्कर्ष का युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।
२. राष्ट्रीय एकता में राष्ट्रभाषा हिंदी के योग को स्पष्ट कीजिए।
३. राष्ट्रीय एकता से आप क्या समझते हैं ? भाषा राष्ट्रीय एकता के लिए एक अनिवार्य एवं सुदृढ़ आधार है, संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

•••

आलोचना-पुस्तक परिवार

आज के विद्यार्थी कल के देश-निर्माता है, इसलिए उन्हे ऐसा स्वस्थ साहित्य पढ़ने को मिलना चाहिए, जो उनके भीतर मानवीय गुणो का विकास करने वाला हो। आलोचना पुस्तक परिवार का उद्देश्य विद्यार्थियो के लिए ऐसी ही पुस्तकें सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराना है। इसके लिए हमने अच्छी पुस्तको के असक्षिप्त पेपरबैक सस्करण इस योजना के अन्तर्गत निकाले हैं। इसमे सब सुविधाओ को मिलाकर सदस्यो के लिए पुस्तक का मूल्य उसके सजिल्द सस्करण की तुलना मे आधे से भी कम रह जाता है।

सदस्यता के नियम—

- आलोचना पुस्तक परिवार के सदस्य केवल व्यक्तिगत पाठक ही बन सकते हैं। शिक्षण सस्थाओ, पुस्तकालयो और पुस्तक-विक्रेताओ के लिए यह योजना नही है।
- सदस्यता-शुल्क मात्र रु० ३ ०० है, जिसे पहले आदेश की पुस्तको के मूल्य के साथ जोडकर भेजा जा सकता है।
- आदेश की पुस्तकें वी० पी० पी० से भेजी जाया करेंगी।
- राजकमल की पुस्तको के लिए कोई अग्रिम नही भजना होगा, लेकिन बाहरी प्रकाशनो के लिए आदेश की आधी रकम अग्रिम भेजनी होगी।
- इस योजना के अन्तगत पाठ्य-पुस्तकें नही भेजी जायेंगी।

सम्पर्क के लिए लिखें :

आलोचना पुस्तक परिवार विभाग,
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
८ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६